
जन्म-शताब्दी

गांधी-जन्म-शताब्दी संस्करण

बापू-कथा

(उत्तरार्ध)

•

हरिभाऊ उपाध्याय

•

गांधी स्मारक निधि और गांधी शान्ति प्रतिष्ठान
के सहयोग तथा नवजीवन ट्रस्ट की सहमति से
सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी
द्वारा प्रकाशित

प्रकाशक मन्त्री, सर्व सेवा संघ, वाराणसी
संस्करण दूसरा, १,००,०००, १ नवम्बर १९६९
कुल छपी प्रतियाँ २,००,०००,
मुद्रक नरेन्द्र भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी

सर्वोदय साहित्य

१	आत्मकथा (संक्षिप्त)	१ ००
२	बापू-कथा	२ ५०
३.	तीसरी शक्ति	२ ५०
४	गीताबोध और मंगल-प्रभात	१.००
५	मेरे सपनों का भारत (संक्षिप्त)	१ ५०
६	गीता-प्रवचन	२ ००
७	अन्य सर्वोदय-साहित्य	१ ५०
		१२ ००

पूरा सेट लेने पर रु० ७) में मिलेगा

प्रकाशकीय

गांधी-जन्म-शताब्दीके पावन-प्रसगपर चुना हुआ बुनियादी और जीवन-प्रेरक गांधी-वाङ्मय जन-जनतक पहुँचे, यह चर्चा मित्रो तथा साथियोमे चली। इस चर्चाके परिणामस्वरूप सर्वोदय-साहित्य-सेटकी योजना बनी और तय किया गया कि २ अक्तूबर—गाधीजयती—के दिन देशभरमे यह सेट पहुँचाया जाय। इसके लिए पूंजीकी व्यवस्था गाधी-स्मारक-निधि तथा गाधी-शाति-प्रतिष्ठानने की, जिसके बलपर यह सेट प्रकाशित हो सका। हम उक्त दोनो संस्थाओंके कृतज्ञ है।

इसी सिलसिलेमे यह विचार सामने आया कि गाधीजीकी 'आत्मकथा' पूरी की जाय। गाधीजीकी लिखी हुई आत्मकथा तो सन् १८६९ से सन् १९२० तक की ही है। सन् १९२० के बादका गाधीजीका सारा जीवन व्यक्तिगत तो रहा नहीं, वह इतना सार्वजनिक हो गया था कि बापू अपनी आत्मकथा का सिलसिला आगे न बढा सके।

सर्वोदय-साहित्य-सेटमे सन् १९२० से सन् १९४८ तककी 'बापू-कथा' देना जरूरी था। इस कृतिके बिना गाधीजीकी सपूर्ण जीवन-गाथा बन नही सकती थी। लेकिन खुशीकी बात है कि हिन्दीके सुप्रसिद्ध गाधीवादी विचारक तथा विद्वान् श्री हरिभाऊजी उपाध्यायने हमारे अनुरोधपर कमजोर स्वास्थ्यके बावजूद 'बापू-कथा' तैयार कर देनेकी जिम्मेदारी स्वीकार कर ली और अत्यन्त तत्परतापूर्वक, हजारो पृष्ठोका पारायणकर गाधी-सागरमेसे कथारूपी यह नवनीत निकालकर भारतकी जनताका बडा हित किया है। श्री वैजनाथजी महोदय तथा श्री रमेशचन्द्रजी ओझा ने श्री हरिभाऊजीको इस काममे पूरा सहयोग दिया, जिस कारण अत्यन्त शीघ्रता-से यह पुस्तक तैयार हो सकी है। इसके लिए हम तीनो सज्जनोंके अत्यन्त आभारी है।

साहित्य-सेटकी एक पुस्तक 'गोरे कालोंका भारत' है। नवजीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित इसी नामकी बड़ी पुस्तकके तथा अन्य [illegible] पुस्तक तैयार करनेमें भाई श्री [illegible] ने जो [illegible] परिश्रम किया है, उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

'संक्षिप्त आत्मकथा' तथा 'गीता-बोध'—'मंगल प्रभात' पुस्तकोंका प्रकाशन भी इसी सिलसिलेमें किया गया है। सस्ता साहित्य मण्डलके हम आभारी हैं कि उन्होंने उक्त तीनों पुस्तकोंके अपने अनुवाद प्रकाशित करनेकी अनुमति प्रदान की।

विनोबाजीकी '[illegible]' पुस्तक सर्वोदय-साहित्य-सेटकी एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इस संकलनको तैयार करनेमें स्वयं विनोबाजीने मार्गदर्शन किया और उनके साथियोंने [illegible], इसके लिए हम [illegible] मानते हैं। इस पुस्तकमें विनोबाजीके सन् १९४८ से अबतकके विचार-साहित्यका दोहन आ जाता है और पाठक सर्वोदय-विचारके विविध अंगोंका दिग्दर्शन कर सकते हैं।

इस सर्वोदय-साहित्य-सेटको बहुत ही कम समयमें, तत्परतापूर्वक और आकर्षक रूपमें मुद्रण करने तथा छापनेके लिए साधना मुद्रण प्रेस, [illegible] संचालकोंके, विशेषकर श्री सुरेन्द्र भार्गवके हम आभारी हैं, जिनके सहयोगके बिना यह काम इतनी शीघ्रतासे और इतना सस्ता संभव होना कठिन था।

इस सेटकी कृतियोंमें गांधीजीके भजनों, चित्रों, भाषणों, [illegible] आदिका उपयोग हुआ है। उनकी [illegible] अनुमति प्रदान करनेके लिए हम नवजीवन-ट्रस्ट, अहमदाबादके आभारी हैं।

अहिंसक जनता-आंदोलनके [illegible] इस सेटको प्रकाशित करते हुए हम आशा करते हैं कि [illegible]। [illegible]

राजघाट, वाराणसी
२ अक्तूबर, १९६९

पुनश्च हरिः ॐ

'जीवन एक प्रवाह सतत है।'

—एक कवि

'मै तो चेतनका लघु कण हूँ
मर-मरकर फिर जी जाऊँ'

—खाद कवि

बापूने—महात्मा मोहनदास करमचन्द गाधीने—'आत्मकथा' अमृतसर-काग्रेस (१९१९) तक लाकर छोड़ दी है। 'आत्मकथा' मे जीवनी-जैसा थोडा है, और 'सत्यके प्रयोग' ही अधिक है। यही उनका मुख्य उद्देश्य भी रहा है। 'आत्मकथा' के अन्तिम अध्यायमे उन्होने लिखा भी है

"मेरे प्रयोगोका मेरे निकट बडा मूल्य है। सत्यको मैने जैसा देखा है, जिस मार्गसे देखा है, उसे बतानेका मैने सतत प्रयत्न किया है।"

बापू मानते थे कि "सत्यसे भिन्न किसी परमेश्वरके होनेका अनुभव मुझे नही हुआ है। सत्यमय होनेके लिए अहिसा ही एकमात्र मार्ग है · मेरी अहिसा सच्ची होते हुए भी कच्ची है। सत्यका सपूर्ण दर्शन सपूर्ण अहिसाके विना अशक्य है।"

इस तरह सत्यके साथ अहिसाका अभिन्न सबध उन्होने सब जगह बताया है। उन्होने अपने जीवनकी सभी प्रवृत्तियोका केन्द्र एकमात्र सत्य, परमेश्वर या मोक्ष-को माना है। ये तीनो शब्द भले ही भिन्न हो, परन्तु उनकी दृष्टिमे सबका आशय एक ही है।

बापू राजनीतिमे भी पडे तो इसी सत्यकी साधनाके लिए। उन्होने अपने जीवन-लक्ष्य और उसकी साधना दोनोके अर्थमे हमे चमत्कारिक 'सत्याग्रह' शब्द और अस्त्र भी दिया है। भारतकी राजनीतिमे भी वे इसी उद्देश्यसे पडे थे। वे कहते है "सत्यकी मेरी पूजा मुझे राजनीतिमे घसीट लायी है। जो कहता है कि धर्मका राजनीतिसे सबध नही है, वह धर्मको जानता नही है, यह कहनेमे मुझे सकोच नही है।"

सत्य एक है, परमेश्वर एक है, और जीवमात्रमे उसके तेज या अशकी झलक है। जीवधारी—जड-चेतन—बाहरसे अलग-अलग दिखायी देते हुए भी, भीतरसे,

चेतन-सत्ताके कारण, सव एकमे जुडे हुए है। अत कहना होगा कि हमारी जीव-मात्रके साथ एकता है। इसे वताते हुए वापू कहते हैं "अहिंसा नम्रताकी पराकाष्ठा है और इस नम्रताके विना मुक्ति किसी कालमें भी नही है। यह अनुभव-सिद्ध वात है। मुझे यह विकट रास्ता तय करना है। मनुष्य जवतक स्वेच्छासे अपनेको सवसे पीछे न रखे, सवसे छोटा न माने, तवतक उसकी मुक्ति नही है।"

इस नम्रताकी प्रार्थना करते हुए और उसमे जगत्‌की प्रार्थनाकी याचना करते हुए वापूने अपनी 'आत्मकथा' के प्रकरणोको समाप्त किया है।

अंतिम अध्यायमे वापूने आगेके प्रकरणोको न लिख पानेका कारण वताया है. "इसके वादका मेरा जीवन इतना अधिक सार्वजनिक हो गया है कि शायद ही कोई चीज ऐसी हो, जिसे जनता न जानती हो। फिर सन् १९२१ से मैं कांग्रेसके नेताओंके साथ इतना अधिक घुल-मिल गया हूँ कि एक भी प्रसगका वर्णन नेताओंके सवधकी चर्चा किये विना मैं यथार्थ रूपमे नही कर सकता। कांग्रेसके परिवर्तनके वादका इतिहास अभी (१९२४ वेलगांव-कांग्रेस) तैयार हो रहा है। (आगेके) मेरे मुख्य प्रयोग कांग्रेसके द्वारा हुए हैं, अत उन प्रयोगोंके वर्णनमे नेताओंके सववकी चर्चा अनिवार्य है। शिष्टताके नाते फिलहाल तो मैं उसे नहीं ही कर सकता। फिर अभी चलनेवाले प्रयोगोंके विषयमे मेरे निर्णय निश्चयात्मक नही गिने जा सकते। अत मेरी कलम ही अव आगे वढनेसे इनकार करती है।"

वापूकी कलम जहाँसे रुक गयी थी, वहाँसे उसे आगे चलानेका काम अव हम लोगोको करना है। सच तो यह है कि काम अकेले वापू ही कर सकते थे, परन्तु अव तो हमारे पास उनके चरणचिह्न-मात्र रह गये हैं। त्याग और पुरुषार्थमय सारे महान् जीवनके साथ उनके अन्तसमयके 'रक्तकण' और अन्तिम शब्द 'हे राम' ही हमारी प्रेरणाके लिए उनके अन्तिम 'सन्देश' के रूपमे वच रहे हैं। उन्हीके सहारे यह काम पूरा करना है।

भाई राधाकृष्ण वजाजने जव सुझाया कि वावा (विनोवा) चाहते हैं कि वापू-कथा (उत्तरार्द्ध) तैयार करनी चाहिए, सो भी एक महीनेमे—ऐसी कि देहातमे भी पढी जा सके, तव लगा कि यह तो वेंत पर मलखमकी कसरत करने जैसा है। परन्तु 'रामके नाममे' यदि पत्थर भी समुद्र पर तैरने लगे, तो वापूका पावन नाम और उनकी अन्तिम सांस 'हे राम' जैसा तारक नाम हममे 'वापू-कथा' क्यों न कहला लेगा? इस आन्तरिक आश्वासन और सन्मित्रोंके सहयोगकी आशासे भरोसे कलम आगे वढनेका साहस कर रही है।

वापूने अपनी 'आत्मकथा' एक जगह वैठकर सारे कागज सामने रखकर नही लिखी है। अलग यात्राओंमें भी, जैसा प्रसग याद आ गया, अपनी याददाश्तके आधार पर लिखी है। उसमें कालक्रमकी पूरी रक्षा न हो पाना स्वाभाविक था। हमने इस 'वापू-कथा' में कालक्रमको भी ध्यानमे रखा है। प्रसग प्राय वे ही चुने हैं,

जो उनके प्रयोगोंसे, या यो कहें कि उनके जीवन-मूल्यो, आदर्शों, विचारो या आग्रहो-से संबंध रखते है, या उनपर रोशनी डालते है। १९१८ से '४८ तकका उनका सारा जीवन तूफानी राजनीतिक आन्दोलनो, सत्याग्रहो आदिसे भरा हुआ रहा, क्योकि, वकील खुद उन्हीके, भारतका स्वराज्य भी उनके सत्यके प्रयोगका ही एक बडा अग रहा है। इस महान् प्रवाहमे, बल्कि यो कहे कि बाढमे, उनके प्रयोगके छोटे-मोटे नदी-नाले भी जो आ गये है—उनके जो छोटे-बडे जीवन-प्रयोग चलते रहे है, जिनसे उनका जीवन चमक उठता है, और उनके उच्च गुणो तथा आन्तरिक शक्तियोका पता लगता है, उनको भी महत्त्वका स्थान मिलना आवश्यक है, बल्कि 'आत्म-कथा' की दृष्टिसे उनका मूल्य अधिक समझना चाहिए।

'बापू-कथा' तैयार करनेके लिए हमे कुल डेढ महीनेका समय मिला और लिखना तो १५ जुलाईसे प्रारम्भ करके १५ अगस्तको समाप्त किया। इतने थोडे असेंमे कुल पुस्तको आदिको मिलाकर कोई ५ हजारसे कम पृष्ठ नही पढने पडे होगे। उनमेसे चुन-चुनकर विषय, घटनाएँ, विचार और प्रसग लिये गये। इसमे हम दोनो और एक साथी दिन-रात जुटे रहे, तब जाकर कही यह पुस्तक नियत समयमे पूरी हो सकी। जब इसपर सोचते हैं तो लगता है कि सचमुच ही इतने थोडे समयमे इतना भारी काम बापूकी आत्माके आशीर्वाद और प्रेरणाके बगैर नही हो सकता था। उन्होने सम्भवत बाबा (विनोबा) के अन्त करणको प्रेरित करके, हम लोगोको उसका माध्यम या साधन बनाकर अपना यह काम हमसे करा लिया।

'आत्मकथा' लिखना फिर सरल है, परन्तु बापू जैसे विराट् पुरुषकी 'आत्मकथा' को सामने रखकर शेष कथा (बापू-कथा) लिखनेमे जो कठिनाइयाँ आ सकती है, उनकी कल्पना दूसरोको सहजमे नही हो सकती। सन् १९१८ से जनवरी १९४८ तक, भारतके स्वाधीन होनेतक, बापूका लगभग सारा समय स्वतत्रताकी लडाई और मोर्चेबन्दी तथा सधि-चर्चामे ही बीता। अत उसका प्रवाह 'बापू-कथा' मे रहना अनिवार्य था। 'आत्मकथा' मे बापू अपने खास-खास प्रयोगो-तक ही सीमित रह सके, तो भी वह लगभग ५०० पृष्ठोमे समाप्त हुई। दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रह (सघर्ष) का इतिहास उन्होने लगभग ४०० पृष्ठोमे अलगसे दिया है। अब 'बापू-कथा' मे हमारे हिस्सेमे कुल २४० पृष्ठ ही आये, जिनमे सारा स्वतत्रता-सग्राम, बापूके प्रयोग, अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ, विचार, चर्चा आदिका समावेश करना पडा है। फिर बापूका इस कालका साहित्य इतना प्रेरक, आकर्षक और हृदयस्पर्शी है कि जितना-जितना अधिक पढते गये, उतना ही उतना अधिक लेनेका मन होता था और यह छँटनी करना बडा कठिन होता गया कि क्या लें और क्या छोडे। जैसे नगाधिराज हिमालयकी रम्य पर्वत-श्रेणियाँ ज्यो-ज्यो उनके अन्दर प्रवेश करते हैं और ऊपर चढते हैं, एकके बाद एक

हमारे मनको मोह लेती है और उत्तरोत्तर आकर्षणका केन्द्र बनती जाती है, त्यो-त्यो बापूका यह साहित्य हमे मनमोहक, अलभ्य, नित्य नवीन स्फूर्ति देनेवाला लगता गया और हमे ऐसा लगने लगा, मानो आज भी बापू हमारे सामने हँसते हुए, अपनी लाठी हाथमे लिये हमे अनुप्राणित कर रहे हैं—हममे नयी जान डाल रहे है। उनके कई भाषण और लेख तो हमे ऐसे लगे, मानो वे आजकी समस्याओ और परिस्थितिपर ही बोल और लिख रहे हो। भले ही हम आजाद हो गये हो और बाईस सालमे कितने ही आगे बढनेका दावा भी करते हो, परन्तु देशकी मूलभूत समस्याओ और मांगोका जहाँतक सम्बन्ध है, बापूकी सीख, प्रोत्साहन, फटकार, कष्ट-सहन और बलिदानका आह्वान आज भी उसी तरह मौजूं लगते है। इसलिए हमे आशा होती है कि इस 'बापू-कथा' को पढनेपर पाठकोको ऐसा लगेगा, मानो आज भी बापू हमारे बीच बैठे है और हमारी भूलोपर दुःखी होकर उलाहना देते हुए हमे सही रास्ता बता रहे है।

इसके अलावा 'आत्मकथा' मे बापू स्वय बोलते थे, जब कि 'बापू-कथा' मे उनके भक्तोद्वारा श्रद्धापूर्वक अर्पित पत्र-पुष्प है। अतः 'आत्मकथा' मे जहाँ आपको स्वय बापूद्वारा वितरित सत्यका प्रसाद दिखायी देगा, वहाँ 'बापू-कथा' मे वही प्रसाद भक्तिकी नम्र अञ्जलिसे प्रस्तुत किया जा रहा है। यह सही है कि बापूके प्रयोगोका मर्म तो वे स्वय ही बता सकते थे या महादेवभाई, यदि जीवित होते तो वे अथवा उनके साथ दीर्घ कालतक सेवासे समृद्ध सम्पर्कवान् भाई प्यारेलाल कुछ सफल हो सकते थे। हमारे पास तो हमारी अपनी कुछ जानकारीके अलावा बापूके लेखो, भाषणो, पत्रो, कथनो, वार्तालापो आदिसे मिली सामग्री ही थी। उन्हींमेसे बूंद-बूंदको एकत्र करके हमने यह छोटा-सा घट भरा है। इस बातका जरूर ध्यान रखा है कि पाठकोको इसमेसे अपना घडा भरनेके लिए लम्बी रस्सीकी जरूरत न पडे। हमने इस बातकी भरसक कोशिश की है कि बापू, महादेवभाई और उनके जैसे अन्य निकटके प्रामाणिक लेखकोके लेखनके आधारपर लगभग उन्हीके शब्दोमे 'बापूकथा' लिखी जाय। अतः इसमे अप्रामाणिक बातोके आनेकी शका सहसा नही हो सकती।

इतनी जल्दी राकेट की-सी तीव्र गतिसे यह कथा तैयार हुई है कि हम लोग अपने बडे लोगोको यह दिखा भी न सके, जिससे उनके अनुभवो-सुझावोका लाभ मिल सकता। पुस्तक शीघ्र ही प्रेसमे देनी थी। अब उन सबसे हमारा निवेदन है कि इसकी कमियोकी ओर हमारा ध्यान दिलानेकी अवश्य कृपा करें, जिससे अगले सस्करणमे, जो सम्भव है जल्दी ही हो, उनको दूर किया जा सके।

इसके लेखनमे हमारे अनन्य साथी भाई बैजनाथजी महोदय तथा रमेशचन्द्रजी ओझाने असुविधाएँ उठाकर भी हमारी बहुत सहायता की है। इनके बिना इतने थोडे समयमे इस पुस्तकका निर्माण अशक्य था। हमारे पुराने साथी

भाई मुकुटबिहारी वर्माने भी इसके कई प्रारंभिक अध्यायोके सपादनमे योग दिया तथा उपयोगी सुझाव दिये। गाधी स्मारक निधि, सस्ता साहित्य मडल तथा सर्व सेवा सघने अपने पुस्तकालयोसे पुस्तके, पत्रोकी पुरानी फाइले तथा अन्य लेखन-सामग्री आदि सुलभ करानेमे जो सहायता दी, उन सबका स्मरण किये विना यह निवेदन अधूरा रह जायगा।

गाधीजीके लेखो आदिका इस पुस्तकमे जो उपयोग किया गया है, उसके लिए नवजीवन ट्रस्टका आभार मानना आवश्यक है।

× × ×

अन्तमे व्रजगोपियोद्वारा मूलमे गायी गयी और परमहस देव (रामकृष्ण) के आश्रमोमे नित्य गायी जानेवाली निम्नलिखित स्तुतिके साथ 'आत्मकथा' को 'बापू-कथा' (उत्तरार्ध) के रूपमे 'पुनश्च हरि ॐ' करते है

तव कथामृत तप्तजीवन कविभिरीडित कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गल श्रीमदातत भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥*

–भागवत १० ३१.९

१५ अगस्त, १९६९
स्वाधीनता-दिवस,
नयी दिल्ली

–हरिभाऊ उपाध्याय

* तेरा कथारूप अमृत सभी प्रकारके तापोंसे सन्तप्त लोगोंके लिए जलकी तरह जीवन-दायक है। क्रान्तदर्शी कवियोंने उनकी बार-बार प्रशसा, स्तुति की है। वह सभी प्रकारके कल्मष, कर्मोंके मलोंको धो डालता है। उसके श्रवणमात्रसे ससारका मगल होता है। वह शोभा बढानेवाला, वासना मिटानेवाला और सर्वत्र व्याप्त है। विश्वमें जो उसे सुनाते हैं, वे सबसे बडे दाता हैं।

अनुक्रम

बापू-कथा

१. नया नेतृत्व, नया युग

(१९१६)

'सम्भवामि युगे युगे ।' —गीता

(मैं युग-युगमे आता हूँ)

'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति ।'

(जो हर क्षणमे नवीनता प्राप्त करता है।)

आमतौरपर माना जाता है कि नागपुर-काग्रेससे भारतके इतिहासमे एक नया युग शुरू हुआ। परन्तु यह ऊपरसे दीखनेकी बात है। वास्तवमे तो नये युगकी शुरुआत, जिस दिन गाधीजीने इस देशके सार्वजनिक जीवनमे प्रवेश किया, तभीसे हो गयी थी।

इस क्षेत्रमे बापूके कदम रखते ही भारतमे मनुष्यका सारा जीवन-दर्शन ही बदल गया। सभ्यताकी नयी परिभाषा पैदा हो गयी। सार्वजनिक सेवा और नेतृत्वका तरीका बदल गया, और पश्चिमी सभ्यताको जहाँ आदर्श माना जाता था, वहाँ उसकी मिथ्या प्रतिष्ठाकी कलई खुल गयी और भारतीयताको आदरकी दृष्टिसे देखा जाने लगा।

अंग्रेजी बोलना प्रतिष्ठाकी बात मानी जाती थी। पढे-लिखे लोग अपनी मातृ-भाषामे पत्र लिखनेके बजाय घरके लोगोको भी अंग्रेजीमे ही पत्र लिखनेमे गौरव और धन्यता मानते थे। गाधीजीने इस सारे क्रमको एकदम बदल दिया।

विदेश-यात्रापर जो लोग जाते, वे पूरे विदेशी बनकर स्वदेश लौटते थे। गाधीजीने ठीक इससे उलटा किया। वे जहाजसे उतरे तो अपने स्वदेशी—ठेठ काठियावाडी—लिबासमे। बम्बईमे और जहाँ-जहाँ भी उनका स्वागत हुआ, उसका उत्तर उन्होने गुजराती या हिन्दीमे दिया। विदेश-यात्राको समाज पाप मानता था। अत समाजकी नही, पिता-समान बडे भाईकी आज्ञा मानकर नासिकमे जाकर अपनी शुद्धि भी कर ली। यो समाजसे तो आजन्म बाहर ही रहे।

बापू गोखलेको अपना गुरु मानते थे। उनका आदेश था कि स्वदेश लौटनेपर सेवाके काममें अभी उतावली न करें। एक वर्षतक न कहीं भाषण दें, न लेख आदि द्वारा किसी विषयपर अपने विचार प्रकट करनेमें जल्दबाजी करें। देशकी स्थिति-को पूरी तरहसे समझ लें, सार्वजनिक सेवकों और नेताओंके विचारों और कार्य-पद्धतिका गहराईसे अवलोकन कर लें, अपनी शक्ति और मर्यादाका भी हिसाब लगा लें, तब जहाँ जो कुछ कहना-करना हो, कहें-करें। गांधीजीने इस आज्ञाका अक्षरशः पालन किया और पूरी तैयारी कर ली तब वे कार्यक्षेत्रमें उतरे।

एक साल बीतनेके बाद गांधीजीका सबसे पहला भाषण काशी-विश्वविद्यालयके शिलान्यास पर हुआ। वह पूरी तरह छप नहीं पाया। परन्तु जितना भी छपा, उसने सारे देशमें खलबली पैदा कर दी। विद्यार्थी विनोबा भावे परीक्षा छोड़कर गुरुकी तलाश और आवश्यक अध्ययन-तपस्याके लिए हिमालय जा रहे थे। संस्कृत-का कामचलाऊ परिचय पा लेनेके लिए वे काशीमें थोड़ासा रुक गये थे। उन्होंने गांधीजीका यह भाषण दूसरे दिन सुबह अखबारमें पढा। उन्हें लगा कि जिस गुरु-की तलाश थी, वह मिल गया। उसके मिल जानेका संतोष लेकर और हिमालयकी यात्रा छोड़कर वे साबरमतीकी तरफ मुड़ गये।

स्वराज्य कैसा हो, उसके साधन और मार्ग क्या है, पश्चिमी सभ्यताका स्वरूप और मूल्य क्या है, इत्यादिके विषयमें गांधीजीने अपने विचार १९०८ में ही 'हिन्द स्वराज्य' नामक अपनी छोटीसी किताबमें लिख दिये थे।

सत्यका जब कभी, जहाँ कहीं, जिस किसी रूपमें उन्हें दर्शन होता, वे उसे तत्काल ग्रहण कर लेते और उसे अपने आचरण-व्यवहारमें शामिल कर लेते थे।

साधारण लोग अपना बड़प्पन लोगोंसे अपनी कोई अलग विशेषता रखने और जतानेमें मानते हैं। गांधीजी यह मानते थे कि उनमें दूसरोंकी अपेक्षा कोई खास बात नहीं। वे कहते थे कि वे जो कुछ कर रहे हैं, वैसा हर कोई कर सकता है। ऐसा कहकर वे प्रत्येक मनुष्यकी छिपी शक्तियोंको जगा देते थे तथा झूठी प्रतिष्ठाके भ्रममें पड़े लोगोंको उनकी मर्यादाका भान करा देते थे।

जब गांधीजी दक्षिण-अफ्रीकामें बैरिस्टरी करते थे, तब अदालतसे लौटते ही अदालती चोगा खूंटी पर लटकाकर बाके साथ खाना पकानेमें लग जाते। रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट' पुस्तक पढते ही उन्होंने अपने सारे जीवनक्रमको बदल दिया और 'फिनिक्स-आश्रम' बनाकर शरीर-श्रमसे अपनी गुजर-बसर करने लगे। वहाँ सत्याग्रहके दिनोंमें अपने देशभाइयोंकी सेवाका व्रत लिया तो अपनी सारी रहन-सहन एकदम उनकी-जैसी ही बना ली। भारतमें आनेपर जैसे ही उन्हें इस देशकी असहनीय दरिद्रताका दर्शन हुआ, वे अँगोछा पहनने लग गये। तीसरे दर्जेमें रेल-यात्राका कारण भी यही था।

गाधीजीने रेलमे, घोडागाडीमे और दक्षिण-अफ्रीकाके राष्ट्रपति-भवनके सामने मार खानेपर उसे अपना निजी अपमान माननेके बजाय अपनी सारी कौमका अपमान मानकर पूरी कौमको ही ऊपर उठानेको अपना जीवन-कार्य बना लिया। क्या दक्षिण-अफ्रीकामे और क्या भारतमे, उनके तमाम कार्योंमे प्रेरणा और प्रकाशका एकमात्र मत्र रहा है—सत्य और अहिंसा। तुलसीदासजीकी तरह उनकी सारी साधनाका आधार यही रहा .

'तुलसी' सोइ सब भाँति परम हित पूज्य प्राणते प्यारो।
जासो होइ सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥

बापूका सत्य रामसे अलग नही था।

जटिलसे जटिल समस्याको लेकर भी जब कोई बापूके पास पहुँचता, तो फौरन वे अपना सत्य-अहिंसाका दीपक उठाकर उसे रास्ता दिखा देते। लोग दग रह जाते। बापू कहते, "यह दीपक हाथमे ले लो, सब-कुछ साफ-साफ सूझ जायगा और साँप-बिच्छुओसे रक्षा हो जायेगी।"

राजनीति, धर्म, अर्थशास्त्र, समाज-सुधार, हर जगह हर क्षेत्रमे भगवद्गीता उनका पथ-दर्शन करती थी।

दैवी-सपद्मे बताया गया सबसे पहला गुण **अभय** इसी साधनाका फल है, जो उनमे सबसे अधिक मात्रामे था। गाधीजी पहले आदमी थे, जिन्होने डकेकी चोट कहा कि अग्रेजी सल्तनतको उखाडना मेरा धर्म है। न्यायाधीशोसे उन्होने कहा कि "यदि आप भी मानते है कि यह हुकूमत खराब है, तो अपनी नौकरी छोड दीजिये, लेकिन यदि आपके खयालमे सारी जनताके लिए यह हितकर है, तो मुझे कानूनमे बतायी अधिक-से-अधिक सजा दीजिये।" गाधीजीसे पहले ऐसा किसने कहा था ?

सरकारी अधिकारियो और अपने विरोधियोके साथ मतभेद रखते हुए भी गाधीजी अपने व्यवहारमे जितना सौजन्य और जितनी शालीनता बरतते थे, उसकी मिसाल ससारके इतिहासमे शायद ही दूसरी मिले। यही नही, उनके चरित्र और सिखावनका असर इतना पड चुका था कि कानून-भग करनेके आरोपमे जिनपर मामले चलते, वे सब नि सकोच और निर्भयताके साथ कहने लग गये थे कि "हाँ, हमने यह कानून तोडा है।"

ससारमे आमतौरपर लोग मानते और कहते है कि राजनीतिमे सच, झूठ, धोखा, छल, कपट सब चलता है—वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा।

गाधीजीने इस मान्यताको सदा गलत और हानिकर माना। वे मानते थे कि चारित्र्यको गिराकर ससारका कोई काम नही बन सकता। इसीलिए चारित्र्य-शुद्धि और साधन-शुद्धि पर बापूने सबसे अधिक जोर दिया है।

दूसरी व्यापक धारणा यह है कि धर्मको राजनीतिके क्षेत्रमे दस्तदाजी नहीं करनी चाहिए। धर्म और राजनीति एक साथ चल ही नही सकते। गाधीजीने बहुत बल देकर हमेशा कहा कि धर्महीन राजनीति गलेकी फाँसी है। राजनीतिको सदा धर्मके रास्तेसे ही चलना चाहिए और वह 'धर्म' भी धर्म नही, जो राजनीतिसे परहेज करे। उन्हें राजनीतिमे इसी कारण आना पडा कि उन्होंने अनुभव किया कि राजनीतिको शुद्ध किये विना धर्मका भी पालन नही हो सकता।

जात-पाँत, छुआछूत, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच आदिके सब भेदभावोंको मिटानेका मार्ग उन्होंने सारे राष्ट्रको बताया और स्वय उसपर प्राणोकी बाजी लगाकर अमल किया। अस्पृश्यताके बारेमे वे मानते थे कि यह कलक अगर नहीं मिटाया जा सका, तो स्वय हिन्दू धर्म पृथ्वीतलसे मिट जायेगा। जब सवर्ण समाज उन्हें अपने मे मिलानेका प्रयत्न करेगा, तो उसे अपनी अनेक मान्यताओ, धारणाओं और आदतोंको बदलना होगा। यह तभी सभव होगा, जब हिन्दू-समाज अपने दिलको बडा बनायेगा। इस प्रक्रियामे उसे अपने सामाजिक न्याय और पुरानी धार्मिक मान्यताको परिष्कृत करना होगा।

यह प्रक्रिया निश्चय ही हिन्दू-समाजके सपूर्ण जीवन-दर्शन और व्यवहारको बदल देगी। इससे सवर्ण हिन्दू-समाजका जीवन शुद्ध होगा, अस्पृश्योंका जीवन भी शुद्ध होकर ऊँचे स्तर पर आने लगेगा और अप्रत्यक्ष रूपसे इसके फलस्वरूप मुस्लिम समाजकी विचारधारा और उनके व्यवहारपर भी निश्चित असर होगा।

केवल राजनीति नही, व्यवहार-नीतिमे भी लोग आमतौरपर 'जैसेको तैसा', 'शठे शाठ्यम्' नियमको मानते है। इसका माननेवाला पुरुष यदि विद्वान् है, तो सीधे भगवान् श्रीकृष्णका वचन 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' कहकर अपने व्यवहार और नीति-अनीतिका समर्थन करता है। इससे भले ही व्यक्तिका तत्काल काम चल जाता हो, परन्तु समाज ऊपर नही उठता, शुद्ध नहीं होता। गाधीजीके विचार इस विषयमे बिलकुल भिन्न थे। स्वभावसे ही वे 'शठं प्रत्यपि सत्यम्" और बुरेके साथ भी भलाई करनेकी बात मानते और करते आये। उनपर प्राणघातक हमला करनेवालेके साथ भी उनका व्यवहार क्षमाका रहा है। श्री मुहम्मद अली जिन्नाके रूखे व्यवहारकी परवाह न करके 'कायदेआजम' के दरवाजे पर दस बार वे खुद गये। अलीबधु, सुहरावर्दी आदिको उन्होने नही छोडा, बल्कि पूरे सौजन्यके साथ बर्ताव करनेपर भी वे ही उन्हें छोड गये।

एक और विशेषता गाधीजीकी यह थी कि बडी-से-बडी बातको सँभालते हुए छोटी-से-छोटी बात भी वे भूलते नही थे। आश्रममे वे नियमित रूपसे निश्चित समयपर सामूहिक रसोडेमे सब्जी तैयार करने चले जाते। रसोई विषयक सारी बातोंमे वे पूरी दिलचस्पी लेते, कहीं कोई कमी दीखती तो स्वय पूर्ति करते।

भोजनकी दो घटियाँ होती । दूसरी घटीके वाद दरवाजा वन्द हो जाता । वादमे आनेवाले दूसरी पक्तितक रुकते । एक बार स्वय वापूको देर हो गयी, तो आप वाहर खडे रहे । रसोडेके व्यवस्थापकोने शिकायत की कि लोग जूठन वहुत छोडते है । इससे नुकसान भी होता है और गन्दगी भी वढती है । मक्खियां पैदा होती है । तो उन्होने अपना आसन दरवाजेके पास लगा लिया और आदेश दे दिया कि खाना खाकर जो भी थालियाँ साफ करने जायँ, वे उन्हें थाली दिखाकर जायँ । गहरीसे गहरी राजनीतिकी वात चल रही हो और कोई वीमार या उनके प्रयोगका अनुयायी आ जाय, या दीख जाय, तो पूछ लेते, "तुमने पालककी भाजी ली थी या नही ? अव कैसा है ?" आदि ।

वाइसरायसे भारतकी राजनीतिकी चर्चा करते हुए भी यदि देखते कि दिन वहुत हो गये और शेष वातचीतमे कुछ देर है, तो वाइसरायसे कह देते, "अव मैं जाता हूँ । मेरे आश्रममे कार्यकर्ता वीमार है, उनकी देखभाल मुझे करनी है ।"

सुवह मुह घोनेके वाद दतौन धोकर जलानेके लिए गाधीजी सूखनेको सँभालकर एक तरफ रख देते । हाथ घोनेके लिए पानी भी जरूरतसे अधिक कोई भूलसे गिराता, तो कहते, "सावरमतीके सारे पानीके मालिक हम ही नही, और लोग भी हैं ।"

समयके वडे पावन्द । उनसे मिलनेके लिए वडे-से-वडे आदमीको भी समयका पालन करना होता । निश्चित समय पूरा होते ही घडी दिखा देते । रेलमे कही जाना होता, तो ट्रेनके आनेसे १०-१५ मिनट पहले स्टेशन पहुच जाते और मिलने-वालोको वही वुलाकर वातचीत करते ।

देशभक्त प्राय हिसाव-कितावमे ढीले होते है । कोई हिसाव या रसीद माँगता है, तो अपमान समझते है । कहते है, "हमपर इतना भी विश्वास नही ?" गाधीजी इस सवधमे वडे कडे थे । उनका आग्रह था कि कार्यकर्ताको हिसाव रखना ही चाहिए । सार्वजनिक धनके उपयोगमे पाई-पाईका खर्च भी विवेकके साथ हो । मनुने एकवार पूछा, "वापू, आप ग्यारह वजे सोते हैं और तीन वजे उठ जाते है, फिर लालटेन क्यो वुझा देते है ?" तो कहा, "तेरा वाप कमाता है कि मेरा वाप कमाता है ? यह जनताका पैसा है । उसे इस तरह खर्च करनेका हमें क्या अधिकार है ?"

ऐसा था हमारा नये युगका नया नेता—वापू !

२. गांधी प्रकटा

(१९१६)

'गगन-गिराने जय जय गाया तू आया है, तू आया।'

उस दिन काशीमे एकाएक गाधीका तेजस्वी रूप प्रकटा। उसकी खरी, सीधी वाणी मानो गुलाम भारतको आजादीका मार्ग ही बताने आयी हो। बात फरवरी १९१६ की है। काशीमे महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने हिन्दू विश्व विद्यालयके शिलान्यासका आयोजन किया था—लार्ड हार्डिंग, तत्कालीन वाइस रायके हाथो। उस समय उनकी रक्षाके लिए पुलिसका ऐसा कडा प्रबन्ध किया गया था, जिससे वाराणसीका दृश्य एक जेलखानेकी तरह हो गया था।

उस समारम्भमे बोलनेके लिए एक दिन गाधीजीको भी मालवीयजीने निम त्रित किया था। समारम्भमें पहले दिन अनेक राजा-महाराजा अपने राजसी अलकारो और आभूषणोंसे सज्जित विराजमान थे। गाधीजीके भाषणके दिन श्रीमती एनीबेसेंट भी पधारी थी। गाधीजी सीधे-सादे काठियावाडी वेशमे थे।

गोखलेने गाधीजीको एक साल चुपचाप देशकी स्थितिका निरीक्षण करनेकी जो सलाह दी थी, उसकी अवधि समाप्त हो गयी थी—और गाधीजीका ऐसे बडे समारोहमे स्वराज्यके सबधमे बोलनेका, उसके बाद, यह पहला ही अवसर था। पुलिसका इतना कडा प्रबन्ध और राजा-महाराजाओंके वैभवका वह प्रदर्शन गाधी-जीको बहुत अखरा। उससे पीडित होकर उन्होंने अपना जो भाषण किया, वह वहाँ बैठे बडे-बड़े लोगोको धमका धडाका जैसा लगा। उसमे उन्होंने गाधीका प्रह्लाद ही नही, सम्भवत: नृसिहरूप भी देखा। वे सब उठ-उठकर इस तरह भागने लगे, मानो सचमुच कोई आफत आ गयी हो। वह भाषण क्या था, सारे भावी गाधी, विक्रमी और विराट् गाधीकी विकल आत्माकी ललकार थी।

वैसे घटना १९१६ की है और उसमे भारतको गाधीके वास्तविक रूपकी पहली झलक मिली, फिर भी गाधीजीने अपनी 'आत्मकथा' मे इसका उल्लेख-मात्र करके छोड दिया है। किन्तु हमारी दृष्टिमे भारतीय स्वतत्रताके इतिहासमे इस प्रसगका स्थान अमिट है। अत 'आत्मकथा' का श्रीगणेश हम इसी महान् घटनासे कर रहे हैं।

हिन्दीमे न बोलनेके लिए क्षमा मागते हुए, और हिन्दू-विश्वविद्यालयमे दी जानेवाली शिक्षाके विषयमे छात्रोको सावधान करते हुए तथा उत्तरदायी शासनकी माँगसे सम्बद्ध काग्रेसमे पारित हुए राजनैतिक प्रस्तावका जिक्र करते हुए गाधीजीने कहा—

"काग्रेसने स्वराज्यके बारेमे एक प्रस्ताव पास किया है। यो तो मुझे विश्वास है कि 'काग्रेस' और 'मुस्लिम लीग' अपने-अपने कर्तव्यका पालन करेंगी और

कुछ-न-कुछ ठोस सुझावके साथ सामने आयेगी। किन्तु जहाँतक मेरा सवाल है, मैं स्पष्ट रूपसे यह बात स्वीकार करना चाहता हूँ कि मुझे इस बातमे उतनी दिलचस्पी नही है कि वे क्या कुछ कर पाती हैं, जितनी इस बातमे है कि विद्यार्थी-जगत् क्या करता है, या जनता क्या करती है। कोई भी कागजी कार्रवाई हमे 'स्वराज' नही दे सकती। धुँआधार भाषण हमें स्वराज्यके योग्य नहीं बना सकते। हमारा अपना आचरण ही हमें स्वराजके योग्य बनायेगा।

"सवाल यह है कि हम अपनेपर किस तरह राज करना चाहते है ? मै आज भाषण नही करना चाहता हूँ—आपके सामने खुला-खुला सोचना चाहता हूँ। कल शामको मैं विश्वनाथजीके दर्शनोंके लिए गया था। उन गलियोमे चलते हुए मेरे मनमे ख्याल आया कि यदि कोई अजनबी एकाएक ऊपरसे इस मन्दिरपर उतर पडे और यदि उसे हम हिन्दुओके बारेमे विचार करना पडे तो क्या हमारे बारेमे कोई छोटी राय बना लेना उसके लिए स्वाभाविक न होगा ? क्या यह महान् मन्दिर हमारे अपने आचरणकी ओर उँगली नही उठाता ? मैं यह बात एक हिन्दूकी तरह बडे दर्दसे कह रहा हूँ। अगर हमारे मन्दिर कुशादगी और सफाईके नमूने न हो तो हमारा स्वराज कैसा होगा ?"

फिर शहरोकी गन्दगी और रेलके तीसरे दर्जेके यात्रियोकी दुर्दशाका वर्णन करनेके बाद उन्होंने भारतकी गरीबीकी चर्चा करनेवाले राजा-महाराजाओकी ओर ध्यान दिलाकर कहा—

"अब मैं आपको दूसरी जगह ले चलता हूँ। जिन महाराजा महोदय (दरभगाके महाराज) ने कलकी हमारी बैठककी अध्यक्षता की थी, उन्होने भारतकी गरीबीकी चर्चा की। दूसरे वक्ताओने भी इस बात पर बडा जोर दिया। किन्तु जिस शामियानेमे वाइसरायके द्वारा शिलान्यास-समारोह हो रहा था, वहाँ हमने क्या देखा ? एक ऐसा शानदार प्रदर्शन, जडाऊ गहनोकी ऐसी प्रदर्शनी, जिसे देखकर पेरिससे आनेवाले किसी जौहरीकी आँखे भी चौंधिया जाती। जब मैं गहनोसे लदे हुए उन अमीर-उमराओका भारतके लाखो गरीब आदमियोसे मिलान करता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं इन अमीरोसे कहूँ—जबतक आप अपने ये जेवरात नही उतार देते और इन्हें गरीबोकी धरोहर मानकर नही चलते, तबतक भारतका कल्याण नही हो सकता। मुझे यकीन है कि सम्राट्, अथवा लॉर्ड हार्डिंग, सम्राट्के प्रति वास्तविक राजभक्ति दिखानेके लिए किसीका गहनोके सन्दूक उलटकर सिरसे पाँवतक सजकर आना जरूरी नही समझेंगे। अगर आप चाहें तो मैं जानकी बाजी लगाकर महाराज जॉर्ज पचमका सन्देशा आपको लाकर दे दूँ कि वे यह नही चाहते।

"जब कभी मैं सुनता हूँ कि कही, फिर वह ब्रिटिश भारतमे हो चाहे हमारे बडे-बडे राजाओ और नवाबो द्वारा शासित रजवाडोमे, कोई बडा भवन उठाया जा

रहा है तो मेरा मन दुखी हो जाता है और मैं सोचने लगता हूँ कि यह पैसा तो किसानोंके पाससे इकट्ठा किया गया पैसा है।"

अन्तमे पुलिसके कड़े प्रबन्धकी ओर संकेत करते हुए उन्होंने ऐसे वचन कहे, जिन्हें लोगोंने बड़े आश्चर्य और भयके साथ सुना। भारतके इतिहासमें लोगोंने एक वाइसरायके प्रति उस समयतक एक भारतवासीके मुँहसे ऐसे शब्द पहली बार ही सुने होंगे। ऐसी निर्भय वाणी उस समय स्वप्नमे भी कहीं नहीं सुनी जाती थी—

"श्रीमान् वाइसरायके, यहाँके रास्तोंसे निकलते समय, हमलोग बड़ी चिन्तामे थे। स्थान-स्थानपर खुफिया पुलिसके लोग तैनात थे। हम दंग रह गये। हमारे मनमे बार-बार यह प्रश्न उठता था कि हम लोगोंके प्रति इतने अविश्वासका कारण क्या है? इस प्रकार मरणान्तक दुःख भोगते हुए जीनेकी अपेक्षा क्या लॉर्ड हार्डिंग-के लिए सचमुच ही मर जाना अधिक श्रेयस्कर नहीं है? परन्तु एक बलशाली सम्राट्के प्रतिनिधि इस प्रकार मर भी नहीं सकते। मृतककी भाँति जीना ही वे शायद जरूरी समझते होंगे।"

फिर बम-पार्टीवालोंको लक्ष्य करके गांधीजीने कहा—"मैं खुद भी अराजक हूँ, पर दूसरे वर्गका। हमारे यहाँ अराजकोंका एक वर्ग है, उस वर्गके लोगोंसे मिलनेका अवसर यदि मुझे मिले तो मैं उनसे स्पष्ट कह दूँगा—'भाइयो, यदि भारतको अपने विजेताओं पर विजय प्राप्त करनी है तो आपकी अराजकताके लिए यहाँ जगह नहीं।' यह भीरुताका लक्षण है। यदि आपका ईश्वरपर विश्वास हो, और यदि उसका भय मानते हो तो फिर आपको किसीसे डरनेका कोई कारण नहीं है। फिर चाहे वे राजा-महाराजा हों, वाइसराय हों, खुफिया पुलिस हो, चाहे सम्राट् हों। अराजकोंके स्वदेश-प्रेमका मैं बड़ा आदर करता हूँ। वे जो स्वदेशके लिए खुशी-खुशी मरनेके लिए तैयार रहते हैं, उनकी मैं इज्जत करता हूँ। पर मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या किसीकी जान लेना प्रतिष्ठाका कार्य है? क्या छूरेसे हत्या करनेके फलस्वरूप जो मृत्यु-दण्ड प्राप्त होता है, उसे किसी भी प्रकार गौरवपूर्ण माना जा सकता है? मैं कहता हूँ—'नहीं', कोई भी ग्रन्थ ऐसे उपायका अवलम्बन करनेकी अनुमति नहीं देता।

"यदि मुझे इस बातका विश्वास हो जाय कि अंग्रेजोंके रहते हुए इस देशका कदापि उद्धार न होगा—उन्हें यहाँसे निकाल ही देना चाहिए—तो उनसे अपना बोरिया-बिस्तर समेटकर यहाँसे चलते होनेकी प्रार्थना करनेमें मैं कभी आगा-पीछा न करूँगा। मुझे विश्वास है कि अपनी इस दृढ़ धारणाके समर्थनमें मैं मरनेको भी तैयार रहूँगा। ऐसा मरण ही मेरी सम्मतिमें प्रतिष्ठाका मरण है। बम फेंकने-वाला गुप्तरूपसे षड्यन्त्र करता है—वह बाहर निकलनेसे डरता है और पकड़े जानेपर अपने अयोग्य और अनियन्त्रित उत्साहका प्रायश्चित्त माँगता है।

"अपने देशका नाम मुझे बड़ा ही प्यारा है और आप लोगोंने मेरी प्रार्थना है

कि अराजकताको भारतमे बिलकुल स्थान न मिलने दीजिये। हमारे शासकोसे आपको जो कुछ कहना हो, उसे खुलकर साफ शब्दोमे कह दीजिये और यदि आपका कथन उन्हे बुरा लगे तो उसके परिणामस्वरूप जो कष्ट मिले, उन्हे भोगनेके लिए तैयार रहिये। आप उन्हें गालियां मत दीजिये।"

इसके पश्चात् भारतीय मुल्की सेवाको लक्ष्य करके गाधीजी बोले—

"इस सेवा (सिविल सर्विस) के बहुतसे लोग नि सन्देह उद्धत, अत्याचारप्रिय और अविवेकी होते है। इसी तरहके और भी कितनेही विशेषण उन्हे दिये जा सकते है। यह सब कुछ मुझे स्वीकार है। यही नही, मै यह भी मानता हूं कि कुछ वर्षोंतक हमारे देशमे रहकर वे और भी ओछी मनोवृत्तिके बन जाते है। पर इससे क्या सूचित होता है? यहां आनेके पहले यदि वे सभ्य और सत्पुरुष थे, और यहां आकर यदि वे नीति-भ्रष्ट हो गये तो क्या इसे हमारे ही चरित्रका प्रतिबिम्ब नही कहना चाहिए? भारतमे आनेपर खुशामदकी जो हवा उन्हें चारो ओरसे घेर लेती है, वही उनके नीति-च्युत होनेका कारण है। कभी-कभी अपने दोष स्वीकार करना भी अच्छा होता है।

"यदि किसी दिन हमे स्वराज मिलेगा तो वह अपने ही पुरुषार्थसे मिलेगा। वह दानके रूपमे कदापि नही मिलनेका। ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहास पर दृष्टिपात कीजिये। ब्रिटिश साम्राज्य चाहे कितना ही स्वतन्त्रता-प्रेमी हो, फिर भी स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए स्वय उद्योग न करनेवालोको वह कभी स्वतन्त्रता देनेवाला नही है। आप चाहें तो बोअर-युद्धसे कुछ शिक्षा ले सकते है। कुछ ही वर्ष पहले जो बोअर लोग साम्राज्यके शत्रु थे, वे ही अब उनके मित्र है।"

गाधीजीका यह भाषण पूरा न हो पाया था कि सभामे गडबड शुरू हुई और श्रीमती एनी बेसेंट उठकर चल दी। उनके साथ और भी कई बडे-बडे लोग उठकर चले गये और व्याख्यानका अन्त यही हो गया। गाधीजीकी स्पष्ट और खरी बातोसे वे लोग भयभीत हो गये थे। व्याख्यानके बीचमे भी एकबार श्रीमती बेसेंटने गाधीजीको भाषण पूरा करनेका सकेत किया था। बादमे भी उन्होने गाधीजीके इस भाषणपर कुछ आक्षेप किये थे, जिनका गाधीजीने करारा उत्तर दिया था।

इस भाषणमे गाधीजीने जिन-जिन बातोकी ओर ध्यान दिलाया है, पाठक देखेंगे कि आगे चलकर वे सब बातें उनके जीवनमे चरितार्थ हुई है और बमबाजीसे नही, अहिंसात्मक सत्याग्रहसे हमने अंग्रेजी राज्यकी जड उखाड दी और तारीफ यह कि इसी गाधीको अंग्रेजोंने अपना मित्र और ईसाका दूसरा अवतार माना।

३. हिन्दी ही राष्ट्रभाषा

(१९१५-'१७)

'एक लक्ष्य, एक झण्डा, एक भाषा—एक राष्ट्रीयताके लिए अनिवार्य है।'

'बोले तैसा चाले त्याची वंदावीं पाउलें।'

(जिनकी कथनी और करनी एक-सी है, वह वन्दनीय है।)

गांधीजी जीवमात्रकी एकता साधना चाहते थे। राष्ट्रीय एकता उसीका एक भाग है। दक्षिण अफ्रीकामें ही उनके मनमें 'हिन्द स्वराज्य' और उसके लिए आवश्यक 'राष्ट्रीय एकता' के भाव जड़ पकड़ने लगे थे। 'राष्ट्रभाषा' कौनसी हो सकती है, इसका भी निर्णय वह अपने मनमें उसी समय कर चुके थे। 'हिन्द स्वराज्य' में एक जगह 'हिन्दुस्तानकी भाषा अंग्रेजी नहीं, हिन्दी (हिन्दुस्तानी) है। वह आपको सीखनी होगी।" ऐसा कहा है। अपने 'इंडियन ओपीनियन' पत्रमें हिन्दीके लेख और स्तम्भ रखते थे—वहाँ स्वामी भवानीदयाल सन्यासीके द्वारा हिन्दी-प्रचार भी होता था।

दक्षिण-अफ्रीकासे भारतमें आते ही गांधीजीने हिन्दी और आगे चलकर 'हिन्दुस्तानी' या 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' का नारा बुलन्द किया। लखनऊ-कांग्रेसके समय उन्होंने अंग्रेजी चाहनेवाले अपने श्रोताओंसे दृढ़तापूर्वक कहा था: "यदि एक वर्षके अन्दर आप हिन्दी न सीख लेंगे, तो आपको मेरा भाषण अंग्रेजीमें सुननेको नहीं मिलेगा।'

वाइसराय द्वारा बुलायी युद्ध-परिषद्में अकेले गांधीजीने ही हिन्दीमें बोलनेका साहस किया था। एक सभामें तो उन्होंने लोकमान्य तिलकको भी उलाहना दिया था—"लोकमान्य तिलक यदि हिन्दीमें बोलते तो बड़ा लाभ होता। लार्ड डफरिन तथा लेडी चेम्सफोर्डकी भाँति तिलक महाराजको भी हिन्दी सीखनेका प्रयत्न करना चाहिए। रानी विक्टोरियाने भी हिन्दी सीखी थी। पण्डित मालवीयजीसे मेरी अर्जी है कि यदि वे कोशिश करें तो अगले वर्ष अन्य किसी भी भाषामें कांग्रेसके व्याख्यान न हों। मेरा यह उलाहना है कि कल वे कांग्रेसमें हिन्दीमें क्यों नहीं बोले?" और तिलक महाराज उनका अनुरोध मानकर हिन्दीमें बोले भी।

एक बार और भी मालवीयजीको अंग्रेजीमें भाषण करनेपर उन्होंने उलाहना दिया था। श्रीमती बिसाण्टको उन्होंने लिखा था कि वे खुद मातृभाषामें बोला करें और जिन्ना साहबको भी ऐसी प्रेरणा दें।

क्या गुजरात और क्या बिहार, जहाँ कहीं गांधीजी गये और मौका मिला, वहाँ उन्होंने हिन्दीपर—राष्ट्रभाषापर—जोर अवश्य दिया। ५ फरवरी १९१६ को काशी नागरी प्रचारिणी सभामें उन्होंने हिन्दीके बारेमें कहा था कि

"जिस भाषामे तुलसीदास जैसे कविने कविता की हो, वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा ठहर नही सकती।"

काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमे अधिक बल देकर (फरवरी १९१६) कहा : "मुझे आज इस पवित्र नगरमे, इस महान् विद्यापीठके प्रागणमे अपने ही देश-वासियोसे एक विदेशी भाषामे बोलना पड रहा है। यह बडी अप्रतिष्ठा और शर्मकी बात है। पिछले दो दिनोमे यहाँ जो भाषण दिये गये है, यदि उनमे लोगोकी परीक्षा ली जाय और मै परीक्षक होऊँ तो निश्चित है कि ज्यादातर लोग फेल हो जायें।"

आगे कहा "मै गत दिसम्बरमें काग्रेसके अधिवेशनमे मौजूद था। वहाँ बहुत अधिक तादादमे लोग इकट्ठे हुए थे। आपको ताज्जुब होगा कि बम्बईके वे तमाम श्रोता केवल उन भाषणोसे प्रभावित हुए, जो हिन्दीमे किये गये थे। यह बम्बईकी बात है, बनारसकी नही, जहाँ सभी लोग हिन्दी बोलते हैं। यदि आप मुझसे यह कहें कि हमारी भाषामे उत्तम विचार अभिव्यक्त किये ही नही जा सकते, तब तो हमारा ससारसे उठ जाना अच्छा है। क्या कोई व्यक्ति स्वप्नमे भी यह सोच सकता है कि अग्रेजी भविष्यमे किसी भी दिन भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है ?"

लखनऊमे एकलिपि-सम्मेलनमे (२९-१२-'१६) कहा था—"मै गुजरातसे आता हूँ। मेरी हिन्दी टूटी-फूटी है—मै उसीमे आपसे बोलता हूँ, क्योकि थोडी अग्रेजी बोलनेमे मुझे ऐसा मालूम होता है, मानो मुझे इससे पाप लगता है। आपको हिन्दीका गौरव बतानेकी जरूरत नही है। जैसे कोई गगामे स्नान करता रहे और कहे कि 'गगाजी, इधर आओ'। यदि आज हिन्दी सिखानेवाले और काम करनेवाले लोग होते तो मद्रासी भी हिन्दी जानते होते। खाली सम्मेलन नही, काम चाहिए।"

बापू चाहते थे कि जल्द-से-जल्द अहिन्दी-भाषी प्रान्तोमे भी हिन्दीका प्रवेश और प्रचार हो। इसके लिए कार्यकर्ता चाहिए। अत उन्होने कहा—"अहमदा-बादमे मुझे कोई ऐसा मनुष्य नही मिला, जो मुझे और मेरे आश्रमवालोको हिन्दी पढा सके। मद्रासमे भी अभीतक हिन्दीका प्रचार नही हुआ। आपने कोई प्रयत्न ही नही किया, दस-पाँच लोग ऐसे जुटाइये, जो मद्रास प्रान्तमे जाकर हिन्दीका प्रचार करें।"

एक भेंटके अवसरपर तो उन्होंने यहाँतक जोर दिया कि "जबतक हिन्दी भाषामे सारा सार्वजनिक कार्य नही होगा, तबतक देशकी उन्नति नही हो सकती। काग्रेसमे जबतक राष्ट्रभाषाद्वारा ही सब काम न हो, तबतक स्वराज्य नही मिल सकता।"

हिन्दीकी महत्ता और राष्ट्रभाषाके रूपमे उसके अधिकार (पात्रता) का

वर्णन करते हुए बापूने एक जगह कहा—"हिन्दी ही हिन्दुस्तानके शिक्षित समुदायकी भाषा हो सकती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। यह कैसे हो, केवल यही विचार करना है। जिस स्थानको आजकल अंग्रेजी भाषा लेनेका प्रयास कर रही है और जिसे लेना उसके लिए असम्भव है, वही स्थान हिन्दीको मिलना चाहिए, क्योंकि हिन्दीका उसपर पूर्ण अधिकार है। यह स्थान अंग्रेजीको नहीं मिल सकता, क्योंकि वह विदेशी भाषा है और हमारे लिए बड़ी कठिन है। हिन्दी बोलनेवालोंकी सख्या प्राय साढे छह करोड है (१९१६-'१७)। बंगला, बिहारी, उड़िया, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पजाबी और सिन्धी हिन्दीकी बहनें है। उन भाषाओंके बोलनेवाले थोडी-बहुत हिन्दी समझ तथा बोल लेते हैं। इन सबको मिलानेसे सख्या प्राय २२ करोड़ (उस समय) हो जाती है। जिन भाषाका इतना प्रचार है, उसकी बराबरी करनेके लिए अंग्रेजी, जिसे एक लाख भी हिन्दुस्तानी ठीक-ठीक नही बोल सकते, क्योंकर समर्थ हो सकती है?"

हमारी भीरुता, श्रद्धा और हिन्दी-भाषाके गौरवको अज्ञानके कारण ही हिन्दी हमारे कामकाजकी भाषा नहीं बन सकी है।—ऐसा बापूने कहा था।

तमिल-द्रविड प्रान्तोंकी कठिनाईका मार्ग बताते हुए बापूने सुझाया था—"इसकी भी औषधि हमारे हाथमें है। हिन्दी के उत्साही, साहसी, स्वाभिमानी, जोशीले पुरुषोंको बिना मूल्य हिन्दीकी शिक्षा देनेके लिए मद्रास आदि प्रान्तोंमें भेजना चाहिए। शिक्षकोंको भेजनेके साथ ही स्वय-शिक्षक पुस्तकें भी बनानी चाहिए। मराठी, गुजराती भाषा-भाषियोंके लिए भी हिन्दी पुस्तकें तैयार करवानी चाहिए और उन प्रदेशोंमें भी प्रचारक भेजे जाने चाहिए।"

अपनी चम्पारन-यात्रा के समय ३ जून, १९१७ को उन्होंने एक परिपत्र निकाला था, जिसमें लिखा था—"हिन्दी जल्दी-से-जल्दी अंग्रेजीका स्थान ले ले, यह ईश्वरी सकेत जान पडता है। हिन्दी शिक्षित वर्गोंके बीच समान माध्यम ही नहीं, बल्कि जनसाधारणके हृदयतक पहुँचनेका द्वार बन सकती है। इस दिशामें कोई देशी भाषा इसकी समानता नही कर सकती। अंग्रेजी तो कदापि नही कर सकती।"

गांधीजी हिन्दीका मौखिक प्रचार करके ही, राष्ट्रभाषाके रूपमें उसकी महत्ता और प्रतिष्ठा बताकर ही चुप न रहे। उन्होंने दक्षिण भारतमें हिन्दीका प्रचार करनेकी भी व्यवस्था की और वह भी ठेठ १९१८ में।

४. हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी
(१९१८)

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नतिको मूल।
पै निज भाषा-ज्ञानके मिटत न हियको सूल॥'
—भारतेन्दु

पेश्तर इसके कि हम पाठकोको हिन्दीके राष्ट्रभाषा बननेकी कथा सुनाये, विहार-छात्र-सम्मेलनमे अध्यक्षके नाते गाधीजीने जो भाषण मातृभाषा और राष्ट्रभाषाकी पुष्टिमे किया, उसे पढ लेना अच्छा होगा। उन्होने कहा था :

"इस सम्मेलनका काम इस प्रान्तकी भाषामे ही—और वही राष्ट्रभाषा भी है—करनेका निश्चय करके आपने दूरन्देशीसे काम लिया है। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि आप लोग यह प्रथा जारी रखेंगे।

"हमने मातृभाषाका अनादर किया है। इस पापका कडवा फल हमे जरूर भोगना पडेगा। हममे और हमारे घरके लोगोंके बीच कितना ज्यादा व्यवधान (अन्तर) पैदा हो गया है, इसके साक्षी इस सम्मेलनमे आनेवाले हम सभी हैं। हम जो-कुछ सीखते है, वह अपनी माताओको नही समझाते और न समझा सकते है। जो शिक्षा हमे मिलती है, उसका प्रचार हम अपने घरमे नही करते और न कर सकते हैं। ऐसा दु खद परिणाम अग्रेज कुटुम्बोमे कभी नही देखा जाता। इग्लैंडमे और दूसरे देशोमे, जहाँ शिक्षा मातृभाषामे दी जाती है, वहाँ विद्यार्थी स्कूलोमे जो-कुछ पढते है वह घर जाकर अपने-अपने माता-पिताको सुनाते हैं और घरके नौकर-चाकरो और दूसरे लोगोको भी वह मालूम हो जाता है। इस तरह जो शिक्षा बच्चोको स्कूलोमे मिलती है, उसका लाभ घरके लोगोको भी मिल जाता है।

"मातृभाषाका अनादर माँके अनादरके बराबर है। जो मातृभाषाका अपमान करता है, वह 'स्वदेश-भक्त' कहलाने लायक नही। बहुतसे लोग ऐसा कहते सुने जाते है कि 'हमारी भाषामे ऐसे शब्द नही, जिनमे हमारे ऊँचे विचार प्रकट किये जा सकें।' किन्तु यह कोई भाषाका दोष नही। भाषाको बनाना और बढाना हमारा अपना ही कर्तव्य है। एक समय ऐसा था, जब अग्रेजी भाषाकी भी यही हालत थी। अग्रेजीका विकास इसलिए हुआ कि अग्रेज आगे बढे और उन्होने स्वय भाषाकी उन्नति की। यदि हम मातृभाषाकी उन्नति नही कर सके और हमारा यह सिद्धान्त रहे कि अग्रेजीके जरिये ही हम अपने ऊँचे विचार प्रकट कर सकते है और उनका विकास कर सकते है, तो इसमे जरा भी शक नही कि हम सदाके लिए गुलाम बने रहेंगे।

"तुलसीदासजी अपने दिव्य विचार हिन्दीमे प्रकट कर सके थे। रामायण जैसे ग्रथ बहुत ही थोडे हैं। गृहस्थाश्रमी होकर भी सब-कुछ त्याग कर देनेवाले महान् देशभक्त भारतभूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजी को अपने विचार हिन्दीमे प्रकट करनेमे जरा भी कठिनाई नही होती। पण्डितजीका अग्रेजी-भाषण चाँदीकी तरह चमकता हुआ कहा जाता है, किन्तु उनका हिन्दी-भाषण इस तरह चमकता है, जैसे मानसरोवरसे निकलती हुई गगाका प्रवाह सूर्यकी किरणोसे सोनेकी तरह चमकता है।

"मुझे अग्रेजी भाषासे वैर नही है। इस भाषाका भण्डार अटूट है। यह राजभाषा है और ज्ञानकी निधिसे भरी-पुरी है। फिर भी मेरी यह राय है कि हिन्दुस्तानके सब लोगोको इसे सीखनेकी जरुरत नही। मैं इतनी ही प्रार्थना करूँगा कि आपसके व्यवहारमे और जहाँ-जहाँ हो सके, वहाँ सब लोग मातृभाषाका ही उपयोग करें, और विद्यार्थियोके सिवा जो महाशय यहाँ आये है, वे मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेका भगीरथ-प्रयत्न करें।"

अब १९१८ के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (इन्दौर) मे चलें। यह सम्मेलन गाधीजीकी अध्यक्षतामे हुआ था। उसीमे स्वीकृत एक प्रस्ताव द्वारा हिन्दी राष्ट्रभाषा मानी गयी। यही नही, अहिन्दी प्रदेशोमे हिन्दी-प्रचारके लिए मद्रासमे दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभाकी भी स्थापना हुई। सम्मेलनकी अध्यक्षता करनेसे पहले गाधीजीने सम्मेलनके द्वारा एक परिपत्र जारी कराया था, जो तत्कालीन भारतके सभी प्रान्तोंके वरिष्ठ नेताओको भेजा गया था और जिसमे यह पूछा गया था कि भारतमे कौनसी भाषा राष्ट्रभाषाका स्थान ले सकती है। उसके उत्तरमें जो पत्र आये थे, उनमें अधिकाशकी राय हिन्दीके पक्षमे थी।

अध्यक्षके नाते हिन्दीकी व्याख्या करते हुए गाधीजीने कहा था—"हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसको उत्तरमे हिन्दू और मुसलमान बोलते है और वह नागरी अथवा फारसी लिपिमे लिखी जाती है। भाषा वही श्रेष्ठ है, जिसको जन-समूह सहजमे समझ ले।"

हिन्दी और उर्दूके भेदका जिक्र करते हुए उन्होने कहा था—"हिन्दू-मुसलमानोके बीच जो भेद किया जाता है, वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिन्दी और उर्दू भाषाके भेदमे है। दोनोका स्वाभाविक सगम गगा-यमुनाके सगम-सा शोभित अचल रहेगा। मुझे उम्मीद है कि हम हिन्दी-उर्दूके झगडेमे पडकर अपना बल क्षीण नही होने देंगे। मुगलोंके जमानेमे हिन्दी या उर्दू राष्ट्रीय भाषा बनती जाती थी।

राष्ट्रभाषाका सबध हिन्दी-भाषियोकी अपेक्षा अहिन्दी-भाषी प्रान्तोसे अधिक था। हिन्दीवालोंकी तो इतनी ही कमजोरी थी कि वे हिन्दी-भाषी होते हुए भी अग्रेजीको घरेलू बातचीततकमे अपनाते जाते थे, किन्तु अहिन्दी-भाषी प्रान्तोमें तो

हिन्दी पढाने-लिखानेसे ही शुरुआत करनी थी। अत गाधीजीने दक्षिण प्रान्तोमे हिन्दी पढनेका ठोस उपाय किया, दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभाके रूपमे।

लिपिके बारेमे भी गाधीजीके विचार स्पष्ट थे। उन्होने एक सज्जनको पत्रमे लिखा कि "राष्ट्रीय शिक्षाकी योजनामे देवनागरी और उर्दू लिपियाँ अनिवार्य होनी चाहिए। मेरी तो राय है कि देवनागरी ससारमें सबसे ज्यादा वैज्ञानिक और पूर्ण लिपि है। अत इस दृष्टिसे सबसे उपयुक्त राष्ट्रीय लिपि है। परन्तु आज मुसलमानोको इसे स्वीकार करनेमे जो कठिनाई है, उसका हल मैं नही सोच पाता। इसलिए मेरा विचार है कि शिक्षित वर्गको दोनो ही लिपियोकी समान रूपसे जानकारी होनी चाहिए। तब जिसमें अधिक शक्ति होगी और ज्यादा सरल होगी, वह राष्ट्रीय लिपि बन जायगी।"

विद्यार्थियोकी सभा, पटनामे भाषण करते हुए बापूजीने कहा कि "यद्यपि मैं देवनागरी लिपिको राष्ट्रीय लिपि बनानेके पक्षमे हूँ, फिर भी मैं सभी भारतीयोसे प्रार्थना करता हूँ कि जबतक हमारे मुसलमान भाई देवनागरी लिपिको स्वीकार नही कर लेते, तबतक वे देवनागरी लिपि और फारसी लिपि, दोनो ही सीखें।"

गाधीजीको हिन्दीको राष्ट्रभाषाके पदपर ही बैठाकर और अहिन्दी-भाषी प्रान्तोमे हिन्दी-प्रचारकी योजना बनाकर सतोष नही हुआ। थोडे ही दिनो बाद १९२१ मे उन्होने अपने अग्रेजी 'यग इण्डिया' और गुजराती 'नवजीवन' के साथ हिन्दीमे भी हिन्दी 'नवजीवन' निकालना प्रारम्भ कर दिया। इससे एक लाभ यह भी हुआ कि अबतक हिन्दी पत्रोमे उनके अग्रेजी और गुजराती लेखोके हिन्दी अनुवाद हिन्दी पत्रकार अपनी-अपनी भाषा और ढँगसे निकालते थे। उसकी जगह उनका प्रामाणिक अनुवाद तथा स्वयं गाधीजीके लिखे स्वतत्र हिन्दी लेख हिन्दी पाठकोको मिलने लगे।

हिन्दी 'नवजीवन' के प्रारभिक लेखमें गाधीजीने अपने हिन्दी लेखमे लिखा था.

"यद्यपि मुझे मालूम है कि 'नवजीवन' को हिन्दीमे प्रकाशित करना कठिन काम है, तथापि मित्रोके आग्रहवश होकर और साथियोके उत्साहसे 'नवजीवन' का हिन्दी अनुवाद निकालनेकी धृष्टता मैं करता हूँ। मेरे विचारोपर मेरा प्रेम है। मेरा विश्वास है कि उनके अनुकरणसे जनताको लाभ है। इसलिए उनको हिन्दीमे प्रकट करनेकी इच्छा मुझे बहुत समयसे थी। परन्तु आजतक परमात्माने उसे सफल नही किया था। हिन्दुस्तानीको भारतवर्षकी राष्ट्रीय भाषा बनानेका प्रयत्न मैं हमेशा करता आया हूँ। हिन्दुस्तानीके सिवा दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा नही हो सकती। इसमे कुछ भी शक नही। जिस भाषाको करोडो हिन्दू-मुसलमान बोल सकते है, वही अखिल भारतवर्षकी सामान्य भाषा हो सकती है और उसमें जबतक 'नवजीवन' न निकाला गया, तबतक मुझे दुःख था।

"हिन्दुस्तानी भाषा जाननेवाले जबतक असहयोग और शान्तिके सिद्धान्त भलीभाँति न समझ लेंगे, तबतक शान्तिमय असहयोगकी सफलता असम्भव-सी है। इसलिए 'हिन्दी-नवजीवन' की आवश्यकता थी। परमात्मासे प्रार्थना है कि जो लोग केवल हिन्दुस्तानी ही समझते हैं, उन्हें 'हिन्दी नवजीवन' मददगार हो।"

आगे चलकर सन् १९४२ मे गाधीजीने काकासाहब कालेलकरके तत्त्वावधानमें हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी स्थापना की।

५. असहयोग : विश्वासघातका जवाब

(१९१९-'२०)

'उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसन्धं, भगवति वसुधे कथं वहसि॥'

—सुभाषित

(जो अपने उपकारीके प्रति पाप करता है, हे माता पृथ्वी, तू उसका भार कैसे वहन करती है ?)

इन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमे गाधीजी गये, तब खेडा का सत्याग्रह चल रहा था। पहला महायुद्ध समाप्त हुआ ही था। इसमें भारतके पुत्रोंने बडी बहादुरीसे भाग लिया था। अत स्वभावतः सारे देशको आशा थी कि अंग्रेज कुछ कृतज्ञता दिखायेंगे, परन्तु बदलेमे आया रौलट कानून। इस कानूनके विरोधमे देशमे जो तीव्र आन्दोलन खडा हुआ, जनतामें जो रोष और क्षोभ पैदा हुआ, उसे दबाने और कुचलनेके लिए अंग्रेज सरकारने सारे देशमे स्थान-स्थानपर घोर दमन किया। अमृतसरके जलियाँवाला बागका हत्याकाण्ड उसका सबसे क्रूर और भयानक उदाहरण था। इसने सारे देशकी आत्माको झकझोर दिया। विदेशोंतकमें इसकी तीव्र निन्दा हुई। इसका उल्लेख गाधीजीने 'आत्मकथा' में किया ही है।

उसी समय एक और घटना घट गयी, जिसने भारतके मुस्लिम-समाजमे भी बहुत भारी क्षोभ पैदा कर दिया। उसकी बुनियाद यह थी—पहले महायुद्धके समय इग्लैण्डके आदि मित्रराष्ट्रोंके खिलाफ जर्मनीके साथ तुर्कस्तानके खलीफाने भी युद्ध घोषित कर दिया। अत स्वभावत इग्लैण्ड और तुर्कस्तान एक-दूसरेके दुश्मन बन गये।

इग्लैण्डकी फौजोंमे हिन्दुस्तानी सिपाही और उनमें मुसलमान भी थे। तुर्कस्तानके युद्धमें शरीक होते ही मुसलमानोंमे खलबली मची। उनके दिलमें सवाल खडा हो गया कि अब अपने धर्मगुरु तुर्कस्तानके खलीफाके दुश्मन इग्लैण्डका साथ कैसे दे सकते हैं ? इग्लैण्डको भी चिन्ता हुई। तब भारतके मुसलमानोंकी नाराजी-

को दूर करनेके लिए ब्रिटेनके प्रधानमन्त्री लॉयड जॉर्जने स्पष्ट शब्दोमे वचन दिया था कि "हम तुर्कीको उसके एशिया-माइनर और थ्रेसके प्रसिद्ध और समृद्ध द्वीपोसे वचित करनेके लिए, जिनकी आवादी मुख्यत तुर्क है, लडाई नही लड रहे है।" मुसलमानोका कहना था कि जजीरतुल अरब, जिसमें मेसोपोटामिया, अरविस्तान, सीरिया, फिलस्तीन और उसके सारे धार्मिक स्थान शामिल हैं, हमेशा खलीफाके सीधे अधिकारमे रहना चाहिए। परन्तु अस्थायी सन्धिकी शर्तोके फलस्वरूप तुर्कीको अपने प्रदेशोसे वचित होना पडा। थ्रेस यूनानको-नजर कर दिया गया और तुर्की-साम्राज्यके एशियाई प्रदेशोको ब्रिटेन और फ्रान्सने लीगके आज्ञापत्रोके बहाने आपसमे बाँट लिया। मित्र-राष्ट्रो द्वारा एक हाई कमीशन नियुक्त किया गया, जो हर लिहाजसे तुर्कीका असली शासक ही बना दिया गया था और सुलतान एक कैदी मात्र रह गया था। भारतके मुसलमान ही नही, वल्कि अन्य जातियाँ भी ब्रिटिश प्रधानमत्रीके इस विश्वासघातसे क्रुद्ध हो गयी थी। इसलिए प्रमुख काग्रेसी और खिलाफती नेता एकत्र हुए और उन्होने लॉयड जॉर्जके वचनभगसे उत्पन्न हुई देशकी स्थितिके सम्बन्धमें चर्चा की और अन्तमें गाधीजीके नेतृत्वमें खिलाफत-आन्दोलन करनेका निश्चय किया।

हजारो भावुक मुसलमान ऐसे अन्यायी राज्यमे रहना पाप समझकर अफगानिस्तानके लिए चल दिये। किन्तु अफगानिस्तानने अपनी सीमाएँ बन्द कर दी। इस कारण उन्हें बहुत तकलीफें सहनी पडी और अतत अधिकाश लौट भी आये। परन्तु सारे देशके मुसलमानोमे एक जवरदस्त बेचैनी फैल गयी और यह सोचा जाने लगा कि सरकारके इस विश्वासघातका जवाब किस प्रकार दिया जाय और किस प्रकार खिलाफत—खलीफाके साम्राज्य—की रक्षा की जाय।

एक तरफ मुसलमानोमे यह बेचैनी छायी हुई थी और दूसरी तरफ युद्धमे मिली सफलतापर खुशियाँ मनानेके लिए सरकारकी तरफसे जगह-जगह विजयोत्सवोका आयोजन किया जा रहा था। मुसलमान इन उत्सवोमे शरीक हो या नही, इस विषयपर विचार करनेके लिए दिल्लीमें एक सभा हो रही थी। इसमें शरीक होनेके लिए हकीम अजमलखाँ और श्री आसफअलीकी तरफसे एक निमन्त्रण गाधीजीके पास भी पहुँचा। ('आत्मकथा' अध्याय ३६)

निमन्त्रणमे यह भी लिखा था कि इस अवसरपर गोरक्षाके प्रश्नपर भी विचार किया जायगा। गाधीजीको यह वाक्य पढते ही खटका। अत सभामे जानेपर स्वामी श्रद्धानन्दजी तथा हकीम साहवसे सलाह करके सभाको उन्होंने समझाया कि दोनो प्रश्न निस्सन्देह बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु इनको इस प्रकार जोडना उचित और शोभाजनक नही होगा। यह सौदे-जैसी वात हो जायगी। हिन्दुओको और मुसलमानोको अपनी-अपनी तरफसे एक-दूसरेकी प्रिय वस्तुके लिए स्वतत्र

रूपसे सोचना चाहिए। मुसलमान हमारे देशबन्धु हैं। उनके नष्टमें साथ देनेकी बात हिन्दू सोचें और गायके सम्बन्धमें हिन्दुओंकी धार्मिक भावनाका आदर करनेकी दृष्टिसे मुसलमान सोचें। गांधीजीकी यह सलाह सभाको पसन्द आयी।

अब सवाल यह था कि मुसलमान इस अन्यायका परिमार्जन कैसे करें?

प्रस्ताव बहुतसे आये। उनमें एक था ब्रिटिश मालके बहिष्कारका। गांधीजीने बताया कि यह शायद पार पडने लायक बात नहीं होगी; क्योंकि सभामें जो लोग बैठे थे, उनमेंसे शायद ही कोई ऐसा था, जिसके शरीरपर इंग्लैण्डका बना कपडा नही था। सब एक-दूसरेकी तरफ देखने लगे और तुरन्त गांधीजीकी बात उनकी समझमें आ गयी। तब दूसरा क्या करते?

गांधीजीने लिखा है—"मुझे अपना मत टूटी-फूटी हिन्दीमें ही लोगोंको समझाना था। यह काम मैं अच्छी तरह कर सका। जब मौलाना साहब भाषण कर रहे थे, तब मेरे मनमें यह भाव उठ रहा था कि हम खुद ही कई बातोंमें सरकारका साथ दे रहे हैं, उसीके विरोधकी जो ये सब बातें कर रहे हैं, सो व्यर्थ है। तलवारके द्वारा यदि (सरकारका) प्रतीकार नही करना है, तो फिर उसका साथ न देना ही उसका प्रतीकार है।...मैं समझता हूँ, लोगोंका यह हक है। सरकारी खिताबोंको रखने या सरकारी नौकरी करनेके लिए हम बँधे हुए नहीं हैं। जब खिलाफत जैसे मजहबी मामलोंमें हमें नुकसान पहुँचता हो, तो हम उसकी मदद कैसे कर सकते हैं? इसलिए अगर खिलाफतका फैसला हमारे खिलाफ आता है, तो सरकारको मदद न देनेका हमें हक है।"

यहाँसे असहयोगकी बुनियाद पडती है।

इस परिषद्के बाद खिलाफतके बारेमें मुसलमानोंमें जबरदस्त आन्दोलन शुरू हो गया। उनके मुख्य नेता थे मौ० मुहम्मदअली और मौ० शौकतअली। अब इस विषयपर चर्चा होने लगी कि शांति और अहिंसा का पालन मुसलमान किस हद-तक कर सकते हैं। अन्तमें यह फैसला हुआ कि एक हदतक बतौर नीतिके उसका पालन करनेमें कोई हर्ज नही और यह भी तय हुआ कि जो एक बार अहिंसाकी प्रतिज्ञा ले ले, वह सचाईके साथ उसका पालन करनेके लिए बँधा हुआ है।

इसके बाद कलकत्ताके खिलाफत-सम्मेलन (फरवरी १९२०) में असहयोगका प्रस्ताव लम्बी बहसके बाद विधिवत् भी पास हो गया। और ता० ९ जूनको खिलाफत-कमेटीने गांधीजीको अधिकार दे दिया कि वे लॉर्ड चेम्सफोर्डको नोटिस दें कि वे तुरन्त खिलाफतके अन्यायको दूर करें। तदनुसार ता० २२ जून १९२० को गांधीजीने लॉर्ड चेम्सफोर्डको पत्र दिया कि ब्रिटिश-सरकारने खिलाफतको अक्षुण्ण रखनेके बारेमें जो वचन दिया है, उसका यदि पालन नहीं किया गया तो वे मुसलमानोंको सरकारसे असहयोग करनेकी और हिन्दुओंको उनका साथ देनेकी सलाह देंगे।

अपनी इस जिम्मेदारीको निवाहते हुए गाधीजीने कहा .

"खिलाफतके प्रश्नको मैं सर्वोपरि स्थान देता हूँ। असहयोगका शस्त्र भी, उसे हम जिस रूपमे जानते है, खिलाफतके प्रश्नपर विचार करते-करते हाथ लगा है। एक कट्टर हिन्दू होनेके नाते मुझे इस बातकी बहुत चिन्ता होती है। यदि सात करोड मुसलमानोसे मैं अपने धर्मको सुरक्षित रखना चाहता हूँ तो मुझे उनके धर्मको बचाने के लिए भी मरनेको तैयार रहना चाहिए। यही बात हिन्दुओ-के लिए भी सही है। जबतक हिन्दू-मुसलमान एक नही होते, तबतक स्वराज्य एक अर्थ-विहीन आदर्श है और गो-रक्षा तबतक असम्भव है। स्वार्थ सध जानेपर मुसलमान दगा देगे, मैं ऐसा नही मानता। जो धर्मको मानते है, वे दगा नही देते।·· हिन्दू अपना धर्म समझकर मुसलमानोकी मदद करें और फलकी आशा ईश्वर से रखें। मैं मुसलमानोंके लिए मरकर, उनके हृदयको द्रवित करनेकी उम्मीद रखता हूँ। यदि मुसलमान भाइयोका मामला कमजोर होता तो मैं उनके लिए मरनेको कतई तैयार न होता। उनके मामलेको बिलकुल सच जानते हुए भी मैं सन्देह अथवा भयवश उनसे अलग रहूँ, तो मैं अपने हिन्दुत्वको लजाता हूँ, मेरा पडोसी-धर्म लुप्त हो जाता है।

"आजका प्रयत्न धार्मिक एकताका नही, बल्कि धर्मकी भिन्नता होते हुए भी हृदयकी एकताका है। कोशिश यह है कि सनातनी हिन्दू अपने धर्मके प्रति सजग रहते हुए कट्टर मुसलमानका आदर करें, उसकी सच्चे हृदयसे उन्नति चाहें।"

खिलाफत तथा उसके निमित्त और स्वतत्र रूपसे भी हिन्दू-मुस्लिम एकता-पर जोर देते हुए गाधीजी कभी थकते नही थे। पटनाकी एक सभामें उन्होने महि-लाओको अपने-अपने धर्मो पर दृढ रखते हुए भी हिन्दू-मुसलमानोकी एकतापर बल दिया

"मैं सबसे पहले हिन्दू और मुसलमान महिलाओसे प्रार्थना करता हूँ कि वे परस्पर एक-दूसरेको अपना दुश्मन न मानें और अपने बच्चोको भी बचपनसे ऐसी ही शिक्षा दे, जिससे वे भी कभी एक-दूसरेको दुश्मन न समझें। इससे मेरा मतलब यह नही है कि दोनो बिलकुल एक हो जायँ या हिन्दू लोग वेदो और शास्त्रोको पढना और उनमे विश्वास करना छोडकर 'कुरान' पढने और उसमें विश्वास करने लगें, इसका मतलब यह भी नही है कि मुसलमान 'कुरान' का अध्ययन छोडकर हिन्दुओके वेद और शास्त्र पढने लगें। सभी लोग अपने-अपने धर्मोपर दृढ रहें। जैसे भाई और बहनमे विवाह नही होता, किन्तु फिर भी वे एक-दूसरेसे प्रेम कर सकते हैं, इसी तरह हिन्दू-मुसलमान भी एक-दूसरेको प्रेम करें और एक-दूसरेका आदर करें।"

× × ×

गांधीजीने आगे कहा

"जबतक हिन्दू और मुसलमानोंके बीच सच्ची एकता स्थापित नहीं हो जाती, तबतक मैं दोनोंसे कहता हूँ कि इस साम्राज्यको मिटाना असम्भव है। सात करोड़ मुसलमान और तैंतीस करोड हिन्दू, एकताके सिवा किसी और तरह साथ नहीं रह सकते। हिन्दू और मुसलमानोंमें जबानी नहीं, दिली एकता होनी चाहिए। अगर ऐसा हो तो हम एक सालमें स्वराज्यकी स्थापना कर सकते हैं।"

इस एकताकी सिद्धिके लिए गांधीजीने छात्रोंसे कहा

"लडकोंको उर्दू और देवनागरी दोनों लिपियाँ सीखनी होंगी। आपका ऐसा करना स्वराज्य और हिन्दू-मुस्लिम एकता, दोनों ही दृष्टिसे अच्छा है।

"भारतने अबतक यह अनुभव कर लिया है कि हमारे राष्ट्रीय जीवनके लिए हिन्दू-मुस्लिम-एकता खाने-पीने और सोनेके समान ही आवश्यक चीज है।"

गांधीजी खिलाफतकी लडाईको धर्म-युद्ध मानते थे। वे कहते थे· "यह लडाई तो धर्मकी है। इसे चाहे व्यवहार्य कहिये चाहे अव्यवहार्य, राजनीतिक कहिये अथवा सांसारिक, इसका कुछ भी नाम रख दीजिये, इसका मूल है, धर्म। धर्मके खातिर, धर्मके नामपर, हम यह लडाई लड रहे हैं। अली-भाइयोंने बिलकुल पक्की बात कही है।" उन्होंने कहा—"राज्यके कानून और ईश्वरके कानून, पीनल कोड और कुराने पाकमेंसे किसीका चुनाव करना हो तो हम अपने ईश्वरको और अपने पाक कुरानको ही पसद करेंगे। यह लडाई तो इस बातकी है कि मुसलमान, हिन्दू, पारसी, ईसाई आदि सब अपने-अपने धर्मको जानें और उनके अनुसार बर्तें। सभी लोग धर्मके खातिर मरें। धर्मके लिए जो मरता है, वह पार होता है, जो मारता है वह मरता है। अगर दूसरोंकी हत्या करके कोई अपने धर्मका पालन कर सकता तो आज लाखों आदमियोंको मुक्ति मिल गयी होती।"

× × ×

गांधीजीकी इस शिक्षा और खिलाफतके जोरदार समर्थनके बावजूद देशमें जगह-जगह हिन्दू-मुसलमानोंके दगे हुए, जिनसे गांधीजीको हार्दिक पीडा हुई और उन्हें उपवासतक करने पडे। एकता-सम्मेलन हुए। हिन्दू-मुसलमान नेताओं-ने एकताके लिए प्रतिज्ञाएँ कीं। गांधीजीको तरह-तरहसे आश्वासन भी दिये, परन्तु किसी-न-किसी निमित्तसे ये दगे होते ही रहे। एक ओर अंग्रेज सरकार जहाँ इन दगोंमें भीतर-ही-भीतर दिलचस्पी रखती थी, वहाँ दूसरी ओर हिन्दू-मुसलमानोंमें भी ऐसे नेता थे, जो अपनी-अपनी माँगोंको बहुत खींचकर या अपने-अपने पक्षोंका एकतर्फा समर्थन करके इस एकतामें बाधक हो जाते थे। इस स्थितिसे फायदा उठाकर श्री जिन्ना, जो किसी समय राष्ट्रीयताका चोला पहने

हुए थे, एक बागी कट्टर मुसलमान बन गये और मुस्लिम-लीगको हाथमे लेकर ऐसे आये कि आखिर भारतका विभाजन करके ही दम लिया।

कांग्रेस और गाधीजीने खिलाफत-आन्दोलनमे पूरा जोर लगाया, जिससे अंग्रेज बडी चिन्तामे पड गये, परन्तु इसी बीच तुर्कस्तानमे ही वहांके अधिनायकने खिलाफत उठा दी—तब भारतमे यह प्रश्न ही खतम हो गया। मुसलमानोको हिन्दुओसे जोडनेवाली यह एक मजबूत कडी निकल गयी। अब सिर्फ भारतकी स्वतन्त्रता ही उन्हें मिलानेवाला प्रश्न रह गया। परन्तु मुसलमानोके कुछ नेता भारतीय स्वतन्त्रतासे भी अधिक महत्त्व अपने पृथक् राज्य बनानेको देने लगे।

६. कांग्रेस भी असहयोगके पथपर

(१९२०)

खिलाफत सम्मेलनके तुरन्त बाद गुजरातकी प्रान्तीय राजनीतिक परिषद्का अधिवेशन आ गया। बडौदाके भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री अब्बास तैयबजी उसके अध्यक्ष थे। उसमे भी गाधीजीने असहयोगका प्रस्ताव पेश किया।

कुछ लोगोने असहयोगके प्रस्तावका इस आधारपर विरोध किया कि "यह अवैधानिक है। जब कि हमारा मुख्य और बडा अखिल भारतीय सगठन कांग्रेस है, तो उसके मजूर करनेसे पहले हमारी यह मातहत और अगभूत परिषद् असहयोगके बारेमें निर्णय कैसे कर सकती है?" गाधीजीने इसपर कहा—"प्रान्तीय परिषदें पीछे कदम नही रख सकती। लेकिन आगे कदम बढानेका अधिकार तो तमाम मातहत सस्थाओको है। यही नही, बल्कि अगर उनमे हिम्मत हो तो ऐसा करना उनका धर्म भी है। इससे तो प्रधान सस्थाओका गौरव बढता है।"

अच्छी-मीठी बहसके बाद प्रस्ताव पास हो गया।

३० मईको कांग्रेस महासमितिकी बैठक बनारसमे हुई, जिसमें खिलाफत और पजाबके प्रश्नोपर भारतकी ओरसे रोष प्रकट किया गया और इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए कलकत्तामें कांग्रेसका विशेष अधिवेशन करनेका निश्चय किया गया। लोकमान्य तिलक उस अवसरपर बनारससे होकर गुजरे, परन्तु उन्होंने महासमितिमे भाग नही लिया, क्योकि खिलाफत-आन्दोलन उन्हें कुछ रुचा न था। फिर भी उन्होने देशभक्ति और सौजन्यका परिचय देते हुए यह अवश्य कह दिया था कि वे महासमितिके आदेशका पालन करेंगे।

अबतक असहयोग-आन्दोलन केवल खिलाफतके प्रश्नसे ही सम्बन्ध रखता था। अत इस प्रश्नको देशके अन्य नेताओंके सामने रखनेकी दृष्टिमे एक और

सम्मेलन बनारसमे गाधीजीने निमत्रित किया। इस सम्मेलनने भी असहयोगकी नीति अपनानेका निश्चय किया और असहयोगका कार्यक्रम बनानेके लिए गाधीजी और मुसलमान नेताओकी एक कमेटी बना दी गयी। इस कमेटीने अपनी रिपोर्ट मे स्कूल-कॉलेजो और अदालतोके बहिष्कारकी सिफारिश की। उपाधियो सरकारी नौकरियो, आनरेरी पदो और धारा-सभाओके बहिष्कारका निर्णय पहले ही हो चुका था। अब पजाबके अत्याचारो तथा अपर्याप्त सुधारोका प्रश्न भी इनके साथ जोड दिया गया और पुलिस तथा फौजकी नौकरियोका त्याग तथा कर देनेसे इनकार करना भी शामिल करके इस कार्यक्रमका प्रारम्भ १ अगस्तसे करनेका निश्चय किया।

इस प्रकार देश तेजीसे असहयोगकी ओर बढ रहा था कि ता० ३१ जुलाईकी रातको लोकमान्य परलोक सिधार गये और सारे देशमे शोक छा गया। कल्पित योगायोग कैसे! लोकमान्यके रूपमें एक शक्तिका अस्त और उसके दूसरे ही दिन असहयोगके रूपमे दूसरी शक्तिका उदय! मानो वही शक्ति नया रूप धारण करके अपनी पावन प्रतिज्ञाके पालनके लिए पुन. अवतरित हो गयी।

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्
आविष्कृतारुणपुर.सर एकतोऽर्कः।

(एक तरफ ओषधियोका पति (चन्द्र) अस्ताचलकी ओर जा रहा है और दूसरी तरफ अरुण-सारथी सूर्य उदयाचलपर आ रहा है।)

× × ×

कलकत्ता अधिवेशनकी तैयारियाँ बहुत बडे पैमानेपर हुईं। लाला लाजपतराय उनके अध्यक्ष चुने गये। सदस्यो और दर्शकोका बहुत बडा समुदाय इकट्ठा हुआ।

अधिवेशनका मुख्य प्रयोजन था—असहयोगके प्रश्नपर विचार करना। गाधीजीने इसका प्रस्ताव कलकत्ता जाते हुए रेलमे ही तैयार करके छपनेके लिए भेज दिया था। परन्तु प्रस्तावमे कही 'शातिमय' या इस आशयका कोई दूसरा शब्द नही आया था, यद्यपि गाधीजी अपने भाषणोमे अवश्य आग्रहपूर्वक कहा करते कि हमारा यह असहयोग शातिमय हो। जैसे ही यह बात गाधीजीके ध्यानमे आयी, उन्होने प्रस्तावमे यह शब्द जोडनेके लिए सदेश भेजा। परन्तु तबतक प्रस्ताव छप चुका था। आखिर बादमे छपा हुआ प्रस्ताव बाँटते समय यह शब्द उसमे जोड दिया गया।

प्रस्तावमे खिलाफत और पजाबके अन्यायको लेकर ही असहयोग करनेकी बात कही गयी थी। परन्तु श्री विजयराघवाचार्यको इतनेसे सतोष नही हुआ। उन्होने कहा—"अगर असहयोग ही करना है, तो केवल इन्ही दो अन्यायको लेकर ही क्यो किया जाय? सबसे बडा अन्याय तो स्वराज्यका अभाव है। इसे लेकर

ही असहयोग किया जाना चाहिए।" सुझाव तुरन्त मजूर हो गया और प्रस्तावमे स्वराज्यकी माँग भी जोड दी गयी। लम्बी तथा तेज वहसके वाद असहयोगका प्रस्ताव मजूर हो गया।

इस अधिवेशनमे लगभग सारे पुराने योद्धा उपस्थित थे। विदुषी एनी वेसेंट, प० मालवीयजी, श्री विजयराघवाचार्य, प० मोतीलालजी, देशवघु आदि उनमें मुख्य थे। सबसे पहले प० मोतीलालजी वकालत छोडकर असहयोग-आन्दोलनमे शामिल हुए। देशवघुको राजी कर लेनेका वीडा भी उन्होंने ही उठाया था। देशवघुका दिल तो असहयोगकी तरफ था ही, लेकिन उन्हे लगता था कि जनता असहयोगके भारको सह नही सकेगी। वे और लालाजी पूरे-पूरे असहयोगी तो नागपुरके अधिवेशनमे वने थे।

इस अधिवेशनमे स्व० लोकमान्य तिलककी अनुपस्थिति सवको खटक रही थी। सारे अधिवेशनपर उनके वियोगकी छाया छायी हुई थी। गाधीजीने लिखा है—"आज मुझे स्व० लोकमान्यकी अनुपस्थिति बहुत खटक रही है। आज भी मेरा मत है कि अगर वे जिन्दा रहते तो कलकत्ताके प्रसगका स्वागत करते। लेकिन अगर ऐसा न होता और वे विरोध करते, तो वह भी मुझे अच्छा लगता और मैं उससे वहुत कुछ शिक्षा ग्रहण करता। उनके साथ मेरा हमेशा मतभेद रहा करता, लेकिन मतभेद मधुर होता था। उन्होंने मुझे सदा यह मानने दिया था कि हमारे वीच निकटका सबध है।"

असहयोगपर स्व० लोकमान्यने सार्वजनिक रूपसे अखवारो या भाषणोमे अपनी राय कही प्रकट की हो तो ज्ञात नही, लेकिन स्वय गाधीजीने लोकमान्यके वारेमे लिखा है कि "अपनी मृत्युके पन्द्रह दिन पहले सरदारगृहमे वहुतसे मित्रोंके सामने उन्होने कहा था कि मेरा तरीका बहुत अच्छा है, यदि लोगोको समझाया जा सके और वे उसे स्वीकार कर लें। उन्हें शका केवल इसी वातकी थी कि लोग इसे स्वीकार करेंगे भी ?"*

इसके वाद दिसवरमे नागपुरमे काग्रेसका साधारण वार्षिक अधिवेशन हुआ। असख्य दर्शक थे। केवल प्रतिनिधियोकी सख्या ही चौदह हजार थी। अध्यक्ष वयोवृद्ध विजयराघवाचार्य थे। कलकत्ताके विशेष अधिवेशनमे स्वीकृत अहिंसात्मक असहयोगके प्रस्तावपर सर्वानुमतिसे इस अधिवेशनकी भी विधिवत् छाप लग गयी।

इसी अधिवेशनमे गाधीजी द्वारा वनाया गया काग्रेसका नया विधान भी मजूर हो गया। अभीतक काग्रेस अधिकाशत एक वार्षिक सम्मेलनके रूपमे ही काम करती थी। वीचमे वर्षभर प्राय कोई काम नही होता था। इस नये विधानके

* काग्रेसका इतिहास, पृ० १५३—असहयोगका जन्म।

अनुसार उसे देशव्यापी स्वरूप दे दिया गया। उसकी वार्षिक सदस्यताका चन्दा चार आना कर दिया गया और अब वह सक्रिय बनकर बारहों महीने काम करने लगी। ग्राम-ग्राम और नगर-नगरमे उसकी शाखाएँ कायम होने लगी। ग्रामके ऊपर तहसील, जिला एव प्रान्तीय सगठन बन गये और इन सबके ऊपर काग्रेस महासमिति (अखिल भारत काग्रेस कमेटी) कायम हो गयी। उनके निर्णयोको कार्यान्वित करनेके लिए सारे देशके लिए काग्रेसकी एक कार्य-समिति भी नियुक्त की गयी। इन सबके चुनाव प्रतिवर्ष होने लगे।

असहयोगके कार्यक्रमको खिलाफत-सम्मेलन और काग्रेस, दोनोकी मजूरी मिलनेके साथ गाधीजी सारे देशके नेता बन गये। देशभर में उनके तूफानी दौरे शुरू हो गये। १५ दिसबर १९२१ के 'यग इडिया' मे उन्होंने लिखा था कि "लॉर्ड रीडिंग जान लें कि सरकारके खिलाफ यह खुला, लेकिन अहिंसात्मक विद्रोह है।" यह वही गाधी बोल रहा था, जो अभी तक अपने-आपको ब्रिटिश हुकूमतका वफादार प्रजाजन मानता था और जिसने ठेठ १९१५ मे ब्रिटिश-राज्यके प्रति अपनी यह वफादारी प्रकट करते हुए अति प्रसन्नता प्रकट की थी। उनके इस क्रान्तिकारी व्यक्तित्वको देखकर सरकार भी चकित रह गयी। वे अब सारे देशमे यह कहते हुए घूमते थे कि "भारतको अग्रेजोने नही जीता। यह तो हमीने उनको सौंप दिया है। वे जो आज यहाँ राज कर रहे हैं, सो भी अपने बलपर नही। हमी उन्हें यहाँ रख रहे है, इसीलिए वे यहाँ है।"

नागपुर-काग्रेसके अध्यक्ष श्री विजयराघवाचार्यने अपने अतिम भाषणमे कहा था कि "गाधीजीकी प्रेरणासे लोग स्वय इतने आगे बढ गये हैं कि अध्यक्ष और नेताओंको उनके पीछे घिसटना पड रहा है।"

देशकी आम जनताने जहाँ इस प्रकार एक नया तेज प्रकट हो रहा था, वहाँ ऊँचे तबकेके भारतीयोंमे—स्वय नेताओंमे भी—'असहयोग' के औचित्य और व्यावहारिकताके बारेमे भीतर-ही-भीतर सदेह था। कभी-कभी वह प्रकट भी होता रहता था। प० मालवीयजी, श्री श्रीनिवास शास्त्री और देशबधु दास स्कूल-कॉलेजोंके बहिष्कारको अनावश्यक और हानिकर मानते थे और गुरुदेव—रवीन्द्रनाथ ठाकुर—इस सारे कार्यक्रमको नकारात्मक (निगेटिव)।

एक विदुषी बहनने तो असहयोगमे घृणा भी देखी। उनके पत्रका जवाब देते हुए गाधीजीने लिखा था—"मैं घृणाकी समस्त शक्तियोको इकट्ठा करके उनको एक सही दिशामें मोड़ रहा हूँ। जैसे तिरस्कार उद्धत सत्ताका लक्षण होता है, वैसे ही घृणा दुर्बलताकी निशानी है। वीर पुरुष या स्त्री कभी घृणा नही करते। घृणा मूलतः कायरोका दुर्गुण है। असहयोगका अर्थ है—आत्मशुद्धि। जब तुम चीनीको शुद्ध करती हो, तब उसका मैल सतहपर आ जाता है। इसी प्रकार जब हम आत्मशुद्धि करते है, तब हमारी दुर्बलता सतहपर आ जाती है।

गाधीजी तो शुरूसे ही अग्रेजोद्वारा दी जानेवाली शिक्षाको हानिकर तथा गुलाम बनानेवाली मानते थे। स्वय अपने बच्चोको उन्होने इस शिक्षासे दूर रखा था। असहयोग-कार्यक्रम भी निरा नकारात्मक ही नही था। उसके साथ-साथ अस्पृश्यता-निवारण, राष्ट्रीय शिक्षा-सस्थाओकी स्थापना, शराबबदी, खादी, ग्राम-पचायतोकी स्थापना आदिके रूपमे राष्ट्रके निर्माणमे सहायक तथा समाजको शुद्ध करके उसका बल बढानेवाली अनेक प्रवृत्तियाँ उन्होने साथ-साथ ही शुरू कर दी थी।

गुरुदेवकी टीकाओके उत्तरमे लिखा उनका 'ग्रेट सेण्टिनल' लेख तो बहुत प्रसिद्ध है। उसमे उन्होने लिखा था कि "गुरुदेव तो महान् भाग्यशाली कवि है। उन्हें गगनविहारी पक्षियोका मधुर सगीत सुनाई देता है, जिनको पिछले दिन भरपेट खाना मिल गया था और रातभर तरोताजा करनेवाली विश्रान्ति। परन्तु मेरे सामने तो करोडो ऐसे अभागे पछी है, जिनको न कल खाना मिला, न रातमे विश्रान्ति। सोनेका तो उन्होने बहानामात्र किया और सुबह उठनेपर उनके अन्दर अपने पख फडफडानेकी भी शक्ति नही है। मेरा असहयोग और खादी-का मत्र उन्हीके लिए है। हम भूखे रहकर लकाशायरको जिलानेका पुण्य नही कमा सकते। पहले हमे खुद जीना सीखना है।"

७. वे दिन—वह जोश

(१९२०)

ते हि नो दिवसा गताः!

—उत्तररामचरित

असहयोगके दिनोमे वातावरणमे कैसी बिजली भरी हुई थी, इसका अनुमान स्वय गाधीजीके इन शब्दोसे हो सकता है

"हम मद्राससे बँगलोर जा रहे थे। रातका समय था। सेलममे हमने सभाएँ की। वहाँसे बगलोर गये। १२५ मीलका फासला था। वहाँ भी बरसते पानीमे सभा हुई। वहाँसे रेल पकडनी थी। रातको विश्रान्तिकी जरूरत थी, परन्तु जरा भी नही मिली। लगभग हर बड़े स्टेशनपर हमारे दर्शनोके लिए जनताकी भारी भीड मौजूद थी।

"आधी रातके करीब हम जलारपेट जकशनपर पहुँचे। ४० मिनट यहाँ रेल ठहरी। भयकर हालत थी। एक साथीने जनतासे लौट जानेकी खूब विनती की। परन्तु ज्यो-ज्यो वे जनतासे प्रार्थना करते, त्यो-त्यो वह और भी जोरसे जयजयकार-के नारे लगाती। शायद वह समझती थी कि उसे तो यो ही विनयके तौरपर ऐसा

कहा जा रहा है। बीस-बीस मीलसे लोग आये थे। घटोंसे राह देख रहे थे। उनका सन्तोष तो होना ही चाहिए।

"आखिर साथी हारकर अपनी जगहपर जाकर लेट गये। अब नेताओंके ये पुजारी डिब्बेकी सीढियोपर चढ गये और हमारी तरफ खिडकीसे झाँकने लगे। हमने कमरेके अन्दरकी बत्तियाँ गुल कर दीं, तो लोग कहींसे लालटेन ले आये। आखिर मैंने सोचा, मैं लोगोंको समझाऊँ। पर मुझे देखते ही शोर और भी जोरसे होने लगा। मैं हैरान। बेहद थका हुआ था। मेरा भी सारा प्रयत्न विफल हुआ।

"लोग ठहर-ठहरकर नारे लगाते रहे। आखिर मैंने खिडकियाँ बन्द कर दीं। फिर भी लोग कहाँ माननेवाले थे? वे बाहर से ही खिडकियाँ खोलकर हमारा दर्शन करना चाहते थे। इस तरह खींचतान चलती रही। अतमे हमारा एक लडका आगे बढा और उसने भीडको समझानेका प्रयत्न किया कि कम-से-कम दूसरे मुसाफिरोपर तो दया करें। फिर भी जबतक ट्रेन रवाना नही हुई, भीड नही हटी।

"नि सन्देह यह सब सद्भावपूर्वक ही हो रहा था। हम जानते है कि इनकी जडमे अपार और शुद्ध प्रेम ही था। परन्तु इनमे कही दयाका नाम भी दिखाई देता है? मालूम होता है कि इस भीडमे एक भी समझदार आदमी नहीं था, जो इनको रोकता। इसलिए कोई किसीकी नही सुन रहा था।"

आन्दोलनका यह पहला वर्ष था। इस वर्षमे नेतृत्वके जो गुण गाधीजीने प्रकट किये, वे अनुपम थे। जो हिंसा अन्दर-ही-अन्दर धधक रही थी उसे वे काबूमें लाना चाहते थे। भीडके इस पागलपनको वह सबसे अधिक खतरनाक मानते थे। वे युद्धको बहुत बुरा मानते थे, परन्तु यह पागलपन तो उनकी नजरोंमें उस युद्धसे भी कहीं अधिक खराब था। अगर भारतको हिंसाके द्वारा ही स्वतंत्रता प्राप्त करनी है तो भले ही करे। इस अनियन्त्रित पागलपनकी अपेक्षा उनमें कुछ अनुशासन तो होता है। इसलिए वे अनुशासनपर सबसे अधिक जोर देते थे। देशमें जो अव्यवस्था फैली हुई थी, उसमेंसे वे व्यवस्था निर्माण करना चाहते थे। अत सभा, सत्या, जुलूस, सबके नियम बनाकर सारी शक्तिको सही मोड देनेका उन्होंने पूरा-पूरा प्रयत्न किया।*

---

* स्वयंसेवकोंके लिए भी नियम बना दिये। वे इस प्रकार हैं: सत्याग्रहियोंके लिए गाधीजीकी अनुमतिसे बनाया गया प्रतिज्ञा-पत्र—

१. राष्ट्रीय महासभाने भारतीय स्वाधीनताके लिए सविनय अवज्ञाका जो आन्दोलन छेडा किया है, उसमें शरीक होना चाहता हूँ।

२. मैं कांग्रेसके शात एवं न्यायोचित उपायोंसे भारतके लिए पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्तिके ध्येयको स्वीकार करता हूँ।

→

गाधीजीने निर्देश किया कि सभाओ तथा जुलूसोमे केवल तीन नारे लगें :

अल्लाह हो अकबर !

वन्दे मातरम् !

हिन्दू-मुसलमानकी जय !

ये नारे इसी क्रमसे लगे। आगे-पीछे न हो। अगर कोई प्रारम्भ कर दे तो बीचमे कोई दूसरा अपना प्रिय नारा न घुसाये। पहलेवालेका ही साथ सब दे। नारोमे कोई शामिल न होना चाहें, तो चुप रहें। दूसरा नारा न लगायें और यह भी न हो कि नारे लगातार लगाते ही जा रहे हैं।

स्वयसेवकोकी भर्तीके बारेमे भी गाधीजीने कई सुझाव-सुधार दिये। उदाहरणार्थ

(१) किसी सस्था या सगठनको अपने जुलूसोमे कच्चे स्वयसेवकोको शामिल नही करना चाहिए।

(२) जुलूस या सभा-सम्मेलनका मुखिया या सचालक खूब अनुभवी पुरुष ही हो।

(३) अपने नियमो या सचालन-सम्बन्धी सूचनाओकी पुस्तिका प्रत्येक स्वयसेवकके पास हो।

(४) स्वयसेवक सभा या जुलूसमे व्यवस्थित रूपसे बँटजायँ और हर स्वय-सेवक अपने स्थानपर ही रहे।

(५) सूचनाओके आदेश सीटीके द्वारा या ऐसे ही किसी निश्चित सकेत-द्वारा दिये जायँ।

(६) नारे ठीक तरह क्रमसे और पूर्वनिश्चित अवसरोपर ही लगें।

(७) भीडको रेलवे-स्टेशनके अन्दर न जाने दिया जाय।

(८) स्वयसेवक जरा हटकर खडे रहें—जाने-आनेवालोके लिए रास्ता छोडकर।

(९) ऐसे प्रसगोपर भीडमे छोटे बच्चोको कभी नही लाना चाहिए।

इस प्रकार गाधीजी सकोच और भीरुताको मिटाकर लोगोमे जोश भरके उन्हे गतिशील बनाते थे, वहाँ निरकुशताको नियन्त्रित भी करते थे। इस प्रकार धीरे-

---

← ३ मै जेल जानेको तैयार और राजी हूँ और इस आन्दोलनमें जो-जो कष्ट और सजाएँ मुझे दी जायँगी, उन्हें मैं सहर्ष सहन करूँगा।

४ जेल जानेकी हालतमें मैं कांग्रेस-कोषसे अपने परिवारके निर्वाहके लिए कोई आर्थिक सहायता नहीं माँगूँगा।

५ मैं आन्दोलनके संचालकोंकी आज्ञाओंका निर्विवाद रूपसे पालन करूँगा।

धीरे स्कूल-कॉलिज खाली होने लगे, पदवीधारी पदवियाँ छोडने लगे। सरकारी नौकर नौकरी और वकील अपनी वकालत छोडकर मैदानमें आने लगे।

इन दोनो कामोंके लिए झण्डा एक शक्तिशाली और प्रेरक साधन होता है, जिसके लिए लोग नियमबद्ध होकर प्राणतक न्योछावर कर देते है। हमारे राष्ट्रीय झण्डेका सवाल सबसे पहले काग्रेसके कलकत्ता-अधिवेशन (१९१७) मे पेश हुआ। होमरूल-लीगने पहले ही एक तिरगे झण्डेको अपना रखा था और उसने उसे लोकप्रिय भी बना दिया था। इस अधिवेशनमें एक कमेटी नियुक्त की गयी, जिसके सिपुर्द यह काम किया गया कि वह झण्डेका नमूना निश्चित करे। प्रसिद्ध कलाकार अवनीन्द्रनाथ ठाकुर भी इस कमेटीमें थे। लेकिन इस कमेटीकी बैठक कभी न हो सकी। अन्तमें होमरूलका झण्डा ही काग्रेसका झण्डा बन गया।

बादमें सन् १९२१ मे इसमे चरखा और जोड दिया गया। यह झण्डा सन् १९३१ तक रहा। जब फिर झण्डेपर विचार करनेके लिए एक कमेटी बनी तो उसके सुझावके अनुसार लाल रगके स्थानपर केसरिया रग आ गया। तिरगे झण्डेमे केसरिया शौर्य और बलिदानका, हरा सुख-समृद्धिका और सफेद शान्तिका प्रतीक माना गया। चरखा गरीबोंके स्वराज्यका सूचक था। वह बरकरार रहा।

स्वतत्रताके बाद स्वतत्र भारतका झण्डा भी यही रहा। किन्तु अब चरखेके स्थानपर अशोक-चक्र आ गया है।

८. शुभ मुहूर्त : सावधान

(विद्यार्थियो और पालकोंसे)

(१९२०)

'स्वत्वार्थे पृथिवीं त्यजेत्', 'विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम्'

(अपने स्वत्वकी रक्षाके लिए सारी पृथिवीको छोड दे।)

(विद्या चाहते हो तो सुखको भूल जाओ।)

असहयोग-आन्दोलनका मुख्य मोर्चा था 'त्रिविध बहिष्कार'। इसमें स्कूल-कॉलिजोंका बहिष्कार बहुत महत्त्व रखता था। विद्यार्थी हजारोंकी तादादमे स्कूल-कॉलिज छोडने लगे। इससे पालक चिंतित होने लगे। गाधीजी पालकोंको इस प्रकार आश्वस्त करने लगे :

'मेरे बहुतसे नजदीकी मित्र इन दिनो मेरी प्रवृत्तियोंको देखकर चकित हो रहे है। उन्होंने एक प्रवृत्ति है विद्यार्थियोंको मै जो (स्कूल-कॉलिज छोडनेकी) सलाह दे रहा हूँ। उनका यह आश्चर्य स्वाभाविक है, क्योंकि अपनी (अग्रेज-)

सरकारके प्रति मेरा रुख एकदम बदल गया है। आजकल वह मुझे रावणके समान राक्षसी-शैतानी दिखाई दे रही है। यदि वह अपना रवैया नही बदलती और अपने किये पर पश्चात्ताप नही करती है, तो मै उसे खत्म करनेपर तुल गया हूँ। मेरे मित्र शायद इसमे मुझसे सहमत न हो।

"आपकी चिन्ता मै समझ सकता हूँ। मै आपका दिल नही दुखाना चाहता। मै खुद एक पिता हूँ। मेरे चार लडके है। उन्हें मैने अपने विचारोके अनुसार पढाया-लिखाया है। मै स्वय अपने पिताका अत्यन्त आज्ञाकारी पुत्र रहा हूँ और शिक्षकोका ऐसा ही शिष्य। पिताका कर्तव्य क्या है, इसका महत्त्व मै जानता हूँ। परन्तु मनुष्यका ईश्वरके प्रति कर्तव्यका स्थान इससे ऊँचा है।

"मै मानता हूँ कि अब हमारे देशमे ऐसा समय आ गया है कि जब हर युवक और युवतीको ईश्वरके प्रति और अन्योके प्रति अपने कर्तव्योमेसे चुनाव करना होगा। मै जानता हूँ कि वे किस प्रकारकी उच्च शिक्षा ले, इसका निर्णय पालक नही, अधिकाश युवक खुद ही करते है। अनेक बच्चोके दिलोमे इस उच्च शिक्षाका जो हदसे ज्यादा मोह है, उसे दूर करना पालकोके लिए बडा कठिन हो रहा है।

"जिन सैकडो विद्यार्थियोने स्कूल-कॉलेज छोडे है, उनमेसे केवल एकके पिताने अपने लडकेके इस कदमकी शिकायत की है। और वह भी ऐसे पिताने, जो सरकारी नौकर है। शिकायत इस बातकी है कि कॉलेज छोडनेसे पहले लडकेने पिताजीसे सलाह नही ली। वास्तवमे मैने तो लडकोको यही सलाह दी थी कि कॉलेज छोडनेका फैसला करनेसे पहले अपने पिताजीसे बात अवश्य कर लें।

"स्वय मैने बीसो सभाओमे हजारो पालकोसे इस विषयमे अपील की है। परन्तु एकने भी सरकार-नियन्त्रित कॉलेज छोडनेका विरोध नही किया।

"आपकी भाँति मै भी चाहता हूँ कि हमारे बच्चोकी शिक्षाकी उपेक्षा न होनी चाहिए। परन्तु मुझे इस बातकी और भी अधिक चिन्ता है कि यह शिक्षा देनेवाले शुद्ध हो। इस सरकारसे हम बहुत नाराज है। इसलिए उससे हमारे बच्चोकी शिक्षाके लिए सहायता लेना अपमान है।

"क्या यह उचित नही कि ये बच्चे आजादीके वातावरणमे पढे, फिर भले ही वे झोपडियोमे या पेडोकी छायामे बैठकर पढें? पढानेवाले भी वही आजादीकी भावना उनमे भर सकेगे, जो खुद आजाद होगे। मै चाहता हूँ कि आप यह महसूस करें कि अब हमारी मातृभूमिका भविष्य आपके-हमारे नही, इन बच्चोके हाथोमे है। क्या हमारा यह कर्तव्य नही कि हम उन्हे इस गुलामीसे मुक्त करें, जिसने हमे पेटके बल रेंगनेके लिए मजबूर किया है? हम कमजोर है, इसलिए इस जुएको उतार फेंकनेकी ताकत, बल्कि हिम्मत भी शायद हमारे अन्दर न हो। परन्तु क्या हमारे अन्दर इतनी भी समझदारी नही है कि हम यह घृणित विरासत इन बच्चो-के लिए न छोड जायें?"

गाधीजी कोरे विध्वसक—नकारात्मक—नेता नही थे, उससे कही अधिक वे विधायक—रचनात्मक—नेता थे। स्कूल-कॉलिजोके बहिष्कारके साथ ही गाधीजी-ने राष्ट्रीय शिक्षालयोंकी स्थापनाका श्रीगणेश किया। यो तो 'हिन्द स्वराज्य' मे उन्होने अपनी शिक्षाका स्वरूप समझाया था, फिर भी हटर-कमेटीके एक प्रश्नके उत्तरमे उन्होने वर्तमान शिक्षा-पद्धतिके दोषोकी चर्चा इस प्रकार की थी :

"आजके अधकचरे शिक्षा-प्राप्त नौजवान बहुत अधिक गैरजिम्मेदार और विचारहीन हैं। इन अर्द्धदग्ध युवकोंके मुकाबलेमे अज्ञान जनता बहुत हदतक ठडे दिमागवाली है। मुझे विश्वास है कि इस अर्धशिक्षित युवक-वर्गको बुरे रास्तेसे लौटाया जा सके, तो देशके सामने उपस्थित प्रश्न एकदम हल हो जाय।

"सारी शिक्षा-पद्धति ही ऐसी खराब है कि वह मनुष्यको पूरी शिक्षा समाप्त करनेके बाद भी स्थिर मन और स्थिर विचारवाला नही बनाती। वह जडमूलसे सडी हुई है, उसका बिलकुल नये सिरेसे निर्माण करनेकी जरूरत है।

"आजकी पाठशालाओंमे कोई सच्ची नैतिक शिक्षा तो दी ही नही जाती। दूसरा दोष यह है कि शिक्षा अग्रेजी भाषाद्वारा दी जानेके कारण लडकोके दिमागपर बेहद जोर पडता है। परिणामत पाठशालाओंमे दिये जानेवाले ऊँचे-से-ऊँचे विचार छात्र ग्रहण नही कर पाते। आधुनिक शिक्षा-प्रणालीमे व्यक्तिगत तत्त्व नही है। शिक्षकोको विद्यार्थियोंके साथ जो निजी सम्बन्ध पैदा करना चाहिए, वह आजकल बिलकुल नही पाया जाता। शिक्षक अभीकी अपेक्षा अच्छे और ज्यादा सस्कारी वर्गके होने चाहिए। ये दोष मिट जायँ तो शिक्षा-पद्धति सुधर जाय।"

इन तथा अन्य दोषोको मिटानेकी दृष्टिसे गाधीजीने साबरमतीके अपने सत्या-ग्रहाश्रममे एक राष्ट्रीय पाठशाला खोली थी। काकासाहब कालेलकर उसके आचार्य थे।

शिक्षालयोंके बहिष्कारकी लहर आनेपर भारतमे जगह-जगह नये-नये स्कूल-कॉलिज खुले। कई श्रेष्ठ आचार्यो और अध्यापकोने इस बहिष्कारमे भाग लिया। अहमदाबादमे भी गुजरात विद्यापीठ बना, जिसके आचार्य थे दिल्लीके एक कॉलिजके प्रिंसिपल आचार्य गिडवाणी। वे कॉलिजका बहिष्कार करके आये थे। उनके साथ सर्वश्री कृपालानी, सिपाहीमलानी, मलकानी, ये कई सिन्धी आचार्य भी अपने-अपने कॉलिज छोडकर आये। विद्यापीठकी स्थापना करते समय (१५-११-'२०) गाधीजीने कहा

"इस महाविद्यालयकी प्रतिष्ठा करनेका उद्देश्य केवल विद्यादान नही है, बल्कि आजीविकाकी प्राप्तिके लिए साधन कर देना भी है। यो मैंने शिक्षाके क्षेत्रमे ऐसा कोई बडा काम नही किया कि तुम्हें बता सकूँ कि यह कार्य महान्-से-महान् है।

"यहाँ इस कार्यके लिए (अध्यापकोका) जो सगम हुआ है, वह तीर्थ-रूप है। यहाँ चरित्रवान् पुरुष जमा हुए हैं। सुन्दर सिन्धी, सुन्दर महाराष्ट्री, सुन्दर गुजराती लोगोका सगम हुआ है।

"विद्याका नही, चारित्र्यका चमत्कार बताकर आप स्वातत्र्य दिलायेगे। स्वराज्यका सुन्दर वृक्ष चारित्र्यका पानी पिलानेसे, शुद्ध दैवी बलसे फूले-फलेगा।

"विद्यार्थी तो परिस्थितिके दर्पण हैं। उनमें दभ नही, द्वेष नही, ढोग नही। जैसे है, वैसे ही अपनेको दिखाते हैं। यदि उनमें पुरुषार्थ नही, सत्य नही, ब्रह्मचर्य नही, अहिंसा नही, तो दोप उनका नही—माँ-बापोका, अध्यापकोका है, आचार्यका है, राजाका है।

"इस विद्यालयकी प्रतिष्ठा हम विद्याकी दृष्टिसे नही, बल्कि राष्ट्रीय दृष्टिसे कर रहे हैं। विद्यार्थियोको बलवान्, चारित्र्यवान् बनानेके लिए मेरा सारा प्रयत्न है।

"विद्यार्थियोसे मेरा अनुरोध है कि मुझपर तुम्हारी जितनी श्रद्धा है, उतनी ही श्रद्धा अपने अध्यापकोपर रखना। परन्तु यदि तुम अपने अध्यापकोको बलहीन पाओ तो उस समय तुम प्रह्लाद जैसी अग्निसे उस आचार्यको और उन अध्यापकोको भस्म कर डालना और अपना काम आगे बढाना।"

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोके समक्ष बोलते हुए गाधीजीने मानो अपना हृदय ही खोल दिया था। उन्होने कहा था .

"दूसरी विद्या मिले या न मिले, परन्तु इस वर्तमान विद्याको छोडो। यदि वर्तमान स्थितिके लिए सच्चा वैराग्य—मेरे जैसा वैराग्य—पैदा हुआ हो, यह लगता हो कि स्वतत्रताके लिए कुछ भी विचार किये बिना इसका त्याग करना ही धर्म है, तभी विद्यालय छोडना। इस विद्यालयमे बडी-से-बडी शिक्षा मिलती हो, सुविधाएँ मिलती हो, तो उनका भी भारतके लाभके लिए बलिदान करनेकी जरूरत है।"

यद्यपि इन दिनो राष्ट्रीय विद्यालय 'राष्ट्रीय' दृष्टिसे ही खुल रहे थे, फिर भी आगे जाकर गाधीजीने शिक्षा-क्षेत्रमे एक क्रान्ति ही कर डाली, जिसे आगे चलकर 'बुनियादी तालीम' कहा गया।

१. गरीबोंका स्वराज्य

(१९२०)

'दरिद्रान् भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्'

(हे अर्जुन, दरिद्रोंका पालन करो, ऐश्वर्यवान् का नही ।)

गाधीजी स्वतंत्रता-प्राप्तिके लिए तो चरखा और खादीपर जोर देते ही थे, देशकी आर्थिक रचनामें भी वे चरखा और खादीको महत्त्वपूर्ण स्थान देते थे। भारतवर्ष गाँवोमे बसा हुआ है और ग्रामवासियोको फुरसतके समय उनके घरपर काम देनेका इससे बढकर सरल, सस्ता उपाय उन्हें दूसरा नही दिखाई पड़ा। साथ ही मानव-यन्त्रको बेकार होने देकर जडयन्त्र (मशीन) को तरजीह देनेके भी वे खिलाफ थे। 'हिन्द स्वराज्य' में उन्होंने इसकी चर्चा की है। बादमे खादीको केन्द्र (सूर्य) की तरह मानकर, उन्होंने दूसरे गृह-उद्योगोको उसके ग्रहनक्षत्रकी उपमा दी थी। अपनी 'आत्मकथा' मे उन्होंने इनका थोड़ा जिक्र किया है।

गाधीजी खादी और चरखेका बराबर प्रचार करते रहे। पत्रोंमे, लेखोंमे, सभाओंमे, व्याख्यानोमें तथा व्यक्तिगत चर्चाओमे भी वे हमेशा खादीपर जोर दिया करते। वैसे स्वदेशी और बहिष्कार तिलक महाराजके चलानेसे चल रहे थे। बेजवाडा-कांग्रेस कमेटीमे जो त्रिसूत्री बनायी गयी थी, उसमे २० लाख चरखे चलानेकी माँग की गयी थी। २८, २९, ३० जुलाई १९२१ को बम्बईमे हुई कांग्रेस-महासमितिकी बैठकतक २० लाख चरखे चलने लगे थे। इसके बाद बुनने तथा खादी-सबधी विविध क्रियाओंकी ओर देशका ध्यान दिलाया गया। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए विदेशी कपडेके बहिष्कार और खादीकी उत्पत्तिमे सारी शक्ति लगानेका काम देशके सामने था। कांग्रेस-महासमितिने यह भी सलाह दी कि तमाम कांग्रेसी १ अगस्तसे विदेशी कपडोंका उपयोग छोड दें। ३० सितंबरसे पहले विदेशी वस्त्रोंका भलीभाँति बहिष्कार हो जाय, इसके लिए घर-घर जाकर विदेशी कपडे जमा करनेके लिए कहा गया। तिलक-स्वराज्य-कोषकी कम-से-कम एक-चौथाई रकम हाथ-कताईका सगठन करने, हाथकते सूत और हाथबुने कपडेका सग्रह करने आदि खादी-सबधी काममें लगाना तय हुआ।

कांग्रेस महासमितिके निश्चयानुसार, ब्रिटिश युवराजके स्वागतके बहिष्कारके साथ ही, जगह-जगह विदेशी कपडोंकी होली भी जलायी गयी। विदेशी वस्त्र-बहिष्कार-समितिके अध्यक्ष स्वय गाधीजी और मत्री श्री जयरामदास दौलतराम बनाये गये थे। बहिष्कारके पक्षमे जबरदस्त हलचल रही।

(३१ जुलाई को) जिस दिन बम्बईमे इग्लैंडके युवराज आनेवाले थे, उसी

दिन परेलमे उमर सोवानीकी मिलके मैदानमें महती सभा हुई थी, जिसमें विदेशी वस्त्रोकी वडी भारी होली गाधीजीके हाथो जलायी गयी।

विलायती कपडोका कोई २५ फुट ऊँचा एक ढेर लगाया गया था। इस अवसरपर गाधीजीने कहा था ·

"मै इस दिनको वम्वईके लिए एक पवित्र दिन मानता हूँ। आज हम अपने शरीरोसे गन्दगी हटा रहे है। हम विदेशी वस्त्रको, जो हमारी गुलामीका चिह्न है, त्यागकर अपना शुद्धिकरण कर रहे है। आज हम स्वतन्त्रता (स्वराज्य) के मन्दिरमें प्रवेश पानेकी योग्यता प्राप्त कर रहे हैं।

"कुछ लोग कहते है कि वहिष्कृत वस्त्रोको नष्ट करना क्रोध और द्वेष-भावनाका सूचक है। वह द्वेषभावका सूचक है या नही, यह तो इसपर निर्भर करता है कि हम किस भावनासे इन कपडोको जला रहे है।

"हम अग्रेजो और अमेरिकनो, जापानियो, या फ्रासीसियोके प्रति दुर्भावना क्यो रखे ? वे हमारे यहाँ अपना कपडा तवतक भेजते रहेंगे, जवतक हम उसे खरीदना पसन्द करेंगे। इसलिए यदि हमे क्रोध आये तो हमे अपना क्रोध अपने ही ऊपर उतारना चाहिए। जव हम विदेशी सुन्दर चीजोपर लुब्ध होना वन्द कर देंगे, तव हम विदेशी राष्ट्रोके प्रति दुर्भाव रखना ही छोड देंगे।

"मै देखता हूँ कि तुर्कीमे घटनेवाली घटनाएँ हमारे देशके मुसलमानोको असन्तोष पहुँचा रही है। वे खिलाफतके सम्वन्धमे किये गये अन्यायसे अधीर हो उठे हैं। मै उनसे विनयपूर्वक कहना चाहता हूँ कि खिलाफतकी मदद करनेका सवसे छोटा और सीधा तरीका स्वदेशी ही है, क्योकि स्वदेशीको अपनाकर हम भारतको शक्तिशाली वनाते हैं और भारतकी ताकत वढानेका अर्थ है खिलाफतकी रक्षा करनेकी हमारी ताकतका वढ जाना।

"परन्तु आज हमारे दिलोमे सवसे पहला ख्याल यही होना चाहिए कि हम लोकमान्यकी वरसी मनानेके लिए अपने मनको शुद्ध करे। जवतक हम स्वदेशीकी शपथ नही लेते, तवतक हम अपनेको शुद्ध नही कर सकते। इसलिए मै आशा करता हूँ कि जिन लोगोने अपने कपडे वाँटनेके लिए या वाहर भेजनेके लिए दे दिये है वे इस वातका दृढ निश्चय करेंगे कि भविष्यमे कभी विदेशी-वस्त्र नहीं पहनेंगे। मुझे विश्वास है कि लोकमान्यकी स्मृतिको अमर वनानेका सवसे अच्छा तरीका स्वराज्यकी प्राप्ति है और स्वदेशीके विना स्वराज्य असम्भव है। स्वदेशीका श्रीगणेश तभी हुआ माना जायगा, जव विदेशी वस्त्रोका पूर्ण और स्थायी रूपसे वहिष्कार हो। इसलिए मैं होली जलानेकी इस रस्मको एक पुनीत रस्म—यज्ञ मानता हूँ। और यह पवित्र रस्म मेरे द्वारा सम्पन्न होने जा रही है, इसलिए मैं अपने-आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ। ईश्वर हमारे भीतर और वाहरकी सारी अपवित्रता दूर करे। ईश्वर करे, भारतको ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि वह अगले

३० सितम्बरतक विदेशी-वस्त्रोंके पूर्ण बहिष्कारको सफल बना सके और इस प्रकार अपने पवित्र निश्चयको पूरा कर सके।"

३० जुलाईको बम्बईमें कांग्रेस-महासमितिका जो अधिवेशन हुआ, उसमें स्वदेशी तथा बहिष्कारके सबधमें प्रस्ताव पास हुआ था। कांग्रेस-महासमितिने निश्चय किया था कि स्वदेशीका कार्यक्रम पूरा न हो जाय, तबतक सत्याग्रह न किया जाय।

इसके प्रभावसे महीन कपडोंके शौकीन बडे-बडे नर-नारी मोटा खद्दर पहनने लगे। स्व० जमनालाल बजाजकी धर्मपत्नीने बताया कि उन्होंने अपने तमाम विदेशी कपडे त्याग दिये। गहनोंकी एक पेटीमें विलायती मखमल थी, वह भी उन्हें अखरने लगी थी। अगस्त और सितंबरमें गांधीजीने युक्तप्रान्त, बिहार तथा बंगालका दौरा किया। इस विशाल देशके कोने-कोनेतक—उत्तरसे लेकर सुदूर दक्षिणतक, पूर्वी पर्वतोंसे लेकर पश्चिमी सागरतक—दौरा करके उन्होंने लोगोंमें खूब जागृति पैदा की, क्योंकि विदेशी बहिष्कारका कार्यक्रम समाप्त होते ही सत्याग्रह आरंभ होनेको था। गांधीजी कितनी ही जगह पैदल भी चलते थे। इसने भारतके करोडों लोग उनसे मिले और उन्होंने उनमें खादीका बीज बोया।

गांधीजी यह दौरा करते हुए कलकत्तेसे गुजरे। वहाँ विदेशी कपडोंकी होली हुई और इस सबंधमें मार्च (१९२१) के दूसरे सप्ताहमें उनपर यह अभियोग लगाया गया कि उन्होंने आज्ञा भंग की या आज्ञा भंग करनेमें सहायता दी। आज्ञा यह थी कि सार्वजनिक स्थानोंपर घासफूस आदि न जलाया जाय। कलकत्ताके पुलिस-कमिश्नर सर चार्ल्स टेगार्टने कलकत्ता पुलिस-कानूनकी ६६-वीं धाराकी दूसरी कलमको खोज निकाला था। पुलिसका इरादा तो यह था कि इस कार्यको 'सविनय-अवज्ञा' सिद्ध किया जाय, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। गांधीजीपर मुकदमा चला और उनपर एक रुपया जुर्माना हुआ। इसके बाद उन्होंने आन्ध्र-प्रदेशकी स्मरणीय यात्रा की और डेढ मासमें खद्दरके लिए दो लाख सत्तर हजार रुपये इकट्ठे किये। इस प्रकार कुछ वर्षके लिए खादी-प्रचार ही गांधीजीका मुख्य कार्यक्रम रहा। उन्होंने खादीके कामके लिए काफी रुपया इकट्ठा किया। वे अक्सर कहते थे कि मुझे 'दरिद्रनारायण' के लिए रुपया चाहिए। वे इस बातपर भी जोर देते थे कि धनवानोंको अपनेको 'गरीबोंका थाती' समझना चाहिए।

खादीके प्रश्नको लेकर गांधीजीको कभी बड़े-बडे नेताओंकी बातें भी सुननी पडती थीं। एक बार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुरने खादी-चरखेपर आपत्ति करते हुए लेख लिखा था, जिसका जवाब देते हुए गांधीजीने लिखा :

"मैं कविवरको विश्वास दिलाता हूं कि देशको ऐसा विश्वास हो गया है कि चरखा हमारे लिए कामधेनु है। ऐसा बड़े शंका-समाधानके बाद खूब अच्छी तरह

सोच-विचार करनेपर हुआ है। बेशक मैं कविवरको और उसी तरह एक किंकर-तकको कहता हूँ कि आप एक धार्मिक विधि समझकर चरखा काता करें।

"जब मकानमे आग लग जाती है, तो घरके सब लोग बाहर निकल आते हैं। तब सब आदमी घडे हाथमे लेकर उसे बुझानेकी कोशिश करते हैं। जब मेरे चारो ओर लोग भूखो मर रहे हैं, तब मेरे लिए एक ही काम है कि मैं उन भूखोके भोजन-पानका प्रबन्ध करूँ। मेरा दृढ विश्वास हो चुका है कि इस भारत-रूपी घरमें आग धधक रही है, इसके मनुष्यत्वकी होली हो चुकी है, और यह मारे भूखके मर रहा है, क्योकि इसके पास कोई काम नही, जिससे पैसा पाकर लोग अपना पेट भर सके।

"हमारे ये बडे-बडे शहर ही सारा भारत नही है, भारत तो अपने साढे सात लाख गाँवोमे निवास करता है और शहर उन गाँवोपर अपनी जिन्दगी बसर करते है। वे अपनी धन-दौलत कही दूसरे देशोसे नही ले आते। शहरके लोग तो बस यूरोप, अमेरिका और जापानके बडे-बडे व्यापारियो और कम्पनियोंके दलाल और कमीशन एजेण्ट है। पिछले २०० सालोसे विदेशियोंद्वारा जो भारतका खून चूसा जा रहा है, उसमें इन शहरोका भी हाथ है।

"मेरा तो यह अनुभव-सिद्ध विश्वास है कि भारतवर्ष दिन-ब-दिन कगाल ही होता जा रहा है। उसके पैर तो प्राय ठडे ही पड गये है। हम अगर अब भी न चेतेंगे तो भारत गश खाकर गिर पडेगा।"

फिर श्रमकी महत्ता बताते हुए गाधीजीने लिखा·

"जो लोग भूखो मर रहे है और बेकार हैं, उनका परमेश्वर तो योग्य काम और उससे मिलनेवाला अनाज ही है। परमात्माने मनुष्यको अपने पेटके लिए श्रम करनेको पैदा किया है और उसने कह दिया है कि जो अपने हिस्सेका काम किये बिना ही भोजन पाते हैं, वे चोर हैं। देशके कोई ८० फी सदी आदमी विवश होकर सालभरमे ६ माह ऐसे चोरका जीवन बिता रहे है। ऐसी स्थितिमें अगर भारतवर्ष एक बडा भारी जेलखाना ही बन गया है, तो इसमे कौन आश्चर्यकी बात है?

"हिन्दुस्तानको अगर कोई दलील चरखेकी तरफ खीच रही है तो वह है भूख। चरखेकी पुकार दूसरी सब पुकारोसे मधुर है, क्योकि वह प्रेमकी पुकार है और प्रेम ही स्वराज्य है। अगर आवश्यक शारीरिक परिश्रममे बुद्धिका विकास रुकना है तो चरखेपर किया हुआ कविवरका आक्षेप सत्य सिद्ध हो सकेगा। हमको भारतके उन लाखो-करोडो आदमियोकी हालतपर अवश्य विचार करना चाहिए, जिनका जीवन पशुसे भी गया-बीता हो गया है, जो बिलकुल मरणोन्मुख हो रहे है। यह चरखा ही देशके उन लाखो भाइयो और बहनोके लिए एकमात्र संजीवनी बूटी है।

"मुझसे यह सवाल किया जा सकता है कि जिनको अपना पेट पालनेके लिए कोई काम करनेकी जरुरत नही, वे क्यों चरखा कातें ? उसका जवाब यह है कि, वे जो कुछ खा रहे हैं, वह उनका नही है। वे अपने देशभाइयोंको लूटकर अपना पेट भर रहे हैं। जरा गौर कीजिये कि आपकी जेबकी एक-एक पाई कहां से आती है, तब आपको मेरे कथनकी यथार्थताका अनुभव हो जायगा।

"अगर हमारे देशके लाखो-करोडो भाई अपनी बेकर्मीकी बेकारीको दूर करके अपना समय किसी काममे बिताना न सीखें तो उनके लिए स्वराज्यका कोई अर्थ नही है। ऐसे स्वराज्यकी प्राप्ति थोडे ही समयके अन्दर हो सकती है और उनका एकमात्र साधन चरखेका पुनर्जीवन ही है।"

विदेशी वस्त्रके बहिष्कारके दो अग थे–एक तो विदेशी मालकी रोक और दूसरे स्वदेशमे काम-धन्धोकी बढोतरी। विदेशी माल और विदेशी हानिकर सस्थाओंके बहिष्कारमे ब्रिटिश साम्राज्यपर अप्रत्यक्ष प्रभाव डालनेका भी हेतु था, जिससे वहांकी जनता ब्रिटिश सत्ताको भारतीय स्वराज्यके पक्षमे प्रभावित कर सके। इसका परिणाम भी हुआ।

१०. अन्तहीन समस्या : साम्प्रदायिक वैमनस्य

(१९२०)

खिलाफतके प्रश्नपर गाधीजीने जिस प्रकार अपना बल लगाया और काग्रेसने भी सहयोग दिया, उसे देखकर बचपनमें अपने गाँवमे हिन्दू-मुसलमानोमें जो आत्मीयता और प्रेम देखा था, उसकी याद अब बार-बार आती है। जातियाँ अलग-अलग होते हुए भी, अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए भी, हम एक ही गाँवके निवासी हैं, यह भावना सबमे इतनी तीव्र थी कि यदि हिन्दूकी लडकी किसी गाँवमे ब्याही है तो उस गाँवका मुसलमान भी उस गाँवकी हदमे पानी नही पीता था। ऐसा करना अधर्म समझता था। एक बार जब एक मित्रसे उस तथा आजके जमानेकी तुलना हो रही थी, तो वे बोले, "आज कानून का राज्य तो हो गया, पर धर्मका–प्रेमका राज्य चला गया।" मै उनके इस उद्गारपर सोचता ही रह गया।

गाधीजीने नही,–मगर हमारे नेताओंने माना था कि पाकिस्तान बन गया तो वे अपने पाकिस्तानमें खुश रहेंगे, हम अपने हिन्दुस्तानमे। पर पाकिस्तान एक सिर-दर्द ही होकर रहा और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान अभीतक मित्र नही बन पाये है। इसके कुप्रभावसे भारत भी अछूता नही है। आये दिन एक-न-एक झझट लगी रहती है। जिस हिन्दू-मुस्लिम एकता–साम्प्रदायिक शान्ति–के लिए गाधीजीको अपने प्राण गँवाने पडे, वह अब भी कोसो दूर मालूम होती है। भगवान् करे, इस गाधी-शताब्दीमे गाधीजीकी व्यथित आत्माकी पुकार हम सुन सकें।

सच पूछिये तो हिन्दू-मुसलमान विवादकी जड सर आकलैंड कालविन जब (१८८८) सयुक्तप्रान्तके लेफ्टिनेण्ट गवर्नर थे, तभीसे पड चुकी है। उस समय यह दिखानेकी कोशिश की गयी थी कि मुसलमान काग्रेसके विरोधी है। इसमें कोई शक नही कि काग्रेसके पहले दो-तीन अधिवेशनोकी सफलताने नौकर-शाहीके मनमे हलचल पैदा कर दी थी, जिसकी अभिव्यक्तिका काम लेफ्टिनेट गवर्नरने कर दिया। मुसलमानोपर भी इस विचारका असर तुरन्त हुए बिना न रहा। उन्हें सरकारी अधिकारियोका बुजुर्गाना और मेहरबाना रवैया, जरूर अखरा होगा, जैसा कि एक घटनासे जाहिर होता है। काग्रेसका चौथा अधिवेशन इलाहाबादमे अग्रेज हाकिमोका विरोध होते हुए भी हुआ। उसमे शेख रजाहुसेनखाँने श्री यूलके सभापतित्वके प्रस्तावका समर्थन करते हुए काग्रेसके हकमें एक फतवा पेश किया, जो कि लखनऊके सूफियोके शम्सुलउलमासे प्राप्त किया गया था। उन्होने धडल्लेके साथ कहा—"मुसलमान नही, बल्कि उनके मालिक—सरकारी हुक्काम—काग्रेसके मुखालिफ है।"

फिर भी वास्तवमे लार्ड मिटोके जमानेमे साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वके खयालने मूर्तरूप धारण किया। अलबत्ता इससे पहले लॉर्ड कर्जनने जरूर जानबूझकर बगभगके द्वारा और पूर्वी बगाल और आसामको अलग प्रान्त बनाकर, जिसमे मुसलमानोका बहुमत हो, यह कलुषित जातिगत भावना जागृत की थी। पर स्पष्ट रूपसे मुसलमानोंके लिए अलग निर्वाचन-सघकी तजवीज मिटोकी शासन-सुधार-योजनामे ही की गयी। और यहीसे दरअसल फूटके गहरे बीज बो दिये गये।

१९१० मे सर विलियम वेडवर्न काग्रेसके सभापति हुए। उन्होंने चाहा था कि हिन्दू और मुसलमानोकी एक परिषद् की जाय, जिससे जातिगत प्रश्नपर मेल हो जाय। उस समय म्युनिसिपल और लोकल बोर्डोमें पृथक् निर्वाचन जारी होनेकी बात चल रही थी। उस समय श्री मुहम्मदअली जिन्नाने अलबत्ता स्थानिक सस्थाओमे पृथक् निर्वाचन प्रचलित करनेकी निन्दा की थी। जब दोनोंके मतभेद मिटानेकी बात होती थी तो एक गोरे अखबारने, जो कि सिविल सर्विसवालोका मुखपत्र समझा जाता था, लिखा—"ये लोग क्यो इन दोनों जातियोंको मिलाना चाहते हैं ? क्या इसीलिए कि दोनो जातियोको मिलाकर सरकारका विरोध किया जाय ?"

१९१३ मे नवाब सैयद मुहम्मद बहादुर ने भी, जो करांची-काग्रेसके सभापति थे, हिन्दुओ और मुसलमानोको अपनी मातृभूमिके लिए कन्धेसे कन्धा मिलाकर काम करनेपर बहुत जोर दिया। यह हमें १९२१ के खिलाफत-आन्दोलन और हिन्दू-मुसलमान सबधोंके मेलजोलकी याद दिलाता है। १९१३ मे करांची-काग्रेसने हिन्दू-मुसलमानोंने अपने भेदभाव मिटा दिये और मुस्लिम-लीगके इन विचारको

पसन्द किया कि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत भारतवासियोको स्वशासन दिया जाय। हिन्दू-मुसलमानोंके बीच मेल और सहयोगका भाव बढानेके मुस्लिम-लीगके विचारको भी पसन्द किया गया। स्व० भूपेन्द्रनाथ बसु और स्व० वाचा जी इस सम्बन्ध में बोले थे। श्री वाचाने कहा था—"कांग्रेस नये शुभ जीवनमे प्रवेश कर रही है और उसके ग्रह भी मगल ही दिखाई देते है। इनसे हमें विश्वास है कि हम अवश्य नवीन सफलताएँ प्राप्त करेगे।"

फिर १९१५ मे सर सैयद अहमदने कहा था कि "हिन्दू और मुसलमान हिन्दुस्तानकी दो आँखे है और दोमेसे एक भी न हो तो माँका चेहरा बदसूरत हो जायगा।"

कांग्रेस अकेले हिन्दुओकी रही हो, सो बात नही। अंग्रेज तो उनके जनक ही कहे जाते है, परन्तु शुरूसे ही मुसलमान भी उसके अध्यक्ष होते रहे है। बदरुद्दीन तैयबजी एक पक्के कांग्रेसी थे, जो बढते-बढते कांग्रेसके तीसरे अधिवेशन (मद्रास १८८७) के सभापति हुए थे। नवाब सैयद मुहम्मद १९१४ मे मत्री चुने गये, जो कि इससे पूर्व सन् १९१३ मे अध्यक्ष थे। मौ० मजहरुल हक १९१० मे इलाहाबादमे कांग्रेसके अध्यक्ष थे। उन्होने अपने भाषणमे हिन्दुओ और मुसल-मानो को आपसमे मिल जानेकी प्रेरणा दी। कौंसिलोंके लिए साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वकी योजनाका विरोध किया और कहा कि दरअसल यह दोनो महान् जातियोकी भलाईके लिए बडी घातक योजना है। देशको जरूरत इस बातकी है कि दोनो एक-दूसरेसे अलग-अलग बन्द दायरोमे न रहकर एक-दूसरेके साथ मिलकर काम करें।

कांग्रेस-अधिवेशन बम्बई (१९१५) में महासमितिको यह अधिकार दिया गया कि इस (स्वराज्य-योजना) मे वह मुस्लिम-लीगकी कमेटीसे भी परामर्श करे और इस विषयमें अन्य सारी कार्रवाई करे।

बम्बई-कांग्रेसने कांग्रेस और मुस्लिम-लीगके प्रतिनिधियोका एक सम्मेलन करनेका जो आदेश दिया, वह यथाविधि किया गया। उसका परिणाम हुआ भारतवर्षकी दो महान् जातियोका पूर्ण एकमत हो जाना। यह तय हुआ कि सम्मि-लित कमेटी द्वारा तैयार किया गया स्वराज्यका मसविदा लखनऊ (१९१६) मे कांग्रेस और लीग दोनो मिलकर पास करें। इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता-सबधी समझौता तय हो गया। लखनऊ-कांग्रेसकी सबसे बडी सफलता थी शासन-सुधारोंके लिए कांग्रेस-लीग योजनाकी पूर्ति और हिन्दू-मुसलमानोंमे पूर्णत सम-झौता और मेल हो जाना। इस तरह यह पेचीदा मसला १९१६मे लखनऊमें सुलझा लिया गया। उस समय श्री जिन्ना और लोकमान्य तिलकमे एक समझौता हुआ था, जो कांग्रेस-लीग योजनाके नामसे प्रसिद्ध है। उसपर बोलते हुए तिलक महाराजने कहा था :

"We have united in United Provinces and we have found that luck now in Lucknow."

("हम युक्तप्रान्तमे युक्त (एक) हुए हैं और यह सौभाग्य [लक] हमें लखनऊमें प्राप्त हुआ है।") इस प्रसगपर लोकमान्यने यह भी कहा था कि "हमें स्वराज्य हिन्दुस्तानके लिए चाहिए, भले ही राज मुसलमान करें या राजपूत। मुझे इसकी कोई चिंता नही।"

फिर भी पृथक् जाति-निर्वाचनकी बात अग्रेजोंके मनसे हटी नही।

× × × ×

काग्रेस और लीगके साथ-साथ अधिवेशन होनेका जो क्रम बम्बई से शुरू हुआ, वह लखनऊमे भी जारी रहा। यह सिलसिला ठेठ १९२१ तक—मोपला उपद्रव होने तक—ठीक रहा। इसी बीच खिलाफतका प्रश्न खडा हुआ, जिसमे गाधीजीने और उनकी प्रेरणासे काग्रेसने पूरी दिलचस्पी ली। पर ब्रिटिश सत्ताको यह कैसे सहन होता? मोपला—उत्पातके रूपमे उसने अपनी करामात दिखा ही दी।

११. पड़ोसी-धर्म
(१९२१)

'कुलस्यार्थे त्यजेत् एक. ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।'

(कुलके लिए एकको और गाँवके लिए कुलको त्याग करना चाहिए।)

पडोसी-धर्म हम सभी जानते है। परन्तु गाधीजीने 'स्वदेशी-धर्म' के नामसे उसका नया और व्यापक सस्करण किया है। गाधीजीने जो विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और खादीका सदेश दिया, वह मुख्यत राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोणसे माना जाता है, परन्तु गाधीजीकी दृष्टि उसमे और भी गहरी थी और वह थी पडोसी-धर्मकी। १४ फरवरी १९१६ को गाधीजीने मद्रासमे मिशनरी सम्मेलनके अपने एक भाषणमे इस विषयको अच्छी तरह समझाया है। आपने कहा·

"स्वदेशी एक भावना है, 'स्पिरिट' है। उसका अर्थ है दूरकी चीजोंकी अपेक्षा हम अपने आसपासकी, नजदीककी ही चीजें काममे लेनेका नियम बनायें। उदाहरणके लिए धर्मको लें तो इस परिभाषाके अनुसार मुझे अपने पूर्व-पुरुषोंके धर्मका ही अनुसरण करना चाहिए। अगर उसमें कोई कमी है तो उन कमियोंको निकाल बाहर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। राजनीतिके क्षेत्रमें मुझे अपनी देशी, स्थानीय सस्थाओका ही उपयोग करना चाहिए। अगर उनमें कोई दोष

हैं, तो उन दोषोंको दूर करें, यह उनकी सेवा है। अर्थशास्त्रके क्षेत्रमें भी इसी न्यायसे काम लें। मैं उन्हीं चीजोंका उपयोग करूँ, जिन्हें मेरे एकदम पास-पड़ोसके लोगोंने बनाया है। उनमें भी यदि कोई खामी है तो उन उद्योगोंको सुधारूँ और उन्हें अधिक अच्छा और हर तरहसे परिपूर्ण बनाकर उनकी सेवा करूँ। लोग कहते हैं कि इस स्वदेशी धर्मका पालन करने बैठेंगे तब तो हजार वर्ष लग जायेंगे, क्योंकि यह सब हमारे जीवनमें तो बननेवाला है नहीं। तो ऐसी स्वदेशीको छोड़ ही न दें? नहीं। इसको पूर्णतातक पहुँचानेमें भले ही युग लग जायें, फिर भी हमें इसे छोड़ना नहीं चाहिए। इसे हम छोड़ नहीं सकते।

"लोग कहते हैं, राजनीतिका धर्मसे कोई वास्ता नहीं। परन्तु मैं इस बातको नहीं मानता। धर्महीन राजनीति एक लाशके समान है। वह तो तुरन्त दफना देनेकी चीज है। मुझे लगता है कि यदि राजनीतिको धर्मसे अलग रखनेका प्रयत्न नहीं किया जाता तो न तो राजनीतिकी और न धर्मकी ऐसी दुर्दशा होती। कोई नहीं कहेगा कि हमारे देशकी राजनीति अच्छी हालतमें है। स्वदेशीकी ही बात पर आयें तो मैं कहूँगा कि हमारी देशी संस्थाएँ और ग्राम-पंचायतें मुझे आकर्षित करती हैं। सचमुच भारत एक लोकतंत्री देश है। यही कारण है कि अबतक उसपर जितने भी आक्रमण हुए, उन्हें वह बरदाश्त कर सका। देशी या विदेशी जितने राजा-बादशाह या सुलतान आये, वे जनसाधारणको बहुत कम छू सके। वे तो केवल लगान वसूल करनेभरके मालिक थे। लगान दिया और छुट्टी पायी। इससे अधिक लोगोंने इन सत्ताधारियोंसे कोई संपर्क रखा ही नहीं। जातियोंके महान् संगठन न केवल उनकी धार्मिक जरूरतोंकी पूर्ति कर देते थे, बल्कि राजनीतिककी भी। गाँव अपनी भीतरी व्यवस्था जातीय संगठनोंकी मददसे कर लिया करते थे। यदि शासक सत्ताकी तरफसे कोई अन्याय होता तो उसका प्रतिकार भी वे इन जातीय संस्थाओंकी मददसे ही करते थे। अपने जातीय संगठनके द्वारा देशने जो शक्ति प्राप्त कर ली थी, उसे कोई ताकत छीन नहीं सकती थी।

"परन्तु स्वदेशीकी इस मूल भावनाको गँवाकर हमने भयंकर भूल की और उसके नतीजे भी भयंकर हुए हैं। हम शिक्षित लोगोंने अपना शिक्षण एक विदेशी भाषाके माध्यमसे पाया है। इस कारण हम जन-समाजको कोई लाभ नहीं पहुँचा सके हैं। हमें उनका प्रतिनिधित्व करना चाहिए। परन्तु वह कर नहीं पा रहे हैं। अंग्रेज अफसरोंसे अधिक वे हमें अपना आत्मीय नहीं मानते। उनका हृदय-कमल न उन्हें देखकर खिलता है, न हमें देखकर। उनकी आकांक्षाएँ हमारी आकांक्षाएँ नहीं। इसलिए बीचमें एक खाई खड़ी हो गयी है। समाजको हम जो संगठित नहीं कर पा रहे हैं, इसका कारण हमारे प्रयत्नोंकी असफलता नहीं, बल्कि समाज और उसके प्रतिनिधियोंके बीच सजीव संपर्कका ही अभाव है। अगर पिछले पचास

भूमि हमारा शिक्षण देशकी भाषाओंके माध्यमसे होता तो उसका लाभ हमारे बड़े-बूढोको, नौकरोको और पडोसियोको भी मिलता रहता। जगदीशचन्द्र वसु और प्रफुल्लचन्द्र रायके आविष्कारोकी जानकारी रामायण और महाभारतकी कहानीकी भाँति बच्चे-बच्चेकी जवानपर होती। परन्तु आज तो वे इन आविष्कारोसे इतने ही बेखबर है, मानो किसी दूसरे देशमे ये आविष्कार हुए हो। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि हमारी पढाई देशी भाषाओंके माध्यमसे हुई होती, तो हम आश्चर्यजनक प्रगति अबतक कर लेते। ग्राम-सफाईकी समस्या कभीकी हल हो गयी होती। हमारी ग्राम-पचायतें शक्तिशाली सेविकाएँ बन गयी होती और भारत आज अपनी जरूरतोके लायक स्वराजका आनद लेता होता। वह इन अवमाननाओ और अपमानोसे बच जाता। अब भी चाहे तो सँभल सकते है।

"हमारी इस भयकर दरिद्रताका कारण आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्रमे स्वदेशीका आत्मघाती त्याग है। बाहरसे अगर हम एक भी चीज नही आने देते तो इस देशमे दूध और घीकी नदियाँ बहती होती। परन्तु हमारा दुर्भाग्य कि ऐसा नही हो सका। लोभने हमे भी अन्धा बना दिया और इग्लैंडको भी। भारत और इग्लैंडके सबधका आधार ही गलत, भूलभरा रहा। परन्तु अब आज वह यहाँ भूलसे नही है। ससारसे वह कह रहा है कि हिन्दुस्तानपर वह राज हिन्दुस्तानियोके भलेके लिए ही कर रहा है। यदि सचमुच ऐसी बात है तो लकाशायर यहाँसे हट जाय। यदि स्वदेशी एक सच्चा धर्म है तो यहाँ से हटनेमे उसका कोई अकल्याण नही होनेवाला है, प्रारम्भमे उसे भले ही कुछ धक्का लगे।

"स्वदेशीका सिद्धान्त किसीको बहिष्कारकी सजा देनेके लिए नही अपनाया जा रहा है। मै तो उसे एक धर्मके रूपमे मानता हूँ, जिसका पालन सबको करना चाहिए। भारत लकाशायरके लिए नही पैदा हुआ है। जबतक वह स्वय अपने पैरोपर खडा नही हो जाता, वह लकाशायर या अन्य किसीकी सेवा नही कर सकता। अपने पैरोपर वह तभी खडा हो सकेगा, जब वह अपनी जरूरतकी हर चीज खुद ही अपनी सीमाओके अन्दर बनाने लग जायगा।

"लॉर्ड कर्जनने इस देशमे चाय पीनेके फैशनका प्रारम्भ किया। आज यह हानिकर चीज सारे देशमे फैल गयी है और लाखो-करोडोकी पाचन-शक्तिको बिगाड रही है तथा उनकी दरिद्रतामे एक भारी बोझ बन गयी है। इसी तरह विचारशील लोग यदि स्वदेशीका फैशन शुरू कर दें तो इसे भी लोग ग्रहण कर सकते है।

"लोग प्राय कहते है कि कम-से-कम आर्थिक क्षेत्रमे भारत स्वदेशीको नहीं अपना सकता। जो इस तरह की बातें करते है, वे नही जानते कि यह तो जीवनका धर्म है। वे इसे स्वदेश-प्रेमका केवल एक तात्कालिक प्रयास मान बैठे है और

चूंकि उसमे कुछ असुविधाएँ सहनी पडती है, इसलिए उसे स्वीकार करनेसे इनकार कर रहे है। किन्तु जिस स्वदेशीका जिक्र मै यहा कर रहा हूँ, वह एक धर्मानुशासन-जैसी वस्तु है और उसका पालन प्रत्येक व्यक्तिको करना ही चाहिए, फिर उसमे उसे चाहे कितना ही शरीर-कष्ट हो। स्वदेशीके भक्तको आज बहुत-सी जरुरी समझी जानेवाली चीजोके बगैर काम चलाना सीखना होगा। इसके अलावा जो उसे एक असभव चीज कहकर अपने दिलसे हटा देना चाहते है, वे भूल जाते है कि वह कही एक दिनमे तुरन्त सफल हो जानेवाली वस्तु नही है। वह धीरजके साथ क्रमश, परन्तु दृढ निश्चयके साथ अमलमे लानेकी वस्तु है।"

अपने पसीनेकी रोटी खाना, इस स्वधर्मको तो बहुतसे लोग समझते है, लेकिन जीवनमे उतना ही महत्त्व वे पडोसी-धर्मको नही देते, उस धर्मका मर्म गाधीजीने बडे अच्छे ढगसे समझा दिया है।

१२. मै सनातनी हिन्दू हूँ

(१९२१)

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः'

(स्वधर्ममे मरण श्रेयस्कर है)

यो तो मैने कई दफा अपनेको 'सनातनी हिन्दू' कहा है, परन्तु इस मद्रासकी मुसाफिरीमे, छुआछूतके प्रश्नकी चर्चा करते समय मैने पहलेसे भी ज्यादा जोर और दावेके साथ कहा कि मै सनातनी हिन्दू हूँ। मै देखता हूँ कि लोग हिन्दू-धर्मके नामपर कितनी ही ऐसी बातें आमतौरपर करते है, जिनका कायल मै नही हूँ। अगर मै सनातनी हिन्दू नही हूँ तो मै नही चाहता कि सनातनी हिन्दू कहलाऊँ। और यह अभिलापा तो मुझे बिलकुल ही नही है कि किसी महान् धर्ममतकी ओटमे मै चुपके-चुपके कोई सुधार या बिगाड करूँ।

अतएव यह मेरे लिए आवश्यक हो गया है कि मै अपने सनातन हिन्दू-धर्मका मतलब एकबारगी साफ-साफ समझा दूँ। 'सनातन' शब्दका प्रयोग मैने उसके स्वाभाविक अर्थमे किया है।

मै नीचे लिखे कारणोसे अपनेको 'सनातनी हिन्दू' कहता हूँ—

(१) मै वेदोको, उपनिषदोको, पुराणोको और उन सब वस्तुओको मानता हूँ, जो हिन्दू-शास्त्रके नामसे विख्यात है। इसलिए मै अवतारो और पुनर्जन्मको भी मानता हूँ।

(२) मै वर्णाश्रम-धर्मको मानता हूँ—परन्तु अपनी समझके अनुसार ठीक वैदिक अर्थमे, आजकलके प्रचलित और अपूर्ण अर्थमे नही।

(३) मै गोरक्षाको मानता हूँ, परन्तु वर्तमान प्रचलित अर्थसे बहुत व्यापक अर्थमे ।

(४) मै मूर्ति-पूजामे अविश्वास नही करता ।

पाठक इस बातपर ध्यान रखें कि मैंने वेदो अथवा किसी शास्त्रके सम्बन्धमे 'अपौरुपेय' शब्दका प्रयोग जान-बूझकर नही किया है, क्योकि मै सिर्फ वेदोको ही अपौरुषेय नही मानता हूँ । मै तो बाइबिल, कुरान और जेन्दा-अवेस्ताको भी, वेदोकी ही तरह, ईश्वरी प्रेरणाका फल मानता हूँ ।

हिन्दू धर्म-ग्रन्थोपर मेरी जो श्रद्धा है, उसके लिए यह कोई आवश्यक नही है कि मै उनके प्रत्येक शब्द और प्रत्येक श्लोकको अपौरुपेय मानूँ और न मै इस बातका दावा ही रखता हूँ कि इन अद्भुत ग्रन्थोका विशुद्ध ज्ञान मुझे है । परन्तु हाँ, उन धर्म-ग्रन्थोके अत्यत आवश्यक उपदेशोकी सत्यताके ज्ञानका और उसको अनुभव करनेका दावा मै जरूर करता हूँ । मै उस अर्थको माननेके लिए तैयार नही, जो तर्क और नीतिके विरुद्ध हो, फिर वह चाहे कितना ही विद्वत्तापूर्ण क्यो न हो । मै बडे जोरके साथ आजकलके इन शकराचार्यों और शास्त्री-पण्डितोंके इस दावे (अगर वे कोई ऐसा दावा पेश करे) के खिलाफ अपनी आवाज उठाता हूँ कि "हिन्दू धर्म-शास्त्रोका वास्तविक अर्थ वही है, जो हम बताते है ।" बल्कि, इसके विपरीत, मेरा तो यह विश्वास है कि इन ग्रन्थोका जो ज्ञान इस समय लोगोको है, वह अत्यन्त अव्यवस्थित दशामे है ।

मै हिन्दू-शास्त्रके इस वचनका सोलहो आना कायल हूँ कि जिसने अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन नही किया और जिसने सम्पत्तिके अधिकार और उपार्जनका त्याग नही कर दिया है, वह वस्तुत शास्त्रोका मर्म नहीं समझ सकता । हाँ, मै 'गुरु'की प्रणालीको मानता हूँ, परन्तु इस वर्तमान युगमे तो लाखो लोगोको बिना गुरुके ही काम चलाना पडेगा, क्योकि पूर्ण शुद्धता और पूर्ण विद्वत्ताका सयोग बहुत ही कम जगह पाया जाता है । परन्तु इससे किसीको यह समझकर निराश होनेकी जरूरत नहीं है कि हमें धर्मका सच्चा ज्ञान तो कभी होगा ही नही, क्योकि हिन्दू-धर्मके मूलभूत सिद्धान्त तो, प्रत्येक महान् धर्मकी तरह, त्रिकालाबाधित है और आसानीमे समझमे आ जाते हैं ।

प्रत्येक हिन्दू यह मानता है कि ईश्वर है और वह अद्वैत है । वह पुनर्जन्म और मुक्तिको भी मानता है । परन्तु हिन्दू-धर्ममे और दूसरे धर्मोमे अगर कोई भिन्नता-दर्शक बात है तो वह हिन्दू-धर्मकी 'गोरक्षा' है । वर्णाश्रम-व्यवस्था भी इतनी भिन्नतादर्शक नही है ।

मेरी रायमे तो वर्णाश्रम-व्यवस्था मनुष्यकी प्रकृतिके लिए स्वाभाविक है । हिन्दू-धर्मने तो सिर्फ उसे एक शास्त्रके रूपमे परिणतभर कर दिया है । जन्मके साथ उसका सम्बन्ध अवश्य है । कोई मनुष्य अपनी इच्छाके अनुसार अपना वर्ण

नही बदल सकता। अपने वर्णके अनुसार न चलना गोतुत्वके नियमको न मानना है। हाँ, जो ये हजारो छोटी-छोटी जातियाँ बन गयी है, यह तो उस सिद्धान्तका अनावश्यक और मनमाना व्यवहार करना है। सिर्फ चार वर्ण ही सब तरहसे काफी है।

मैं इस बातको नही मानता कि सहभोज और अन्तर्विवाहमे किसी मनुष्यका जन्म-जात दर्जा अवश्य ही छिन जाता है। चार वर्णोके चार विभाग मनुष्यके व्यवसायके सूचक हैं। वे सामाजिक व्यवहारकी मर्यादा नही बाँधते या उसका नियम नही बताते। ये चार वर्ण तो कर्तव्यका निर्णय करते हैं, किसीको किसी तरहकी रिआयतका अधिकार नही देते। मेरी रायमे यह बात हिन्दू-धर्मके सनातन तत्त्वके विपरीत है कि एकको तो श्रेष्ठता दे दी जाय और दूसरेको कनिष्ठ बताया जाय। सब लोग ईश्वरकी इस सृष्टिकी सेवा करनेके लिए उत्पन्न हुए है—ब्राह्मण अपने ज्ञानके द्वारा, क्षत्रिय अपने रक्षाबलके द्वारा, वैश्य अपनी व्यापारिक योग्यताके द्वारा और शूद्र अपने शारीरिक परिश्रमके द्वारा।

इसका अर्थ यह नही है कि जैसे, कोई ब्राह्मण शारीरिक श्रम या अपनी तथा दूसरेकी रक्षाके कर्तव्यसे मुक्त हो। ब्राह्मण-कुलमे जन्म होनेके कारण वह प्रधानत ज्ञानशील है, आनुवशिक रूपसे तथा शिक्षा और अभ्यासके कारण वह दूसरोको ज्ञानदान देनेके लिए सबमे अधिक पात्र है। फिर ऐसी कोई बात नही है, जो किसी शूद्रको यथेच्छ ज्ञान प्राप्त करनेसे रोक सके। बात सिर्फ यही है कि वह अपने शरीरके द्वारा उत्कृष्ट सेवा कर सकेगा और उसे दूसरोके सेवा करनेके विशेष गुणोकी ईर्ष्या करनेकी जरूरत नही। लेकिन जो ब्राह्मण अपने ज्ञानके अधिकारके बलपर अपने उच्च और श्रेष्ठ होनेका दावा करता है, उसका पतन हो जाता है और वह वास्तवमे ज्ञानहीन ही है। यही बात दूसरे लोगोपर भी घटती है, जो अपने विशेष गुणोका घमण्ड दिखाते हैं। वर्णाश्रमका अर्थ है आत्म-सयम और कार्य-शक्ति का सद्व्यय तथा रक्षण।

इस प्रकार यद्यपि सहभोज और अन्तर्विवाहसे वर्णाश्रममे बाधा नही होती, तथापि हिन्दू-धर्म सहभोज और एक वर्णके साथ दूसरे वर्णके अन्तर्विवाहको रोकनेका प्रयत्न करता है। हिन्दू-धर्म आत्मसयमकी चरम सीमातक पहुँच गया है। इस धर्मका मूलाधार निस्सदेह भौतिक बातोकी निवृत्तिपर है, और उसका लक्ष्य है—आत्म-स्वातन्त्र्य। हिन्दुओके यहाँ तो उनके पुत्रके भी साथ भोजन करना उनके कर्तव्यका अग नही है। अमुक ही जातिकी कन्यासे विवाह करनेका नियम बनाकर हिन्दू लोग असाधारण आत्मसयमका पालन करते है।

हिन्दू-धर्म विवाहित अवस्थाको किसी भी दशामे मुक्तिके लिए आवश्यक नही बताता। 'जन्म' की तरह 'विवाह' भी आत्माका अव पात ही है। मुक्तिका अर्थ है जन्मसे, अतएव मृत्युसे छुटकारा पाना। अतएव अन्तर्विवाहका और सह-

भोजका निषेध आत्माके द्रुत विकासके लिए परम आवश्यक है। परन्तु यह निवृत्ति यो विरक्ति 'वर्ण' की कसौटी नही है। ब्राह्मणने यदि ज्ञानके द्वारा सेवा करनेके अपने कर्तव्यका त्याग नही किया है, तो वह अपने शूद्रभाईके साथ भोजन-पान करनेपर भी ब्राह्मण बना रह सकता है। अबतक मैंने जो कुछ कहा, उससे यह नतीजा निकलता है कि भोजन-पान और विवाहके विषयमे जो सयम रखा गया है, उसका आधार श्रेष्ठता या कनिष्ठताके भावपर नही है। जो हिन्दू अपनेको श्रेष्ठ समझकर किसी दूसरेके साथ भोजन-पान करनेसे इनकार करता है, वह अपने धर्मका आदर्श बिलकुल उलटा दिखाता है।

यह दुर्भाग्यकी बात है कि आज हिन्दू-धर्म अकेले चूल्हे-चौकेमे ही माना जाता है। मैंने एक बार एक मुसलमान भाईके यहाँ कुछ खाया। यह देखकर एक धर्म-निष्ठ हिन्दू हैरान हो गये। मैंने मुसलमान भाईके दिये प्यालेमे दूध उँडेला। उन्हे यह देखकर बडा दु ख हुआ और जब उन्होने देखा कि मैं मुसलमानकी दी हुई डबल रोटी खाने लगा, तब तो उनके दु खकी सीमा न रही। अगर हिन्दू-धर्म केवल क्या खायें और किसके साथ खायें—इसके परिश्रमसाध्य नियमोके सम्बन्धमे ही मन्तव्य करने लगे तो उसके प्राणोके सकटमे आ पडनेका अन्देशा है। हाँ, मादक पेय और पदार्थोका तथा हर तरहके खाद्य पदार्थोका, विशेष करके मासका सेवन न करनेसे निस्सदेह आत्मोन्नतिमे सहायता मिलती है, परन्तु केवल यही हमारा लक्ष्य किसी तरह नही। बहुतसे मनुष्य ऐसे हैं, जो मास-भोजन करते हैं और सब लोगोंके साथ खाते-पीते हैं, परन्तु ईश्वरसे डरते हैं। ऐसे लोग उस मनुष्यकी अपेक्षा मुक्तिके अधिक नजदीक हैं, जो धार्मिक दृष्टिसे मद्य-मास आदिका तो सेवन नही करता, परन्तु अपने हरएक कार्यके द्वारा ईश्वरका तिरस्कार करता है।

इतना होनेपर भी हिन्दू-धर्मका मध्यवर्ती या प्रधान अग है गोरक्षा। मेरी दृष्टिमे तो गोरक्षा मनुष्य-जातिके विकासमे एक अद्भुत चमत्कार-पूर्ण घटना है। यह मनुष्य-प्राणीको उसकी स्वाभाविक मर्यादाके ऊपर ले जाती है। मुझे तो गाय-मे मानो मनुष्य-जातिसे नीचेकी सम्पूर्ण सृष्टि नजर आती है। गायके द्वारा मनुष्य प्राणिमात्रके साथ अपने तादात्म्यके अनुभवका अधिकारी होता है। मुझे तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि गाय ही अकेली क्यो देवता मानी गयी है। हिन्दु-स्तानमे गायसे बढकर मनुष्यका साथी दूसरा कोई नही। उसने बहुतेरी वस्तुएँ हमे दी हैं। उसने हमे केवल दूध ही नही दिया है, बल्कि हमारी खेतीका भी सारा आधार उसीपर है। गाय तो एक मूर्तिमती करुणामयी कविता है। इस नम्र प्राणीमे करुणा ही करुणा दिखाई देती है। भारतके लाखो मनुष्योकी वह 'माता' है। गोरक्षाका अर्थ है—ईश्वरकी सम्पूर्ण मूक सृष्टिकी रक्षा। लेकिन प्राचीन ऋषियोने—फिर वे चाहे कोई हो—गायसे ही श्रीगणेश किया। सृष्टिकी

नीची श्रेणीके प्राणियोको वाक्-शक्ति नही है। इसलिए उनकी अपीलमे सबसे अधिक वल है। गोरक्षा ससारको हिन्दू-धर्मका दिया हुआ प्रसाद है और तबतक हिन्दू-धर्म बराबर जीवित रहेगा, जबतक हिन्दू लोग गोरक्षा करनेके लिए मौजूद है।

हिन्दू-धर्मके प्रति मेरी जो भावना है, उसका वर्णन मै अपनी धर्मपत्नीके प्रति अपनी भावनासे बढकर नही कर सकता। वह मेरे हृदयपर जितना अधिकार कर सकती है, उतना दुनिया की कोई स्त्री नही कर सकती। इसका कारण यह नही है कि वह निर्दोष है। मै कह सकता हूँ कि जितने दोष मैने उसमे पाये है, उससे भी अधिक दोष उसमे होगे। लेकिन उनके हृदयमे एक अटूट बधनकी भावना है। इसी प्रकार हिन्दू-धर्मके लिए और उसके विषयमे उसके तमाम दोषो और कमियोके होते हुए भी, मेरे हृदयमे प्रेमकी भावना है। गीता और तुलसीदासकी रामायणके सगीतसे जो स्फूर्ति और प्रेरणा मुझे मिलती है, वैसी और किसीसे नही मिलती। हिन्दू-धर्ममे यही दो ग्रन्थ ऐसे है, जिनके विषयमे कहा जा सकता है कि मैने देखे है। जब मुझे अपनी अन्तिम घडी पास आती दिखी, तब गीता ही मेरी शान्तिका, सान्त्वनाका साधन थी। आज तमाम बडे-बडे हिन्दू-धर्म-मदिरोमे जो पापाचार हो रहा है, उसे मै जानता हूँ। लेकिन उनकी इन अवर्णनीय त्रुटियोके होते हुए भी मेरा प्रेम उनपर है। उनके अन्दर मुझे एक ऐसी दिलचस्पी होती है, जो और कही नही मिलती। मै शुरूसे आखिरतक सुधारक हूँ। लेकिन यह मेरी उत्सुकता मुझसे यह नही कहती कि हिन्दू-धर्मकी किसी भी आवश्यक बातको रद्द कर दो। मै ऊपर कह चुका हूँ कि मै मूर्ति-पूजामे अविश्वास नही रखता। हाँ, किसी मूर्तिको देखकर मेरे हृदयमे किसी प्रकारकी आदरकी भावना जाग्रत नही होती। लेकिन मेरा खयाल है कि मूर्ति-पूजा मानवीय स्वभावका एक अग है। हमे स्थूल उपकरणका सहारा लेना पडता है। गिरजामे चित्त जितना एकाग्र हो जाता है, उतना दूसरी जगह क्यो नही होता? क्या यह मूर्ति-पूजा ही का एक भेद नही है? प्रतिमाओसे पूजा-आराधनामे सहायता मिलती है। कोई हिन्दू प्रतिमाको ही स्वय ईश्वर नही मानता। मै मूर्ति-पूजाको पाप नही समझता।

ऊपरकी बातोसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू-धर्म सकुचित धर्म नही है। उसमे ससारके समस्त पैगम्बरोकी पूजाके लिए गुजाइश है। यह कोई मिशनरी—किसी धर्म-मतका प्रचार करनेवाला—धर्म नही है। हाँ, इसमे कितनी ही भिन्न-भिन्न जातियोका समावेश हुआ है, परन्तु उनकी यह तद्रूपता विकासात्मक और अत्यन्त सूक्ष्म है। हिन्दू-धर्म तो हरएक मनुष्यसे यह कहता है कि तुम अपने विश्वास या धर्मके अनुसार ईश्वरका भजन-पूजन करो और इस प्रकार वह दूसरे समस्त धर्मोके साथ मेलजोलसे रहता है।

१३. बहिष्कारकी त्रिमूर्ति

(१९२१)

'त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।'

(तीन रूप और तीन गुणवाले तुम्हें नमस्कार !)

कलकत्तामे हुए काग्रेसके विशेष अधिवेशनमे गाधीजीने कहा था कि "यदि मेरी वतायी शर्तो को देश पूरा कर दे तो स्वराज्य एक वर्षमे आ सकता है।"

इसपर अनेक लोगोने उनकी बडी हँसी उडायी। कहा कि "ऐसे अगर-मगरके साथ तो कोई भी मूर्खतापूर्ण वात सभव वतायी जा सकती है।"

गाधीजीने इन शकाओके जवावमे लिखा था :

"मैने जो कुछ कहा है, वह गणितसे सिद्ध हो जाने लायक वात है और मै तो यह भी कहनेका साहस करता हूँ कि मेरी शर्तो की पूर्तिके वगैर सच्चा स्वराज्य असभव है।

"स्वराज्यके मानी वह अवस्था है, जिसमे हम अग्रेजोके वगैर अपनी स्वतत्रता कायम रख सके। यदि उनके साथ साझेदारी रखनी है, तो वह दो वरावरीवालो-की साझदारी होगी।

"आज हम अनुभव करते है कि भीतरी और वाहरी रक्षाके लिए हम अग्रेजो के मोहताज है। हिन्दू-मुसलमान भी यदि आपसमें नही लड रहे हैं तो उनकी पुलिस और फौजोके दवावसे ही। शिक्षा और अपनी जरूरतकी अन्य वहुतसी चीजोके लिए भी हमे उनका मुँह ताकना पडता है। हमारे धार्मिक और साम्प्र-दायिक झगडे भी वे ही मिटाते हैं। राजा अपनी गद्दीके लिए और धनी अपनी सम्पत्तिकी सुरक्षाके लिए उन्हीपर निर्भर है। इस निपट असहायतासे छुट्टी पानेका नाम 'स्वराज्य' है।

"समस्या सचमुच वहुत जटिल है। परन्तु जटिल उतनी ही है, जितनी भेडोके वीच परवरिश पाये उस सिंहके वच्चेके सामने यह अनुभव करना था कि वह तो सिंहका वच्चा है। टॉल्स्टॉय ठीक ही कहते थे कि प्राय सारी मनुष्यजाति भयके जादूके प्रभावमें जीती रहती है। लगातार वर्षो इस भयके जादूके असरमें रहनेके कारण हम भी अपने-आपको सचमुच असहाय और निकम्मे मानने लग गये हैं। और हम यह उम्मीद तो कदापि नही कर सकते कि अपने ही द्वारा डाले गये इस जादूको अग्रेज स्वय ही दूर कर देंगे। इसके विपरीत वे तो ढोल पीट-पीटकर हमे सदा कहते रहेंगे कि हमें स्वराज्य पानेके लायक वननेमें अभी वहुत समय और शिक्षाकी जरूरत है। 'टाइम्स' तो कहता भी है कि यदि हम धारा-

सभाओंका बहिष्कार करेंगे तो स्वराज्यकी मूल्यवान् तालीम देनेवाले इस अवसरसे अपने-आपको वंचित कर देंगे।

"मेरी नजरोंमें स्वराज्यकी सबसे बड़ी तालीम यह है कि हम अपनी, अपने देशकी रक्षा खुद कर सकें और पूरी आजादीके साथ रह सकें, भले ही उसमें अनेक कमियाँ हों। अच्छे-से-अच्छा शासन भी कभी स्वशासनकी बराबरी नहीं कर सकता। अफगानिस्तानको लीजिये। वहाँकी सरकार बहुत पिछड़ी हुई है, फिर भी वह आजाद है। मुझे उसपर रश्क है। जापानको यह कला सीखनेमें अपार खून बहाना पड़ा। परन्तु अन्तमें उसने वह सीख ली। हम भी आज यदि अंग्रेजोंको पशुबलके द्वारा इस देशसे भगा सकें तो संसारमें हम उनसे श्रेष्ठ और अधिक शक्तिमान् गिने जा सकते हैं, फिर भले ही धारा-सभाओंमें हम उनके समान भाषण न भी कर सकें। संसार हमको स्वतंत्र और अपना शासन खुद करनेवाला राष्ट्र स्वीकार कर लेगा।

"ये पश्चिमके राष्ट्र पशुबलके सिवा और कोई बात जानते ही नहीं। जर्मनीकी हार इसलिए नहीं हुई कि वह अपने शत्रुओंसे किसी प्रकार कम सुधरा हुआ था बल्कि वह इस कारण हारा कि पशुबलमें उसके शत्रुओंका पलड़ा भारी था। इसलिए स्वतन्त्रता पानेके लिए या तो हिन्दुस्तानको युद्ध-शास्त्रमें निपुण बन जाना चाहिए या उसे असहयोगद्वारा अनुशासन, त्याग और बलिदानको अपनाना चाहिए। युद्ध-शास्त्रकी तालीम न अंग्रेज स्वयं आपको देंगे और न अन्य प्रकारसे आपको लेने देंगे। तब आपके लिए एकमात्र मार्ग असहयोगका रह जाता है।

"कैसे आश्चर्य और साथ ही लज्जाकी बात है कि केवल एक लाख अंग्रेज पैंतीस करोड़की आबादीवाले इस विशाल देशपर अपनी सत्ता जमाये बैठे हैं। निस्सन्देह इसमें वे बलका उपयोग तो करते ही हैं, परन्तु इस बलकी अपेक्षा हजार-हजार तरकीबोंसे इसमें वे हमारा सहयोग लेकर और हमें अधिकाधिक निर्बल और पुरुषत्वहीन बनाकर ऐसा कर पा रहे हैं।

"इन धारासभाओं, अदालतों आदिके भुलावेमें हमको नहीं आना चाहिए। ये आजादीके नहीं, हमें पुरुषत्वहीन बनानेके लिए उनके हाथ काममें लाये जा रहे सूक्ष्म शस्त्र हैं। भारतको गुलाम बनाये रखनेके लिए भले-बुरे सब प्रकारके साधनोंका उपयोग करना वे जानते हैं। अपने विशाल साम्राज्यकी रक्षा और विस्तारके लिए भारतकी अरबों-खरबोंकी सम्पत्ति तथा मनुष्य-बलकी भी उन्हें जरूरत है। यह उन्हें देनेसे हमने इनकार किया कि हमारा हेतु—अर्थात् स्वराज-समानता और पौरुष—प्राप्त हुआ।

"मैं इसमें केवल अंग्रेजोंका दोष नहीं देखता। उनके स्थानपर हम होते तो हम भी शायद यही करते। धोखा और अत्याचार बलवानके नहीं, कमजोरोंके शस्त्र हैं। वे संख्यामें कमजोर हैं और हम संख्यामें अधिक होनेपर भी कमजोर हैं।

नतीजा यह है कि हम एक-दूसरेको नीचे और अधिक नीचे गिरानेमे लगे हुए है। एक-दूसरे को गिराने की यह प्रक्रिया न हमारे लिए, न अग्रेजोके लिए और न ससारके लिए लाभदायक है। अत पहला काम है, हम इस गिरावटसे अपने-आपको मुक्त कर लें। हम मुक्त हुए कि अग्रेज और ससार भी अपने-आप ठीक होते रहेंगे।

"सशस्त्र युद्धकी शिक्षा लेनेका तो सवाल ही नही है, परन्तु मैं एक कदम आगे वढकर कहना चाहता हूँ कि भारत ससारमे एक मिशन—सदेश—लेकर आया है। वह यह कि भारत ससारको वता सकता है कि आजादी विना शस्त्रोंकी सहायता के केवल आत्मशुद्धिसे ही प्राप्त की जा सकती है। और इसका उपाय है—असहयोग। यह एक ही रूपमे सभव है—अर्थात् जो सहयोग दे रहे हैं, वे उसे वापस लेना शुरू कर दे। इसके लिए सरकारी स्कूल-कालेज, अदालतो और धारा-सभाओकी त्रिविध मायाके मोहसे हमे अपने-आपको मुक्त कर लेना है। ऐसा किया कि स्वराज्य आया।

"अपने बच्चोकी शिक्षाको हम अपने हाथमे ले ले। अपने झगडे-टटे खुद ही निपटा लिया करे और कौसिलोका लालच छोड दे। इस प्रकार अपनी शक्ति वढायें और फिर सरकारी नौकरोसे कह दे कि अब अपनी नौकरियाँ छोडकर आ जायें और किसानोसे कहें कि वे सरकारको लगान देना वन्द कर दें।

"क्या अपना काम इस तरह खुद कर लेना असभव है? असहयोगका अर्थ सिवा इसके और कुछ नही कि जिन खूबसूरत परदोके पीछे सरकारका पशुबल छिपा हुआ है, उनको हटाकर उसे अपने नगे रूपमे मैदानमे लाकर खडा कर दे। उसका यह रूप प्रकट हो जानेपर वह क्षणभर भी जी नही सकेगी।

"परन्तु मैं साफ तौरपर कह देना चाहता हूँ कि जबतक ये तीन शर्तें पूरी नही होगी, सच्चा स्वराज्य असभव है।

"इस मायाका एक और अग है विदेशी चीजोका मोह। स्वदेशी धर्मका पालन हमने छोडा और हम गिरे। यदि हम आर्थिक गुलामीसे मुक्त होना चाहते हैं, तो हमे पुन स्वदेशी धर्मको अपनाना होगा। अपनी जरूरतकी चीजे, खास तौरपर अपने पहननेका कपडा हमे खुद वना लेना होगा। आज उनका नाम है हाथ-कती-बुनी खादी।

"इस सबका अर्थ है अनुशासन, स्वार्थत्याग, कष्ट-सहन, सगठन-चातुर्य, आत्मविश्वास और हिम्मत। यदि समझदार लोग इस चीजको सही तौरपर समझ लें और लोकमत वनाते हुए उसपर सच्चे दिलसे अमल करने लग जायें तो निश्चय ही स्वराज्य एक सालमे आ सकता है। परन्तु यदि समाजका नेतृत्व करनेवालोंमे ही ये चीजें नही है और न उनको अपने अन्दर लानेकी उत्सुकता है, तो सच जानिये, इस देशमे स्वराज्य कभी नही आ सकता और उस हालतमे अग्रेजोको दोष देना व्यर्थ है।"

स्कूल-कॉलेजो तथा अदालतोका समाजपर जो झूठा प्रभाव पडा हुआ था, उसे दूर करनेवाले लेख हर हफ्ते 'यग इंडिया', 'नवजीवन' और 'हिन्दी नवजीवन' मे आते रहते थे। ऐसे एक लेखमें गाधीजीने लिखा था :

"यदि इनके झूठे प्रभावसे हम प्रभावित न होते तो हमारा जीवन कही अधिक सुखी होता। अच्छी-से-अच्छी अदालतमे जाकर जरा देखिये, तो आप पायेंगे कि पैसेके लिए अथवा अपने मित्र या रिश्तेदारपर अहसान करनेके लिए लोग झूठी गवाही देते है। ऐसे लोग दोनो तरफ मिलेंगे।

"अदालतोंमे केवल यही नही होता। वे सरकारकी सत्ताका आधार बन गयी है। लोगोंमे यह मिथ्या भ्रम हो गया है कि वहाँ न्याय होता है और वे राष्ट्रकी आजादीकी प्रतीक है। परन्तु जब वे बुरी सरकारकी समर्थक बन जाती है, तब आजादीकी प्रतीक नही रह जाती। तब तो वे देशकी आत्माको कुचलनेके लिए मानव-परिवारोको बरबाद करने लग जाती है।

"फौजी शासनके दिनोंमे पजाबमे सरकारद्वारा बनायी अदालतोंमे यही हुआ। इनका सही-सही और नगा रूप वहाँ प्रकट हो गया। परन्तु जहाँ शासक-जाति और गुलाम-जातिके बीच न्याय देने का प्रश्न होता है, वहाँ तो साधारण समयमे भी सर्वत्र यही होता है। नैरोबी (केनिया) मे एक अग्रेज अफसर यदि वहांके किसी निवासीपर जुल्म करता है तो उसे कानूनके अनुसार सजा नहीं हो पाती। भारतमे भी भारतीयोका पाशविक खून करनेवाले किसी अग्रेजको कानूनमे बतायी पूरी सजा कभी मिली है ?

"कोई यह न समझे कि अग्रेजोंके स्थानपर हिन्दुस्तानी न्यायाधीश हो जायेंगे तो इससे कोई अन्तर हो जायगा। अग्रेज स्वभावतः बुरे और अन्यायी तथा हिन्दुस्तानी स्वभावत देवता नही होते। यह तो परिस्थिति उन्हें ऐसा बना देती है। फौजी शासनके दिनोंमे हिन्दुस्तानी न्यायाधीश और वकील भी काम करते थे। परन्तु वे अन्याय या अत्याचारमे अग्रेजोंसे किसी प्रकार कम नहीं थे। अमृतसरमे हिन्दुस्तानियोंने वैसे ही अत्याचार किये, जैसे जलियाँवाला बागमे अग्रेजोंने किये। अत मैं कहना चाहता हूँ कि बुराईकी जड असलमे सरकार है।

"अग्रेज कौममे मेरी लडाई नही। उसमे अनेक व्यक्ति ऐसे है जिनका मैं आज भी उतना ही आदर करता हूँ, जितना इस सरकारका यह बुरा अनुभव होनेसे पहले मैं करता था। बल्कि मैं तो कहूँगा कि श्री एण्ड्रूज और उनके जैसे अनेक ऐसे अग्रेज है, जिनको आज मैं पहलेसे भी अधिक प्यार करता हूँ। एण्ड्रूज को तो मैं अपने सगे भाईसे भी ज्यादा प्यार करता हूँ। परन्तु मान लो, कल वे ही वाइसराय बन जायें, तो वे भी मेरे आदरके पात्र नही रह जायेंगे। वे इस पदको स्वीकार कर लें तो मैं नही जानता कि वे शुद्ध रह पायेंगे, क्योंकि उन्हें उसी सरकारको चलाना होगा, जो स्वयं बुरी है और जिसकी स्थापना इसी नास्तिकतापर

हुई है कि हम हिन्दुस्तानी नीचे हैं। शैतान अपने उद्देश्योको पूरा करनेके लिए नैतिकी ही भाषा बोलता है और ऐसे ही तरीके काममे लेनेका यत्न करता है, जो नैतिक दिखाई दे।

"यह नही कि इन अदालतोमे न्याय होता ही नही। होता भी है। परन्तु जिनको न्याय मिल जाय, वे यह न भूले कि इनकी स्थापनामे शासनका मूल हेतु क्या है? वह है अपनी सत्ताको मजबूत करना। यदि ये न हो तो सरकार एक दिन भी टिक नही सकती।

"मै मानता हूँ कि मेरी असहयोगकी योजना मान लेनेपर भी, वकीलोद्वारा वकालत करना छोड देनेपर भी, अदालते तो रहेंगी ही। परन्तु तव वे सारा आदर खो बैठेंगी और आज की भाँति धोखेकी चीज नही रह जायेंगी। इसलिए जो भी वकील असहयोगमे शामिल होता है, वह उस मात्रामे अदालतोकी प्रतिष्ठाको गिरानेमे मदद करता है और उस अशमे अपनी और राष्ट्रकी सेवा करता है।"

गाधीजीने इन अदालतोके कारण जनताका जो आर्थिक शोषण होता है, उसकी तरफ भी ध्यान दिलाते हुए लिखा—"इस आर्थिक शोपणका तो किसीने कभी खयाल भी नही किया है। इनके कारण धनकी वडी वर्वादी होती है।" दक्षिण अफ्रीकाका उदाहरण देते हुए वताया कि "वहाँके वकील, जो प्राय काफी काविल होते है, यहाँके वकीलोके वरावर फीस माँगनेकी हिम्मत ही नही कर सकते। वहाँ अधिक-से-अधिक फीस पन्द्रह गिनी होती है, जव कि यहाँ तो हजारो-तक ली जाती है।

आगे लिखा कि "सचमुच जहाँ किसी वकीलकी मासिक आय पचास हजार या एक लाख हो, उसमे अवश्य कही पाप होना चाहिए। परन्तु हमारे वकील तो अग्रेजोकी नकल करनेकी कोशिश करते है। वे नही सोचते कि अग्रेज अपना देश छोडकर आते है। यहाँकी आवोहवा उनको अनुकूल नही आती। ठण्डे देशकी रहन-सहन और आदतें वे आसानीसे छोड नही पाते। उन्हे पहाडियोपर और स्वदेश वार-वार जाना पडता है। उनके वच्चोकी शिक्षा भी महँगी होती है। इन सवके कारण वे इतनी अधिक फीस लेते है। उनकी नकल हमारे वकील करने लगें तो वह वुरा दिन होगा। इनकी फीस तो मुद्दई-मुद्दालेहकी जान ले लेगी।"

१४. आरोहणका शिखर

(अहमदाबाद-कांग्रेस)

(१९२१)

१

'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम् ।'

(अर्जुन दीनता और पलायन नही जानता ।)

सन् १९२० और १९२१ का वर्ष भारतवर्षके इतिहासमे अपूर्व लोक-जागृति और उत्साहका काल था । ऐसा लग रहा था, मानो इस पुण्य पुरातन देशने नया अवतार धारण कर लिया है । नगरो और गाँवोमे उत्साह उमडा पडता था । अंग्रेजी सत्ताका भय पूरी तरहसे गायब हो गया था और कण-कणमे नया चैतन्य जाग उठा था । अहमदाबादका कांग्रेस-अधिवेशन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण था । उसका वर्णन स्वय गाधीजीने इस प्रकार किया है :

"कांग्रेसका अधिवेशन बडे हर्ष और महोत्सवका सप्ताह था । किसीको भी यह न मालूम हुआ कि स्वराज्य नही प्राप्त हुआ है । यह दिखाई देता था कि प्रत्येक मनुष्य इस बातको जानता है कि हमारा राष्ट्रीय बल किस प्रकार बढ रहा है । जिसे देखिये, उसीके चेहरेपर विश्वास और आशाके भाव झलकते हुए दिखाई देते थे । स्वागत-समितिने एक लाख मनुष्योंका समावेश होने योग्य महासभाके मण्डप बनाये थे । परन्तु आगत सज्जनोंकी सख्याका अनुमान कम-से-कम २ लाख-तक जा पहुँचता है । यदि कुछ झूठी अफवाहें न उठायी गयी होती, जिनसे लोग डर गये, तो दर्शकोंकी सख्या आश्चर्य करने योग्य बढ जाती । नेताओंके तथा कार्यकर्ताओंके कारावास और उनके साहसने लोगोंके हृदयोमे एक नयी आशा और नयी उमग पैदा कर दी है । इसी भावनाकी हवा बह रही थी कि लोगोको यह मालूम हो गया कि आजादी प्राप्त करनेकी तथा अपनी आजादीमे रुकावट डालनेवाली बडी-से-बडी ताकतके टुकडे-टुकडे कर डालनेकी रामबाण दवा बस कष्ट-सहन ही है ।

"खुद कांग्रेसका दृश्य भी प्रभावशाली था । देशबन्धु चित्तरजन दासकी जगहपर हकीम अजमलखाँ साहबने सभापतिके आदर्श और धैर्यको खूब निबाहा । स्वागत-समितिके सभापति श्री वल्लभभाई पटेलने अपना भाषण हिन्दीमे पढा । वह इतना छोटा था कि कोई १५ मिनटमे खतम हो गया ।

"सभापति महोदयका भाषण भी करीब २० मिनटमे पूरा हो गया था ।

काग्रेसमे प्रत्येक वक्ताने अपने प्रतिपाद्य विषयपर ही भाषण किया। वे अपने विषयमे इधर-उधर भटके नही। एक भी मिनट व्यर्थके कार्योमे नही लगाया गया।

"काग्रेसका प्रदर्शन-विभाग भी कम प्रभावशाली नही था। खुद मण्डप ही बडा भव्य और शानदार था। वह चारो ओर खादीसे आच्छादित था।

"काग्रेसके मडपके पीछे एक बडा भारी मडप और था, जिसमे काग्रेसके वक्ता आ-आकर महासभाकी कार्रवाईका हाल उन हजारो नर-नारियोको सुनाया करते थे, जो द्रव्य अथवा अन्य किसी कारण काग्रेसके मडपमे न जा पाते थे।

"खादी-नगर, उसके पास का मुस्लिम-नगर और उसके पडोस हीमें खिलाफत मडप—ये हिन्दू-मुस्लिम-एकताके सबसे बडे उदाहरण थे तथा खादीकी लोक-प्रियताके प्रत्यक्ष प्रमाण थे। स्वागत-समितिने सिर्फ गुजरातमे ही बनी खादीसे काम लिया है। साढे तीन लाख रुपयेकी कुल खादी मँगायी गयी और उसके उपयोग-के लिए पचास हजार रुपया खर्च किया गया। प्रतिनिधियो और दर्शकोके तमाम डेरोपर तथा एक बडे भारी रसोई-घर और सामान-घरपर खादी ही खादी लगी हुई थी। कोई दो हजार हिन्दू-मुसलमान स्वयसेवक थे। कुछ पारसी और ईसाई भी थे। खादी-नगर तथा मुस्लिम-नगरमे ठहरनेवाले तमाम मेहमानोके सत्कार और प्रबन्धका भार इन्हीपर था।

"मैं महिला-परिषद्का उल्लेख किये विना नही रह सकता, जिसकी कि सभानेत्री अली-भाइयोकी वीर-माता 'बी-अम्मा' थी। उसका दृश्य देखकर दिलमे खलबली मच जाती थी। मै यह नही कहता कि वहाँ जो कुछ हो रहा था, उसका रहस्य सभी बहनोकी समझमे आ गया होगा। लेकिन मै यह जरूर कहता हूं कि वे इतना तो अपने दिलमे जानती थी कि वहाँ क्या बात हो रही है। वे जानती थी कि उनकी इस सभाने भारतकी उद्देश्य-पूर्तिमे बडी सहायता पहुँचायी है और उन्हें मालूम था कि हमें भी अब पुरुषोके साथ-ही-साथ अपनी कृतिका चमत्कार दिखाना है।

"यहांतक तो मैने काग्रेसके चित्रका अच्छा पहलू दिखाया। परन्तु अन्य सभी चित्रोकी तरह इस चित्रमे भी तरह-तरहकी छायाएँ दिखायी देती है। हाँ, लोगोमे उत्साह तो प्रबल था, पर प्रेक्षक लोग कभी-कभी नियमोका भग भी कर देते थे।

"आत्मसयम अर्थात् आत्मशासन स्वराज्यकी कुजी है। प्रतिनिधिभाई भी नियमोका पालन करनेमे शिष्टाचारका ध्यान नही रखते थे।

"जब मैं इस बुरे दृश्यका ख्याल करता हूँ तो मेरा कलेजा टूक-टूक हो जाता है। हमे अपने ध्येयकी पहचान करनेमे क्यो देर हो रही है, यह मै जानता हूँ। परन्तु जब मै उसके अच्छे दृश्यकी ओर देखता हूँ तो चित्र इतना मनोहर मालूम होता है कि इन छायाओसे उसकी सुन्दरता स्थूल रूपसे कम नही हो सकती। पर साथ ही इन बातोको भूल जाना तथा चौकन्नेपनमे गफलत करना ठीक नही है।

हमारे आंदोलनकी सफलता अकेले हमारे नैतिक बलके विकासपर ही अवलम्बित है। जिस प्रकार संगीतमें एक सुरके बिगड़ जानेसे सारा मजा किरकिरा हो जाता है, उसी प्रकार हमारे इस आन्दोलनके जैसे महान् आंदोलनको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिए एक ही आदमी बस है।* हमें याद रखना चाहिए कि हमारी सब बातोंका आधार है सत्य और अहिंसा। दूसरे लोग, जिन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा नहीं की है, वे चाहे जो किया करें, पर यदि हम अपनी ही विचारपूर्वक की गयी प्रतिज्ञाओंको तोड़ने लगें तो इससे सर्वनाश हुए बिना न रहेगा। इसलिए, जैसा कि मैं अक्सर कहा करता हूँ, कांग्रेसके संगठनके अनुसार कामिल तौरपर काम करनेसे ही स्वराज्यकी स्थापना अपने-आप हो जायगी।"

अधिवेशनका प्रारम्भ मातृवन्दना—अर्थात् 'वन्दे मातरम्' के गीतसे किया गया। देशके महान् संगीताचार्य स्व० विष्णु दिगम्बर पलुस्करने अपने मेघ-गंभीर स्वरमें यह गीत गाया। इसके बाद जैसे कि स्वयं गांधीजीने ऊपर कहा है, स्वागता-ध्यक्ष और स्थानापन्न अध्यक्ष हकीम अजमलखाँके भाषण हुए। वास्तवमें इस अधिवेशनके अध्यक्ष देशबंधु चित्तरंजन दास थे, परन्तु वे पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। फिर भी उन्होंने अपना भाषण तैयार कर लिया था और वह अधिवेशनमें पहुँच भी गया था। भारत-कोकिला श्रीमती सरोजिनीदेवीने यह भाषण पढ़कर सुनाया। इसमें देशबन्धुने भारतीय राष्ट्रधर्मका ठीक और व्यापक रूपसे सिंहावलोकन किया। संस्कृतिमें उसकी जड़ है, इसलिए उन्होंने कहा—"पेश्तर इसके कि हमारी संस्कृति पश्चिमी सभ्यताको आत्मसात् करनेको तैयार हो, उसे पहले अपने-आपको पहचान लेना चाहिए।" इसके बाद उन्होंने 'गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया ऐक्ट' पर विचार किया और कहा—"इस कानूनको सरकारके साथ सहयोग करनेकी बुनियादपर स्वीकार करनेकी सिफारिश मैं नहीं कर सकता। मैं इज्जतको खोकर शान्ति खरीदना नहीं चाहता। जबतक इस कानूनका यह प्राक्कथन कायम है और जबतक अपने घरका इंतजाम हम-आप करें, अपने स्वतंत्र अस्तित्वका विकास करें, और अपने भाग्यका निर्माण आप करें, इस अधि-

---

* यहाँ गांधीजीने जिस एक घटनाकी ओर संकेत किया है, वह इस प्रकार है 'बड़े' नामके एक महाराष्ट्रीय प्रतिनिधि थे, जो बड़े गोभक्त और गांधीजीके भी भक्त थे। वे किसी प्रस्ताव-पर एक ऐसा संशोधन लानेपर अड़ गये, जिसे गांधीजी स्वीकार नहीं कर सकते थे। गांधीजीके समझाने और अध्यक्षके बार-बार मना करनेपर भी वे न तो बैठे, और न सभास्थान छोड़ा। तब गांधीजीने कहा कि सारा पंडाल खाली कर दो। उसी समय पंडाल खाली हो गया और अकेले श्री बड़े वहाँ रह गये। इस तरह गांधीजीने शांतिमय असहयोगका अनुपम उदाहरण पेश किया।

कारको तस्लीम नही कर लिया जाता, मै सुलहकी किसी शर्तपर विचार करनेके लिए तैयार नही हूँ।" देशबन्धुके इस शानदार भाषणसे अहमदाबादके भव्य प्रस्तावोको देखनेकी सही दृष्टि मिल जाती है।

१५. अहमदाबाद-कांग्रेस

(मुख्य प्रस्ताव और भाषण)

२

'रामो द्विर्नाभिभाषते।'

(राम अपनी बात दो दफा नही कहता।)

कांग्रेसका मुख्य प्रस्ताव, कोरा प्रस्ताव नही, स्वराज्यका शखनाद था। वह असहयोग, उसके सिद्धान्त और कार्यक्रमपर एक खासा निबन्ध ही है। उसे पेश करते समय खुद गाधीजीने कहा था कि "इस प्रस्तावको अग्रेजी और हिन्दीमे बारीकीसे पढनेमे मुझे पैंतीस मिनट लगे थे।" प्रस्तावका आशय इस प्रकार है—

"चूंकि कांग्रेसके पिछले अधिवेशनके समयसे भारतवर्षके लोगोने प्रत्यक्ष अनुभवसे यह जान लिया है कि शातिमय असहयोगके अवलम्बन करनेके बदौलत देशने निर्भयता, आत्मत्याग और आत्मसम्मानके सम्बन्धमे बहुत प्रगति की है, और चूंकि इस आन्दोलनसे सरकारकी शानको बहुत धक्का पहुँचा है और चूंकि समष्टि रूपसे समस्त देश स्वराज्यकी ओर तेजीके साथ आगे बढ रहा है, यह कांग्रेस कलकत्तेके विशेष अधिवेशनमे गृहीत और नागपुरमे दुबारा स्वीकृत प्रस्तावको स्वीकार करती है और अपना यह दृढ निश्चय प्रकट करती है कि जबतक पजाब और खिलाफतके दु खोका निवारण होकर स्वराज्यकी स्थापना न हो तथा बेजबाबदेह सस्थाके हाथोसे निकलकर भारतीय सरकारका कब्जा भारतके लोगोके हाथोमे न आ जाय, तबतक शातिमय असहयोगका कार्यक्रम, प्रत्येक प्रात अपनी-अपनी तजवीजके अनुसार, और भी अधिक जोरके साथ जारी रखे।

"और चूंकि बडे लाटसाहबने अपने हालके भाषणोमे जो धमकियाँ दी है, उनके कारण, तथा उनके फलस्वरूप भारत-सरकारने भिन्न-भिन्न प्रान्तोमे स्वयसेवक दलोको छिन्न-भिन्न करके, तथा सार्वजनिक सभाओ और यहाँतक कि कमेटीकी सभाओको भी गैरकायदा घोषित करके तथा अत्याचारपूर्ण तरीकेसे जबरदस्ती बन्द करके, इसी प्रकार कितने ही प्रान्तोंकी कांग्रेसके बहुतेरे कार्यकर्ताओको गिरफ्तार करके जो दमन शुरू किया है उसके कारण, और चूंकि इस दमनका स्पष्ट उद्देश्य यह है कि कांग्रेस और खिलाफतकी हलचलोका दम बन्द कर दिया जाय और जनता उनकी सहायतासे वचित रखी जाय, यह सभा निश्चय करती है कि जिस कदर आवश्यकता हो, कांग्रेसके दूसरे तमाम काम बन्द रख

जायें और सब लोगोंसे अपील करती है कि वे पिछली २३ नवम्बरकी बम्बईकी कार्य-समितिके प्रस्तावके अनुसार सारे देशमें संगठित हो रही स्वयंसेवक-सेनामें भरती होकर शांतिपूर्वक तथा बिना किसी तरहकी धूमधामके अपनेको गिरफ्तारीके लिए अर्पण कर दें।

"इस कांग्रेसका यह भी मत है कि किसी व्यक्ति अथवा संस्थाके द्वारा होनेवाले उसकी सत्ताके स्वेच्छाचार और अत्याचारपूर्ण तथा पौरुषहीन कर देनेवाले उपयोग-को रोकनेके लिए दूसरे तमाम उपायोंके आजमा लिये जानेके बाद सशस्त्र बलवेके बएवज सविनय कानून-भंग ही एकमात्र सभ्यतापूर्ण और अगम्भीर इलाज है। इसलिए कांग्रेस उन समस्त कार्यकर्ताओंको, जो शांतिमय उपायोंको मानते हैं और जिन्हें यह इत्मीनान है कि इस वर्तमान सरकारको भारतवासियोंके प्रति अपनी इस पूर्ण बेजवाबदेह स्थितिसे स्थानच्युत करनेके लिए किसी-न-किसी प्रकारके आत्मत्यागके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है, यह सलाह देती है कि वे व्यक्तिगत सविनय-भंगको ग्रहण करें और जब जन-समूह अहिंसाकी पूरी तालीम पा चुके और दिल्लीकी पिछली कांग्रेस महासमितिकी बतायी दूसरी शर्तोंका पालन करनेके योग्य हो जाय, तब सामुदायिक कानून-भंग भी शुरू कर दें।

"कांग्रेसके कार्यकर्ताओंके एक बड़े भागकी गिरफ्तारीके सिरपर मँडरानेके कारण यह महासभा, अपने मामूली तन्त्रको जब कभी हो सके, तब मामूली तौरपर उसका उपयोग करनेके लिए अखंड जारी रखते हुए महात्मा गांधीको, दूसरी सूचना निकलनेतक, अपना मुख्तार-आम मुकर्रर करती है और महासमितिके तमाम अख्त्यारात उन्हें देती है। इसमें कांग्रेसके, महासमितिके अथवा कार्य-समितिके विशेष अधिवेशन करानेके अधिकारका भी समावेश किया जाता है। इन अधिकारोंका उपयोग वे महासमितिकी किन्हीं दो बैठकोंके बीचकी अवधि में ही कर सकते हैं। किसी आकस्मिक आवश्यकताके समय अपने स्थानपर किसीको मुख्तार-आम मुकर्रर करनेका भी अधिकार कांग्रेस उन्हें देती है।

"कांग्रेस ऐसे उत्तराधिकारी मुख्तार-आमको तथा उनके पीछे जो-जो उत्तरा-धिकारी मुकर्रर होते जायँग, उन तमाम मुख्तार-आमोंको पूर्वोक्त सब अधिकार देती है।

"पर इसमें शर्त यह है कि इस प्रस्तावकी किसी बातसे महात्मा गांधीको अथवा किसी भी पूर्वोक्त उत्तराधिकारीको यह अधिकार नहीं है कि वे भारत-सरकार अथवा ब्रिटिश सरकारसे, महासमितिकी मंजूरी लिये बिना, अथवा उस मंजूरी-को उसके लिए विशेषरूपमें किये गये कांग्रेसके अधिवेशनमें पास कराये बिना, किसी तरहकी सुलह करें, और एक शर्त यह भी है कि जबतक कांग्रेसकी आज्ञा पहले न प्राप्त कर ली जाय, महात्मा गांधी या उनके उत्तराधिकारी मुख्तार-आम कांग्रेसके ध्येयको न बदलें।"

प्रस्तावमे यह भी बता दिया गया कि सविनय-भग या सत्याग्रहके लिए जो स्वयसेवक अपने-आपको प्रस्तुत करें, उनसे क्या-क्या अपेक्षा रखी जाय और वे किन नियमोका पालन करें।

इस प्रस्तावको पेश करते हुए गाधीजीने कहा :

"पन्द्रह मासके निरन्तर उद्योगके बाद भी यदि आप, प्रतिनिधि-भाइयो, अपना खयाल न बना सके हो तो फिर मैं समझता हूँ कि अपने दो घण्टेके भाषणमें भी मैं आपको विश्वास नही दिला सकता।

"सरकारकी वर्तमान दमन-नीतिको देखकर तो आपको इसी नतीजेपर आना होगा कि किसी भी आत्मसम्मान-प्रिय राष्ट्रकी ओरसे वाइसरायको तथा उनकी दमन-नीतिको वैसा ही जवाब दिया जा सकता है, जैसा कि इस प्रस्तावके द्वारा दिया जा रहा है।

"यह प्रस्ताव इस बातको सूचित करता है कि हम अब निराधार और आश्रित अवस्थाको पार कर गये है। जनताने एक ईश्वरको छोडकर दूसरे किसीकी सहायताके बिना अपने ध्येयको सिद्ध करनेका सकल्प किया है। इस प्रस्तावमे अपने हक स्थापित करनेका, दुनियामे ऊँचा सिर करके चलनेका राष्ट्रका दृढ निश्चय और उसे पूरा करानेके लिए अडिग धैर्य दिखाई देता है। यह प्रस्ताव सरकारसे कहता है कि तुमसे जितना हो सके उतना हमको सताओ, उससे कुछ भी होना-जाना नही है। एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम्हे लाचार होकर पश्चात्ताप करना पडेगा।

"यदि सरकारकी नीयत इन्साफ करनेकी हो, यदि लॉर्ड रीडिंग न्याय करना चाहते हो, यदि वे यह सब करना चाहते हो तो मैं उन्हें ईश्वरको साक्षी रखकर सच्चे दिलसे कहता हूँ कि उनके लिए इस प्रस्तावमें दरवाजा खुला है। परन्तु यदि उनकी नीयत साफ न हो तो दरवाजा बन्द है। इसमे इस बातकी गुजाइश है कि हम सब मिलकर सम्मेलन कर सके और उसमे मैं शामिल हो सकूँ। परन्तु यह उसी दशामे, जब कि उसमे बराबरीके हकसे बैठनेका अवसर हो, हमें भिखारी बनकर वहाँ न जाना पडे। हम मेहरबानीके तौरपर कुछ भी नहीं चाहते। फिर हमारे एक बडे भागको चाहे बलिवेदी पर चढ जाना पडे तो परवाह नही। परन्तु यदि उनकी नीयत अच्छी हो तो मैं राष्ट्रकी ओरसे उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि इस प्रस्तावमें उनके लिए दरवाजा खुला हुआ है।

"इस प्रस्तावके द्वारा हम जाहिल होकर युद्ध नही पुकार रहे हैं, पर जो सत्ता जहालतपर तुल गयी है, उसे हम जरूर ललकार रहे हैं। जो सत्ता अपनी रक्षा करनेके लिए विचार-स्वातन्त्र्य तथा सभा-समाजके सगठनके स्वातन्त्र्यको पैरोतले रौद डालना चाहती है—राष्ट्रके इन दो फेफडोको ही दबाकर उसे स्वतन्त्रताकी प्राणवायुसे वचित रखती है, उसे मैं आपकी तरफसे नम्र, परन्तु अटल आह्वान करता हूँ। यदि कोई ऐसी सत्ता इस देशमे हो तो मैं उसे आपकी तरफसे यह कहता

चाहता हूँ कि या तो वह सत्ता मटियामेट हो जायगी अथवा इन महान् कार्यको करते हुए भारतका प्रत्येक स्त्री-पुरुष तबतक दम न लेगा जबतक इस पृथ्वी-पटलसे वह नेस्तनाबूद न हो जायगी।"

प्रस्तावका समर्थन करते हुए श्री विट्ठलभाई पटेलने कहा—"मैं केवल इस प्रस्तावका ही समर्थन नही करता हूँ, बल्कि गाधीजीके भाषणके एक-एक अक्षर का समर्थन करता हूँ। वाइसराय लॉर्ड रीडिंग, जो शुद्ध न्यायके हामी बनकर भारतमें आये हैं, थोडे ही दिन पहले कलकत्तामे कह चुके हैं कि स्वराज्य तो सिर्फ दो ही उपायोंसे मिल सकता है—एक तलवार और दूसरा दान। हमारा यह प्रस्ताव उसका उत्तरस्वरूप है। इन दोके अलावा तीसरा रास्ता भी है और वह है सविनय कानून-भगका।

"अब इस जगहसे, मैं अपनी पूरी जिम्मेवारीको जानते हुए, सरकारसे पूछता हूँ कि बताइये, आपके और हमारे बीचमें अब बाधा कौन-सी है? हम स्वतन्त्रता—स्वराज्य चाहते हैं। आपने अनेक अवसरोंपर स्वराज्य देनेके अभिवचन दिये हैं। फर्क इतना ही है कि आप अपने वचनोंका पालन नही करते। इसलिए अब आप-पर हमें विश्वास नही रहा। यदि सवाल केवल समय का ही हो, यदि आप पाँच-दस वर्ष बाद स्वराज्य देना चाहते हो, तो इस वर्तमान दमन-नीतिके लिए जगह कहाँ है? यदि आप इस आदोलनको दबानेकी कोशिश करेंगे, तो इसका फल आपको ही भोगना पडेगा। हमारे नेताओको जेल मे ठूँस देनेके बाद यदि दगा-फसाद उठ खडा हो तो इसका जिम्मेदार कौन है? आपको हिन्दुस्तानी फौज और पुलिस-पर भरोसा नहीं और गोरा तो यहाँ फी—दस लाख आदमियोमे एक है, अतएव हमारे शान्तिमय रहनेपर भी उसे रातभर जागरण करना पडता है और उसके लिए हम तीस करोड लोगोंको जागरण करना पडता है।"

श्रीमती सरोजिनी नायडूने भी प्रस्तावका समर्थन करते हुए कहा :

"मेरे लिए ऐसा कहना शायद धृष्टता होगी, पर तो भी मैं इस धृष्टताके आरोपको सिर चढाकर कहती हूँ कि मैं आज किसी प्रान्तकी, किसी पन्थकी, अथवा स्त्री-जातिकी प्रतिनिधिकी हैसियतसे बोलनेके लिए नही खडी हुई हूँ। आज मैं नवीन भारतके प्राणकी हैसियतसे बोलना चाहती हूँ। भारत आज स्वतन्त्रताके मार्गपर कूच कर रहा है। दुनियामें ऐसी कोई शक्ति नही, जो उसकी गति को अब रोक दे। अपने पति, अपने पुत्र तथा अपने पिताको जेलमे भेजकर जब निर्बल देहवाली स्त्रियाँ इस सभामे उनके स्थानपर बैठने लगी हैं, तब हमें समझना चाहिए कि भारतमे अब एक नवीन ही चैतन्य प्रकट हुआ है। प्रभातमे यदि सूर्यके उदय होनेके विषयमें सन्देह रहता हो, तो यह सन्देह हो सकता है कि भारतके लोग स्वतन्त्रताके लिए किसी भी तरहके बलिदानसे मुँह मोडेंगे। भगवती भागीरथीका प्रवाह यदि रुक जाय तो भारतकी स्त्रियाँ भारतमाताके

लिए कुरबानी करते हुए रुके। मध्यरात्रिमे यदि तारागण अपना जगमगाना बन्द कर दें तो भारतवर्षके नवयुवक देशके लिए स्वयसेवक सेनामें भरती होते हुए रुकें। १७ नवम्बरको बम्बईमें जो उपद्रव हुआ, वह किसकी वजहसे रुका ? यह न समझिये कि एक महात्माके अपनी मढियामें बैठकर उपवास करनेसे वह रुका होगा। यह तो हमारे नौजवान स्वयसेवकोंके अपूर्व परिश्रमका फल था। आस-पास खूनकी बौछारें उड रही थी। आगकी लपटें आसमानमें उठ रही थी। उसमें उन्होंने अपनी जानोको जोखिममें डालकर जो काम किया, उसका वह परिणाम था। जिस देशमें ऐसा नवजीवन प्रकट हो रहा है, उसको अपने विजय-के पथमें कूच करनेसे रोकनेवाला ससारमें कोई नही।"

अधिवेशनमे और भी प्रस्ताव हुए। परन्तु इस अधिवेशनमें सत्याग्रह तथा सविनय अवज्ञाके उपयोगपर गाधीजीने सावधानीके रूपमें जो हिदायतें दी वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। कार्यकर्ताओंमे भी बहुत उत्सुकता थी। वे जानेके लिए अधीर नही थे। उनपर जो महान् जिम्मेदारी आ रही थी, उसे वे पूरी तरह समझ लेना चाहते थे। गाधीजीने उनके निवासोंपर जाकर सबकी शकाओका समाधान किया। सविनय अवज्ञाके बारेमें उन्होने कहा .

"हमें सविनय कानून-भगमे केवल कानून-भगका ही खयाल नहीं करना चाहिए। यह एक ऐसा शस्त्र है, जिसका उपयोग हमे बहुत सँभलकर करना चाहिए। जब आदमी किसी पौधेकी फालतू डालोको काटने लगता है तो उसे इस बातका खास तौरपर ध्यान रखना चाहिए कि उसकी कैंची या कुल्हाडी उसकी जडको ही न काट दे, जिसकी रक्षाके लिए वह इस अटालेको काटने जा रहा था। सविनय कानून-भगका प्रयोग केवल उसी दशामें अच्छा, आवश्यक और अक्सीर होगा, जब हम मनुष्यकी उन्नतिके दूसरे तमाम नियमोंके पालनपर अटल और दृढ रहे। अतएव हमें 'कानून-भग'की बनिस्वत उसके विशेषण—'सविनय'—पर पूरा-पूरा जोर देना चाहिए। विनय, नियमबद्धता, विवेक और अहिंसाके बिना 'कानून-भग' करनेसे सिवा सर्वनाशके और कुछ नही हो सकता। प्रेमके साथ किया गया कानून-भग प्राणदायी और जीवनवर्द्धक है। सविनय कानून-भग तो उन्नतिका बढिया लक्षण है।"

१६. क्यासे क्या हो गया !

(१९२२)

अहमदाबाद-काग्रेसकी सफलताके फलस्वरूप गाधीजीने यह मान लिया कि त्रिविध कार्यक्रमकी पूर्ति जिन तेजीसे हुई और हो रही थी, उस आधारपर देश पूर्ण असहयोग और वहिष्कारके लिए तैयार है। असहयोग और वहिष्कारमे कोई फर्क नहीं है। असहयोगका ही एक विशेष कार्यक्रम वहिष्कार है। इसलिए उन्होने अहमदावाद-काग्रेसके बाद ही बारडोलीमे हुई कार्य-समितिकी बैठकमे एक सालमे स्वराज्य प्राप्त करनेका प्रस्ताव पास करा लिया।

लोगोके मनमे देशकी तरह-तरहकी भीतरी कमजोरियोको देखकर शकाएँ तो थीं, परन्तु गाधीजीके चमत्कारी प्रभावने और उनकी दलीलोने, उनके आत्म-विश्वास और सूझबूझने, सजीवनीका काम किया। लोगोमे उत्साह छा गया और देशकी स्वतत्रताके लिए सर्वस्व बलिदान करनेकी, सब-कुछ बलिवेदीपर चढानेकी उत्कठा लहरे मारने लगी।

५ फरवरी १९२२ को युक्तप्रान्तमे गोरखपुरके निकट चौरीचौरामे जो हत्याकाण्ड हुआ, उसकी खबर लगते ही गाधीजीको बडा आघात लगा। उनका सारा स्वप्न धूलमे मिल गया और वे समझ गये कि "देश अहिसात्मक असहयोगके लिए पूरी तरह तैयार है—यह माननेमे उनसे बडी भूल हुई। उन्होने तुरन्त एक सालवाली नोटिस वापस ली, सत्याग्रह-आदोलन स्थगित किया और गलत अनुमान लगाने या जनताकी अहिसा-शक्तिपर अति विश्वास कर लेनेकी अपनी भूलपर फिर ५ दिनका उपवास किया। कहाँ रामके राज्याभिषेककी तैयारी—कहाँ उन्हे वनवास मिल गया !

१२ फरवरी १९२२ को बारडोलीमें काग्रेसकी कार्य-समितिकी बैठक हुई, जिसमे इन घटनाओंके कारण सामूहिक सत्याग्रह आरभ करनेका विचार छोड दिया गया। एक ऐसे समयमे जब कि सत्याग्रहकी दिशामे हम आगे बढ़ रहे थे और मोर्चा जम रहा था, एकाएक सघर्ष बन्द कर देनेसे बहुतसे कार्यकर्ताओ और नेताओको निराशा हुई, कुछको क्रोध भी आया। कुछ समयके लिए सत्याग्रह बन्द हो गया और असहयोग भी समाप्त हो गया।

प्रश्न किये जाने लगे कि एक दूरके गाँव और अनजान स्थानके उत्तेजित किसानोकी भीडके कारण स्वतत्रता-सग्राम क्यो बन्द किया जाय ? यदि एक आकस्मिक घटनाका अनिवार्य परिणाम ऐसा होना था, तो निश्चय ही हमारे अहिसात्मक सग्रामकी योजना और विधिमे कोई कमी थी। लोगोको ऐसा लगता था कि इस प्रकारकी अनुचित घटनाओकी पुनरावृत्ति न होने देनेकी गारटी करना

असम्भव है और अहिंसा-सिद्धान्तकी बहुत तालीम देनेके बाद भी, क्या पुलिस-द्वारा अतिशय उत्तेजित किये जानेपर, सब लोग पूरी तरह शान्त रह सकेंगे ? लोग निराशामे कहते कि यदि अहिंसात्मक प्रणालीकी एकमात्र शर्त यही है, तो इसमें सन्देह नही कि वह सदा असफल ही रहेगी।

इधर पडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतरायने जेलके भीतरसे लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होने गाधीजीको किसी एक स्थानके पापके कारण सारे देशको दण्ड देनेके लिए आडे हाथो लिया। दिल्लीमे काग्रेस-महासमितिकी जब बाकायदा बैठक हुई तो गाधीजीपर चारो ओरसे बौछारें पडने लगी। आन्दोलनसे पीछे हटने और बारडोलीके निर्णयोपर उनकी बुरी तरह खबर ली गयी। बगाल और महाराष्ट्र तो गाधीजीपर टूट ही पडे। व्यक्तिगत सत्याग्रह क्यो न जारी रखा जाय ? चाहे कुछ भी हो, बगाल तो चौकीदारी टैक्स देनेसे रहा। बाबू हरदयाल नाग जैसे गाधीभक्तने भी बगावतका झण्डा बुलन्द कर दिया। सत्याग्रही खद्दर क्यो पहनें ? बारडोलीके निर्णयोकी एक-एक सतरकी कड़ी आलोचना की गयी।

महासमितिकी बैठकमे डॉ० मुजेने गाधीजीकी निन्दाका प्रस्ताव पेश किया। कुछ सज्जनोने भाषणोद्वारा प्रस्तावका समर्थन भी किया। पर राय लेनेके वक्त केवल उन्ही सज्जनोने प्रस्तावके पक्षमे मत दिय, जो गाधीजीके विरुद्ध बोले थे। गाधीजीने उस प्रस्तावके विरोधमे किसीको बोलनेकी अनुमति न दी।

तूफान आया और निकल गया। गाधीजी उसी प्रकार पर्वतकी भाँति अचल रहे। उन्होने अपने एक लेखमे लिखा :

"मैं स्वप्नदर्शी नही हूँ। मैं एक व्यावहारिक आदर्शवादी होनेका दावा करता हूँ। अहिंसाका धर्म केवल ऋषियो और महात्माओके लिए नही, वह जनसाधारणके लिए भी है। जिस तरहसे हिंसा पशुओका जीवन-धर्म है, उसी तरहसे अहिंसा हम मानवोका। पशुकी आत्मा सुप्त पडी रहती है और पशु शारीरिक बलके अतिरिक्त दूसरा कोई नियम नही जानता। मनुष्यके लिए एक उच्च नियम—आत्मिक शक्तिके प्रति आज्ञाकारिता—आवश्यक है। इसलिए मैंने भारतके सामने आत्मत्यागका पुराना सिद्धान्त रखनेका साहस किया है।

"सत्याग्रह और उसकी शाखाएँ, असहयोग, सविनय अवज्ञा और कुछ नही, कष्ट-सहनके नये नाम है। जिन ऋषियोने हिंसाके बीच अहिंसाके सिद्धान्तका पता लगाया, वे न्यूटनसे भी अधिक प्रतिभा-सम्पन्न थे। वे वेलिंगटनसे भी बड योद्धा थे। शस्त्रोंके प्रयोगको स्वय जानकर भी उन्होंने उनकी निरर्थकताको समझा और इस थके हुए ससारको सिखाया कि मुक्ति हिंसाके द्वारा नही, बल्कि अहिंसाके द्वारा ही मिल सकती है।

"गतिमान् अवस्थामे अहिंसाका अर्थ स्वेच्छासे खुशीके साथ उठाया गया कष्ट-सहन है। उसका अर्थ दुष्टके सामने नम्रतापूर्वक घुटने टेकना नही, बल्कि

चारीकी इच्छाके विरुद्ध तन-मनसे अपनी सारी शक्ति लगा देना है। जीवनके इस नियमके अनुसार कार्य करते हुए अकेला एक व्यक्ति अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्माकी रक्षाके लिए एक अन्यायपूर्ण साम्राज्यकी सपूर्ण शक्तिका सामना कर सकता है और उस साम्राज्यके पतन या पुनरुद्धारकी नीव रख सकता है।"

दिल्लीकी इस बैठकके समाचार अखबारोमे पढकर हमको बडा दु ख हुआ। इसलिए जब गाधीजी दिल्लीसे लौटे, तो मै उनसे मिला और अपना दुखडा प्रकट किया कि बोलनेवालोने काग्रेस-महासमितिमे मर्यादा छोडकर आपको बुरी तरह लथेडा। पर उनका जवाब सुनकर मै दग रह गया। उनकी परखकी कसौटी कुछ दूसरी ही थी। बोले—"प्रतिनिधियोने मेरा विरोध किया, इससे तुमको तो दु ख हुआ, परन्तु मुझे प्रसन्नता हुई।"

मैने चौंककर पूछा—"इसमे प्रसन्नताकी क्या बात हुई ?" तो कहा—"मुझे उनके विरोधमें देशकी निर्भयताका दर्शन हुआ। इस समय मै भारतमें सबसे अधिक मान्य व्यक्ति हूँ। मतभेद रखते हुए भी विरोधी भी मेरा आदर करते है। ऐसे व्यक्तिको मुँहपर बुरा-भला कहनेका साहस इस देशके जिम्मेदार प्रति-निधियोमें है, यह बहुत बडी बात है। जो लोग मुझसे नही डरे, वे अब दुनियामे किसीके सामने अपने मनकी बात साफ-साफ कहने मे कभी नही हिचकेगे। यह छोटी बात नही है। मुझे उसकी खुशी है। परन्तु मुझे एक दूसरी बातसे दु ख हुआ। जहाँ उन्होने भाषणमे मेरी कटु आलोचना की, वहाँ फिर मत मेरे ही पक्षमे दिये। इससे मै यह समझ नही पाया कि इनमें कौन सचमुच मेरे पक्षमे है और कौन मेरे विरोधमें है।"

मैने कहा—"बापूजी, ऐसा मालूम होता है, लोगोको अभी इस बातपर विश्वास ही नही हुआ है कि आप सचमुच अहिंसाको हृदयसे चाहते है। शायद वे मानते है कि 'गाधी बडा चालाक आदमी है, वह अहिंसाकी आडमे अपनी लडाईकी तैयारी कर रहा है।' इसलिए अच्छा हो कि आप सारे भारतमे घूमकर लोगोको अपनी अहिंसाका विश्वास दिलायें।"

बापूने कहा—"मेरे एक बार भारतमे चक्कर लगा देनेसे काम नही बनेगा। मै एक-दो चक्कर लगा भी आया, तो वापस लोगोको जो उनके निकटके नेता है, उलटा-पुलटा समझा सकते है। अत पहले मुझे जगह-जगहके स्थानीय नेताओको ही अहिंसाका निश्चय कराना होगा। केवल काग्रेस-महासमितिके भाषणोसे उनको यह समझाया नही जा सकता।"

मैने कहा—"बापूजी, यह काम तो बडा कठिन है।"

बापूजी बोले—"हाँ, बहुत कठिन है। पर यही तो मसाला है, जिससे हमको भारतका भव्य भवन खडा करना है। अब कारीगरकी तारीफ इसीमें है कि इसी सामग्रीको लेकर भारतका ऐसा भवन खडा कर दे।"

गुजरात-विद्यापीठकी स्थापनाके समय गाधीजीने कहा था :

"मैं मानता हूँ कि जहाँ नेता योग्य हो, वहाँ सिपाही मिल ही जाते हैं। अपने औजार कितने ही मोटे हो, परन्तु बढई उनके साथ झगडा नही करता। वह तो मोटे-से-मोट औजारोको अपने कामके लायक वना लेगा। उसी प्रकार मुखिया भी सचमुच कारीगर होगा, तो जैसी भी सामग्री मिल जायगी, उसीसे, देशकी मिट्टीसे सोना पैदा कर लेगा।"

और सचमुच गाधीजीने भारतमे यही चमत्कार करके दिखा भी दिया।

अमन्त्रं अक्षरं नास्ति
नास्ति मूलमनौषधम् ।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति
योजकस्तत्र दुर्लभः ॥

कौन कह सकता है कि गाधीजी ऐसे ही दुर्लभ 'योजक' नही थे ?

१७. पहली पवित्र आहुति

(१९२२)

'प्रभो, इन्हें माफ करो, ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।'

—ईसामसीह

बारडोलीके सामूहिक सत्याग्रहको वापस लेनेका एक परिणाम यही हो सकता था कि गाधीजीकी गिरफ्तारी होती। पासा पड चुका था। अव गाधीको धर-दबोचनेकी सरकारकी वारी थी। कोई भी सरकार देशमे किसी भी नेतापर उस समयतक हमला नही करती, जवतक उसकी लोकप्रियता वढी हुई होती है। वह सब्रके साथ अपना अवसर देखती रहती है और जव सेना पीछे हटने लगती है तो दुश्मन अपने पूरे वेगके साथ टूट पडता है।

१० मार्चको गाधीजी गिरफ्तार किये गये, यद्यपि उनकी गिरफ्तारीका निश्चय फरवरीके अतिम सप्ताहमे ही कर लिया गया था। गिरफ्तारीके समय गाधीजीका प्रिय भजन 'वैष्णवजन' आश्रमवासियोद्वारा एक स्वरसे गाया गया। उनके स्वरमें करुणा और निश्चय था। सारे आश्रमवासियोंमे मानो शान्त विजली फैल गयी थी। सबके चेहरे प्रफुल्लित थे। उन्हे सावरमती-जेल, जो आश्रमके निकट ही थी, ले जाया गया, जहाँ कि पहले लोकमान्य तिलक भी १९०९ मे रखे गये थे। चलते समय गाधीजीने आश्रमवासियोको सन्देशमें कहा कि 'खूब काम करो—आरम्भ-

को पासतक न फटकने दो।" उनपर राजद्रोहका मुकदमा चलाया गया था। इसे ऐतिहासिक मुकदमा कहा गया है। उस समयका एक चित्र सरोजिनीदेवीने इस प्रकार खींचा है—"जिस समय गांधीजीने अपनी शान्त, अजेय और कृश कायाको लेकर अपने भक्त, शिष्य और सहमना शंकरलाल बैंकरके साथ अदालतमें प्रवेश किया, तो कानूनकी निगाहमें इस कैदी और अपराधीके सम्मानके लिए सब सहसा एकसाथ खड़े हो गये।"

गांधीजीपर तीन लेखोंके लिए मुकदमा चलाया गया था—(१) राजभक्तिमें दखल। (२) समस्या और उसका हल। (३) गर्जन-तर्जन। जब गांधीजीसे अदालतने उनके नामठामके बाद पेशा पूछा तो उन्होंने अपनेको 'किसान और जुलाहा' बताया। इसपर जजसाहब जरा चौंके। ज्योंही अभियोग पढ़कर सुनाये गये, गांधीजीने अपना अपराध स्वीकार किया। श्री शंकरलाल बैंकर ने भी अलबत्ता।

१८ मार्च को ब्रिटिश शासनकी लौकिक जेलमें, भारतके एक अलौकिक नेताका मुकदमा चला। अपने लिखित बयानके पहले गांधीजीने जबानी कहा:

"मैं अदालतसे कोई बात जरा भी छिपाना नहीं चाहता। प्रचलित शासन-पद्धतिके प्रति अप्रीति उत्पन्न करनेकी मुझे धुन ही लग गयी है। मेरे लिए यह बड़ा दुखदायी कर्तव्य है, लेकिन मेरे सिरपर जो जवाबदेहियाँ थी, उन्हें देखते हुए उस कर्तव्यका पालन करना आवश्यक था। मैं जानता था कि मैं संकटको निमंत्रण दे रहा हूँ, मैं आगके साथ खेल खेल रहा हूँ। परन्तु फिर भी मैं कहूँगा कि यदि आजाद कर दिया जाऊँ तो भी मैं फिर-फिर यही काम करूँगा। अहिंसा मेरे धर्मका पहला और अन्तिम मन्त्र है। परन्तु मुझ तो दो बुराइयोंमेंसे एकको पसन्द करना था। या तो मैं इस शासन-पद्धतिके अधीन हो सकता था, जिससे मेरे देशको अगणित हानि पहुँच रही है, अथवा अपने देशकी वास्तविक स्थितिको जाननेके बाद ऐसी जोखिम उठा सकता था, जिससे मेरे देशभाइयोंका खून उबल उठना है।"

इसके बाद गांधीजीने अपना लम्बा लिखित बयान पढ़ते हुए कहा:

"वास्तवमें मेरा विश्वास तो यह है कि इंग्लैण्ड और भारत जिस अप्राकृतिक रूपमें रह रहे हैं, उनसे असहयोगके द्वारा उद्धार पानेका मार्ग बताकर मैंने दोनोंकी सेवा ही की है। मेरी नाकिस रायमें जिस प्रकार अच्छाईसे सहयोग करना कर्तव्य है, उसी प्रकार बुराईसे असहयोग करना भी कर्तव्य है। इससे पहले बुराई करनेवालेको क्षति पहुँचानेके लिए असहयोगका हिंसात्मक अवलंबन किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियोंको यह बतानेकी चेष्टा कर रहा हूँ कि हिंसा बुराईको कायम रखती है। अतः बुराईकी जड़ काटनेके लिए यह आवश्यक है कि हिंसासे बिल्कुल अलग रहें।

"अहिंसाका मतलब यह है कि बुराईसे असहयोग करनेके लिए जो कुछ भी

सजा मिले उसे स्वीकार कर लें। इसलिए मैं यहाँ उस कार्यके लिए, जो कानूनकी निगाहोमे जान-बूझकर किया गया अपराध है और जो मेरी निगाहमे किसी नागरिकका सबसे बडा कर्तव्य है, सबसे बड़ा दण्ड चाहता हूँ और उसे सहर्ष ग्रहण करनेको तैयार हूँ।"

"आपके अफसरो और जजके सामने सिर्फ दो ही मार्ग है। यदि आप लोग हृदयसे समझते हैं कि जिस कानूनका प्रयोग करनेके लिए आपसे कहा गया है, वह बुरा है और मैं निर्दोष हूँ, तो आप लोग अपने-अपने पदोसे इस्तीफा दे दें और बुराई-से अपना सम्बन्ध तोड लें, लेकिन यदि आपका विश्वास हो कि जिस कानूनका प्रयोग करनेमे आप सहायता दे रहे हैं, वह वास्तवमे इस देशकी जनताके मगलके लिए है और मेरा आचरण लोगोके अहितके लिए है, तो मुझे वडे-से-बडा दण्ड दें।"

इसके अनन्तर फैसला सुनाया गया। जज साहबने कहा—"गाधीजी, आपने अपराध स्वीकार करके एक तरहसे मेरा काम बहुत आसान कर दिया है। परन्तु यह निर्णय करना सहज नही है कि आपको कितनी सजा दी जाय। मैं नही समझता कि इस देशमे किसी भी जजके सामने इतना कठिन काम कभी उपस्थित हुआ हो। कानूनकी नजरमे न तो कोई छोटा है, न बडा। अबतक मुझे जिन-जिन लोगोका फैसला करना पडा है, अथवा भविष्यमे भी करना पडेगा, उन सबकी अपेक्षा आप भिन्न ही कोटिके पुरुष हैं। इस बातको मैं अपने ध्यानसे नही हटा सकता। आप अपने करोडो देशभाइयोकी दृष्टिमे महान् देशभक्त है, महान् नेता है, इस बातको भी मैं अपने खयालसे अलग नही कर सकता। जो लोग राजनीतिक मामलोमे आपसे अलग रहते है, वे भी आपको आदर्श मानते हैं। वे केवल आपको अलौकिक ही नही, वरन् साधु कोटिका पुरुष मानते हैं।

"परन्तु मुझे तो आपका विचार एक ही दृष्टिसे करना है। एक कानूनके अधीन मनुष्यकी तरह ही आपका इन्साफ करना है। ऐसे अपराधके लिए, जो कानूनकी दृष्टिसे गभीर है, और जिसे अपराधी खुद कबूल करता है। श्री बाल गगाधर तिलकको इसी दफा (राजद्रोह) की सजा दी गयी थी। उन्हें अन्तको छह सालकी सादी कैदकी सजा भोगनी पडी थी। मुझे विश्वास है कि मैं यदि आपको भी तिलकके जोडमे बिठाऊँ तो यह आपको अनुचित न दिखाई देगा।"

इस प्रकार जजने फैसलेमे लोकमान्य तिलकका दृष्टान्त देते हुए गाधीजीको छह वर्ष कैदकी सजा दी और श्री शकरलाल बैंकरको एक वर्षकी कैद और १,००० रु० जुर्मानेका दण्ड मिला। जुर्माना न देनेपर छह मासकी और कैद। गाधीजीने गिने-चुने शब्दोमे उत्तर दिया कि "यह मेरे लिए परम सौभाग्यकी बात है कि मेरा नाम लोकमान्य तिलकके नामके साथ जोड़ा गया।" उन्होंने जजको सजा देनेके मामलेमे विचारशीलतासे काम लेने और उनकी शिष्टताके लिए धन्यवाद दिया और अदालतमे उन्होंने उपस्थित लोगोसे बिदा ली। उस समय बहुतसे

दर्शकोंकी आँखोंमे आँसू भरे हुए थे। इस प्रकार धर्म मानो अधर्मका कैदी हो गया।

सजा सुनाते हुए जजने यह भी कहा कि "यदि किसी परिस्थितिवश सरकार-ने इनने पहले ही आपको मुक्त करना सम्भव किया तो मुझसे अधिक और कोई प्रसन्न न होगा।"

इन सारे प्रकरणमे न्यायमूर्ति (ब्रूमफील्ड) और महात्मामे उच्च भावनाओं-की मानो प्रतियोगिता ही हुई।

उत्तरमे गाधीजीने सहर्ष कहा कि "यह मेरे लिए परम सौभाग्यकी बात है कि सरकार मुझे ऐसा दण्ड देकर तिलक महाराजका स्थान दे रही है। पर मुझे यह भी दण्ड बहुत हलका मालूम हो रहा है। मैं तो इससे भी बड़े दण्डकी अपेक्षा करता था।"

इस प्रकार अभियोग समाप्त हुआ। गाधीजीके मित्र सिसकते हुए उनके पैरोसे लिपट गये। महात्माने मुस्कराते हुए उनमे विदा माँगी।

गाधीजीको पहले ही अनुमान हो गया था कि सरकार मुझपर हाथ डाल सकती है, इसलिए उन्होने ६ मार्चके 'यग इडिया' मे 'यदि मैं गिरफ्तार होऊँ ?' शीर्षकसे सत्याग्रह बन्द करनेका आदेश दिया था। उन्होंने लिखा था कि "ऐसी हालतमें सत्याग्रह जारी करना दुराग्रह होगा।" इसलिए अदालतसे विदा होते समय महात्माजीने केवल इतना कहा.

"मुझे अब सदेश देनेकी आवश्यकता नहीं। मेरा सदेश तो लोग जानते ही हैं। लोगोंसे कहिये कि हर हिन्दुस्तानी शाति रखे। हर आदमी हर प्रयत्नसे शातिकी रक्षा करे। केवल खादी पहने और चरखा काते। लोग यदि मुझे छुड़ाना चाहते हो, तो शातिके ही द्वारा छुडायें। यदि लोग शाति छोड़ देंगे, तो याद रखिये, मैं जेलमे ही रहना पसद करूँगा।"

साबरमती-जेलकी दीवारोंने गाधीजीको पाकर धन्यता महसूस की। उस समय गाधीजीने उपस्थित साथियोंसे कहा—"मेरे इस हाथमे खादी रखो और उस हाथसे स्वराज्य लो।"

ब्रिटेनने भारतका अबतक जो शोषण किया था, उसका प्रायश्चित्त करनेके बदले उसके शासनने अपने एक परम मित्रको कानूनकी दुहाई देकर भारतीय स्वतन्त्रताकी बलिवेदीपर यह पहली पवित्र आहुति देना ठीक समझा।

१८. धर्म-संकटमें

(१९२४)

'विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति'
(सकटोंके कारण महापुरुष अपना कार्य छोड नही देते।)

—भर्तृहरि

यरवदा-जेलमे गाधीजीके अपेडिसाइटिसका दर्द एकाएक इतना बढ गया कि १२ जनवरी १९२४ को उनका ससून अस्पतालमे तुरत आपरेशन कराना पडा। वहाँके सिविलसर्जन कर्नल मैडकने बडी तत्परता और कुशलतासे वह आपरेशन किया। गाधीजीने कर्नल मैडकपर अपना पूर्ण विश्वास प्रकट किया। वे केवल सर्जन ही नही रहे, उनके मित्र भी बन गये। उसके बाद आरामके लिए गाधीजी एक कैदीके रूपमे ही ससून अस्पतालमे रखे गये। यह स्वाभाविक था कि खतरनाक आपरेशनकी बात सुनकर लोग गाधीजीको देखने पूना आने लगे। अब सरकार बडी दुविधामे पडी। कर्नल मैडकने साहस करके सरकारको लिखा कि मेरा यह रोगी एक महान् पुरुष है और बहुत लोकप्रिय है। अभी एक खतरनाक आपरेशन किया गया है तथा रोगीको आरामके साथ प्रसन्न रखना भी बहुत जरूरी है। यदि लोगोको उससे मिलने न दिया गया तो उसका स्वास्थ्य बिगडनेका अदेशा है। यह खतरा मोल लेना सरकारके लिए उचित नही है। इसपर लोगोंको गाधीजीसे मिलने-जुलनेकी छूट दे दी गयी, सिर्फ इस शर्तपर कि राजनीतिक बातचीत न की जाय। फिर तो मिलनेवालोका ताँता ही लग गया। बडे-से-बडे लोग—लालाजी, श्री ऐयगार, राजाजी, जमनालालजी, मोतीलालजी, हकीमसाहब, बी अम्मा, अलीबन्धु, केलकर आदि—उनसे मिलनेके लिए आ गये। महात्माजी आपरेशनके पहलेसे ही काफी कमजोर हो गये थे। आपरेशनके बाद तो उनका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि उन्हें देखते ही श्री ऐयगार और मौ० मोहम्मदअली तो रो ही पडे। लालाजीका भी जी भर आया था। उस समयकी कई मुलाकातें बड़ी रोचक थीं।

एक दिन पडित मोतीलाल नेहरू मिलने आये। दैवयोगसे लेखक बापूजीकी ड्यूटीपर उसी कमरेमे था। पडितजीने बाहरवालोके लिए कुछ सन्देश माँगा तो गाधीजी फौरन बोले—"मै कैदी हूँ, बाहरकी दृष्टिमे मरा हुआ (सिविली डेड) हूँ। अत ऐसा सदेश कैसे दे सकता हूँ?" तब पडितजीने बात बदल दी और जवाहरलालजीकी शिकायत शुरू की कि "जवाहर हमारा कहना तो मानता ही नही

है। तीसरे दर्जेमें सफर करता है। चना-चवेना खाकर रह जाता है—गरीबोंकी तरह। फर्शपर सोता है। यह मुझसे देखा नहीं जाता। तन्दुरुस्तीकी परवाह नहीं करता। एक बार मालवीयजीने गंगापर सत्याग्रह शुरू किया, तो गंगातटपर बड़ी-बड़ी बल्लियाँ गड़ी हुई थी, उनपर चढ़कर गंगाजीमे बन्दरकी तरह कूद पड़ा। मैं इन्दुको चिढ़ाया करता हूँ कि तेरा बाप तो बन्दर है। अब आप ही सोचिये कि यह सब मुझसे कैसे सहा जा सकता है।" इसपर गांधीजी बोले—"आपका यह कहना ठीक है। मैं जवाहरलालको जरूर लिखूँगा कि अपने खाने-पीने और स्वास्थ्यके बारेमे आपको चिन्ता करनेका कोई मौका न दे।"

इन मुलाकातोंमे गांधीजीके कानपर यह भनक तो पड ही गयी थी कि बाहर कांग्रेसियोंमे दो दल हो गये हैं और आपसमे विवाद चल रहा है।

फिर कुछ ही दिनके बाद—कर्नल मैडककी जोरदार सिफारिश पर—सरकारने गांधीजीको छोड़ दिया और कुछ दिन वहीं रहकर वे जूहू (बम्बई) मे समुद्र-तटपर विश्रामके लिए चले गये।

गांधीजीके जेलसे छूटते ही देशकी समस्याओंका मानो तूफान उनके सामने आ गया। परिवर्तनवादियो और अपरिवर्तनवादियोंकी बड़ी जटिल समस्या सामने आकर खड़ी हो गयी। अभी बापू पूरे स्वस्थ हो ही नहीं पाये थे कि उन्हें इसमे उलझना पड़ा।

जेल जाते समय गांधीजी सत्याग्रह बन्द करनेका आदेश दे गये थे। परन्तु देशबंधु दास और विट्ठलभाई पटेल जैसे नेता, जिन्होंने असहयोगको बहुत-कुछ संकोचके बाद अपनाया था, असहयोग, सविनय-भंग और सत्याग्रहके सिद्धान्त और व्यवहारका मूल्य फिरसे निश्चित कराना चाहते थे। वे ऐसा असहयोग चाहते थे, जिसका प्रवेश खास नौकरशाहीके गढमें हो सके।

गांधीजीके जेलमे जानेके बाद, इन मतभेदको दूर करनेके लिए अन्तमें पं० मोतीलाल नेहरू, डॉ० अंसारी, श्री विट्ठलभाई पटेल, श्री जमनालाल बजाज, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और सेठ छोटानीकी एक समिति बनायी गयी थी—इस बातके लिए कि वह देशका भ्रमण करके रिपोर्ट दे कि देश सत्याग्रहके लिए तैयार है या नहीं। इसी अरसेमे बोरसद-सत्याग्रह, गुरूका बाग सत्याग्रह, नागपुरका झंडा-सत्याग्रह चले। अन्तको 'सत्याग्रह-जाँच-कमेटी' ने यह निर्णय दिया कि इस समय देश सामूहिक सत्याग्रहके लिए तैयार नहीं है। फिर भी कमेटीकी राय रही कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंको अधिकार दे दिया जाय कि यदि कोई मौका आ पड़े तो वे अपनी जिम्मेदारीपर सीमित रूपमे सत्याग्रहकी अनुमति दे सकती हैं।

कुछ नेता—जैसे देशबन्धु, पंडित मोतीलालजी आदि धारासभाओंमे प्रवेश-के हामी थे। इनका दल परिवर्तनवादी कहलाता था, जब कि दूसरे नेता या तो

सत्याग्रहमे या रचनात्मक कामोमे विश्वास रखते थे। ये अपरिवर्तनवादी कहलाते थे। इन दोनो पक्षोकी यह कशमकश गाधीजीके जेलसे छूटनेतक चलती रही।

अपरिवर्तनवादी आशा कर रहे थे कि गाधीजी अब छूट गये है। इससे काग्रेस-का इजन फिर सत्याग्रहके मार्गपर लौट पडेगा। इस दलमे मुख्यत. श्री वल्लभभाई, श्री राजेन्द्रप्रसादजी तथा जमनालालजी थे और इनके नेता श्री राजगोपालाचार्य थे। दूसरी ओर परिवर्तनवादी अपना जोर लगा रहे थे। जूहूमे देशबन्धु, मोतीलाल-जी और गाधीजीमे लम्बी चर्चाएँ हुई। अतमे गाधीजीको एक वक्तव्यमे कहना पडा कि काग्रेसियोके द्वारा विधानसभा-प्रवेशके जटिल प्रश्नपर अपने स्वराजी मित्रोके साथ बातचीत करनेके बाद मुझे दु खके साथ कहना पडता है कि मै उनसे सहमत नही हो सका। अब भी मेरी यही राय है कि असहयोगके सम्बन्धमे जैसी मेरी धारणा अवतक है, उससे कौसिल-प्रवेश असगत है। मुझे यह भी खेद है कि मै अपने स्वराजी मित्रोको अपने दृष्टिकोणपर नही ला सका। तथापि मै यह समझता हूँ कि जबतक उनका विचार दूसरा रहेगा, उनका स्थान कौसिलोमे ही है।

इसी साल जगह-जगह साप्रदायिक दगे हुए। इनमे दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहाँपुर, इलाहाबाद, जबलपुरके दगे मुख्य थे। सबसे अधिक भयकर दगा कोहाटमे हुआ। उसने तो भारतकी कमर ही तोड़ दी। गाधीजीने इस क्रोधोन्माद और हत्या-प्रवृत्तिका जिम्मेदार अपने-आपको ठहराया और इक्कीस दिनके उपवासद्वारा प्रायश्चित्त करनेका निश्चय किया। अभी एक खतरनाक आपरेशनसे उठे उन्हें अधिक दिन नही हुए थे। अत यह उनके लिए अग्नि-परीक्षा थी। उनके उपवासने सबको झकझोर दिया। गाधीजीने यह व्रत दिल्लीमे मौलाना मुहम्मदअलीके मकानपर आरम्भ किया। इस प्रसगमे उन्होने अपने प्रारंभिक वक्तव्यमे कहा—"पर क्या एक मुसलमानके घरमे बैठकर मुझे यह उपवास करना उचित था? हाँ, जरूर था। मेरा उपवास किसी भी प्राणीके प्रति दुर्भावसे प्रेरित होकर नही अगीकार किया गया है। मेरा एक मुसलमानके घरमे रहना किसी गलतफहमीके खिलाफ एक गारटी होगी।" पर बादको उन्हें दूसरे मकानमे ले जाया गया।

अब तो सारे देशमे हाहाकार मच गया। सभी जिम्मेदार नेता छटपटा उठे। तुरन्त ही इस अवसरका लाभ उठाकर उन्होने विभिन्न जातियोके नेताओको एकत्र किया। कलकत्ताके बडे पादरी भी शरीक हुए। यह "एकता-परिषद्" २६ सितम्बरसे २ अक्तूबर १९२४ तक होती रही। सबके दिल थर्रा उठे थे। अन्तमें परिषद्के सदस्योने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मतकी स्वतत्रताके सिद्धान्त-का पालन करनेका अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेंगे और उत्तेजना मिलनेपर भी इसके विरुद्ध किये गये आचरणकी निन्दा करनेमे कसर न रखेंगे। जनतासे अनुरोध किया गया कि गाधीजीके उपवासके अन्तिम सप्ताहमे देशभरमे प्रार्थना की जाय।

इस तरह साम्प्रदायिक एकताके लिए जी-जानसे प्रयत्न किये गये। इसके फलस्वरूप गांधीजीने ८ अक्तूबर—दशहरेके पुण्य दिन, उपवास छोड़कर पारणा किया। १२ का घण्टा बजते ही बापूजी एकके बाद एक लोगोंको बुलाने लगे। इमामसाहब, बालकोबा, एण्ड्रूज साहब, अलीबन्धु, बेगम सा०, देशबन्धु, बासन्ती देवी, मोतीलालजी, राजकुमारी अमृतकौर, जवाहरलालजी, कमला नेहरू, सबको बुलाया गया। मुहम्मदअली लिपटकर रोने लगे। डॉ० अन्सारीकी आँखोंसे आँसू टपक पड़े। इमाम साहबने कुरानका पहला सूरा गाया। फिर एण्ड्रूज साहबने बापूजीका एक प्रिय अंग्रेजी भजन सुनाया। थोड़ी देर रूसके कष्ट और अनसनके कष्ट, ईमामसीहके आँसू और प्रेम तथा बापूजीके प्रेम और आँसूने सबने अभेद-भाव अनुभव किया। फिर विनोबा तथा बालकोबाने वेद-मन्त्र और 'वैष्णव जन' गाया। बादमें बापूने गद्गद कण्ठसे कहा—"आज मैं आपसे यह वचन माँगना चाहता हूँ कि हम हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्यके लिए मर मिटेंगे।" डॉ० अन्सारीके हाथसे नारंगीका रस लेकर बापूने पारणा किया।

उपवासके दरम्यान बापू 'नवजीवन' के लिए कुछ-न-कुछ सन्देश भेजते रहते थे। एक सन्देशमें उन्होंने तपकी महिमा बतायी थी :

"हिन्दू-धर्ममें कदम-कदमपर तपका विधान है। पार्वती यदि शंकरको चाहे तो तप करे। शिवने जब भूल हुई तो उन्होंने तप किया। विश्वामित्र तो तपकी मूर्ति ही थे। राम जब वनको गये तो भरतने योगारूढ़ होकर घोर तप किया और शरीरको क्षीण कर दिया।

"ईश्वर दूसरी तरह मनुष्यकी कसौटी कर ही नहीं सकता। यदि आत्मा देहसे भिन्न है तो देहको कष्ट देते हुए भी आत्मा प्रसन्न रहती है। अन्न शरीरकी खुराक है, ज्ञान और चिन्तन आत्माकी। यह बात प्रसंगोपात्त हर शख्सको अपने लिए सिद्ध करनी पड़ती है।

"परन्तु यदि तप आदिके साथ श्रद्धा, भक्ति, नम्रता न हो तो तप एक मिथ्याकष्ट है। वह दम्भ भी हो सकता है। ऐसे तपस्वीसे तो बेखटके भोजन करनेवाला ईश्वरभक्त हजारगुना बेहतर है।"

'प्रभो, दीन जानकर मुझे तार।'

कांग्रेसके अन्दरके विवादका अन्त करनेकी दृष्टिसे इसके बाद गांधीजी, देशबन्धु और पं० मोतीलालजीने मिलकर कौंसिल-बहिष्कारके मानलेने एक संयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसे कांग्रेस-महासमितिने मान लिया। इस वक्तव्यका सारांश यह था कि सब दलोंका सहयोग प्राप्त करनेके लिए असहयोगको राष्ट्रीय कार्यक्रमके रूपमें स्थगित किया जाता है। अलबत्ता विदेशी कपड़ा न पहननेके सम्बन्धमें वही पुरानी रीति कायम रहेगी। यह भी कहा गया कि अन्य दल भिन्न-भिन्न दिशाओंमें रचनात्मक कार्य करें और स्वराज्य-दल कौंसिलो-

मे काम करे। इसके ऐवजमे गाधीजीने यह तय कराया कि काग्रेस-सदस्योके द्वारा चार आना सालके बजाय सदस्यताके चदेके रूपमे दो हजार गज हाथकता सूत प्रतिमास दिया जाय।

इन समय यद्यपि असहयोगका वेग मन्द पड गया, परन्तु आगे चलकर वही 'नमक-कानून-भग' के रूपमे वडा तूफान बनकर सामने आया, जिसमे बापू खूब ही निखरे।

१९. पराजय--जयके लिए

(१९२४–१९२६)

'अजयोऽपि जयाकारो निश्चितं प्रतिभाति मे'

महाभारतके अन्तमे युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे कहा था . 'जयोऽपि अजयाकारो भगवन् प्रतिभाति मे।' (यह जय मुझे तो अजय-सी दीखती है !)

इस अवसरपर हमे कहना होगा कि इस पराजयके गर्भमे जय छिपी हुई है।

असहयोगके इतिहासमे सन् १९२४ की बेलगाँव-काग्रेस खास महत्त्व रखती है। गाधीजी उसके अध्यक्ष थे।

इस समय गाधीवादके विरुद्ध उठा विद्रोह चरमसीमा तक पहुँच चुका था। काग्रेस अब ऐसे स्थानपर खडी थी, जहाँसे दो मार्ग दो दिशाओमे जाते थे। काग्रेस-वादियोको अब या तो परस्पर दो विरुद्ध दलोमे बँट जाना था या समझौता करके अपने भेदभावको मिटा देना चाहिए था। और यदि समझौता ही करना हो, तो इस जटिल प्रश्नको गाधीजीके सिवा और कौन हाथमे ले सकता था ? अकेले गाधीजी ही ऐसे पुरुष थे, जो सत्याग्रहका कार्यक्रम वापस लेकर भी अपरिवर्तन-वादियोको शात कर सकते थे और कौसिल-प्रवेशका सामना करके भी स्वराजियो-को सन्तुष्ट कर सकते थे।

अध्यक्षके नाते गाधीजीका भाषण बहुत ही अद्भुत और महत्त्वपूर्ण था। उसमे उन्होने कहा कि "स्वराज्य तो हमारा लक्ष्य है। परन्तु चरखा, हिन्दू-मुस्लिम-एकता और अस्पृश्यता-निवारण ये उसके साधन है। मेरे लिए तो साधनोका जानना ही काफी है। मेरे जीवन-सिद्धान्तमे साधन और साध्य पर्यायवाची है।"

इस अधिवेशनमे नीचे लिखी बातोपर बहुत जोर दिया गया—

काग्रेसमे मताधिकारके लिए शारीरिक श्रमकी शर्त, सैनिक व्ययमे कमी, सस्ता सुलभ न्याय, मादक द्रव्य और उसपर लगनेवाली चुगीका अन्त, 'सिविल' (मुल्की) और सैनिक नौकरियोके वेतनोमे कमी, प्रातोका भाषाकी दृष्टिसे

पुनर्निर्माण, इन देशमें विदेशियोंके ईजारो (मोनोपली) की नये सिरेसे जाँच-पड़ताल, भारतीय नरेशोंको उनकी पद-मर्यादाकी गारंटी और केन्द्रीय सरकार द्वारा खलल न पहुँचानेका आश्वासन, तानाशाहीका अंत, नौकरियोंमें जाति-भेदका अंत, भिन्न-भिन्न संस्थाओंको धार्मिक स्वतंत्रता, देशी भाषाओंद्वारा सरकारी कामकाज और हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानना।

स्वराज्यके सम्बन्धमें गांधीजीने कहा कि "मैं साम्राज्यके भीतर ही स्वराज्य पानेकी चेष्टा करूँगा। लेकिन यदि स्वयं ब्रिटेनके दोषसे उससे सारे नाते तोड़ना आवश्यक हुआ तो मैं उन्हें तोड़नेमें संकोच नहीं करूँगा।'

१९२५ की राजनीति मुख्यतः कौंसिलोंमें सीमित रही। अब स्वराज्यवादियों-को अपरिवर्तनवादियोंकी तरफसे परेशानी नहीं रही। गांधीजी दोनों दलोंको एक तराजूपर रखनेको तैयार थे।

इधर गांधीजी अपने रचनात्मक कार्यक्रममें जुट पड़े। खादीके सुसंगठित प्रचारके लिए अखिल भारतीय चरखा-संघकी स्थापना की। कानपुर-कांग्रेसके समय उन्होंने एक सालका क्षेत्र-संन्यास लिया था, ताकि सारी शक्ति रचनात्मक कामों-में ही केन्द्रित हो सके। जहाँ एक ओर वे रचनात्मक कामोंको बल देना चाहते थे, वहाँ राजनीतिक कामोंके लिए स्वराज्य-दलको छुट्टा भी छोड़ देना चाहते थे।

गौहाटी-कांग्रेसके समय उनकी यह मीयाद पूरी हो चली थी, जब कभी कांग्रेस-ने उनके विचार और कार्यक्रमकी अवहेलना की, उन्होंने उसके लिए रास्ता साफ कर दिया कि जिधर चाहे जाय।

गांधीजी भारतमें आ गये और यहाँकी रचनात्मक और राजनैतिक समस्याओं-से टकरानेमें डूब तो गये, परन्तु दक्षिण अफ्रीकाको नहीं भूले। १९२५ में दक्षिण अफ्रीकाके प्रेसीडेण्ट जनरल हर्टजोगने 'सेग्रेगेशन बिल' तैयार किया, जिसका नाम था 'क्लास एरिया बिल'। यदि यह यूनियन पार्लियामेण्टमें पेश किया जाता तो सरकार और विरोधी दल दोनों इसके लिए स्वीकृति दे देते। इसके पहले श्रीमती सरोजिनी देवी इस बिलके सिलसिलेमें दक्षिण अफ्रीका गयी थीं और उनके प्रयत्नसे वह स्थगित भी हो गया था। अबकी बार गांधीजी और कांग्रेसने दीनबन्धु एण्ड्रूज-को वहाँ भेजा और उन्होंने आवाज उठायी कि बिल पास हो जायगा तो गांधी-स्मट्स समझौता भंग हो जायगा। उनके प्रयत्नसे दोनों सरकारें इस बातको देखनेके लिए राजी हो गयीं कि समझौते पर किस प्रकार अमल होता है। अनुभवसे जिन-जिन बातोंपर समझौतेकी आवश्यकता दिखाई देगी, उनपर भी दोनों सरकारें विचार करनेके लिए तैयार हो गयीं। इससे वहाँ शान्ति स्थापित होनेका मार्ग निकल गया।

फरीदपुरकी बंगाल-प्रांतीय-परिषद्के अध्यक्षपदसे देशबन्धुने कहा था— "मैं हृदय-परिवर्तनके लक्षण हर जगह देख रहा हूँ। मेलजोलके चिह्न मुझे हर जगह

दिखाई पड रहे है। ससार सघर्षसे थक गया है। उसमे मुझे सर्जन और संगठनकी इच्छा दिखाई पड रही है।" परन्तु दुर्भाग्यसे इसके कुछ ही दिन बाद १६ जून १९२५ को दार्जिलिंगमे देशबन्धुका स्वर्गवास हो गया।

दासबाबका जीवन स्वय भारतके इतिहासका एक परिच्छेद था। उनके सम्बन्धमे गाधीजीने गद्गद होकर कहा था: "उनकी स्मृतिको अमर बनानेके लिए हमे क्या करना चाहिए? आँसू बहाना बडा आसान है। परन्तु आँसुओसे हमे या उनके निकटस्थ और प्रिय व्यक्तियोको कोई लाभ न होगा। यदि हम सब, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और वे सब, जो अपने-आपको 'भारतीय' कहते है, सकल्प कर लें कि जिस कामके लिए देशबन्धु जिये और जिस काममे वे निमग्न रहे, उसे हम पूरा करेंगे, तो हम सचमुच उनके स्मारकके रूपमे कुछ कर सकेंगे। हम सब परमात्मामे विश्वास रखते है। हमे जानना चाहिए कि शरीर नाशवान् है। आत्माका नाश कभी नही होता। जिस शरीरमे देशबन्धु दासकी आत्माका निवास था, वह नष्ट हो गया। पर उनकी आत्मा अमर है। वे जिस उत्साहके साथ अपनी मातृभूमिको प्रेम करते थे, हम उनका अनुकरण अवश्य कर सकते है।"

गाधीजी देशबन्धु दाससे अत्यन्त स्नेह रखते थे। वे बगालमे ही रुक गये और देशबन्धुकी स्मृतिमे उन्होंने कलकत्तामे एक महान् स्मारक खडा कर दिया। उन्होने दस लाख रुपया एकत्र किया। देशबन्धु दासका निजी विशाल और शाही भवन देशको अर्पण हुआ। उसमे स्त्रियो और बच्चोका अस्पताल बना दिया गया।

अब गाधीजीने स्वराजियोके हाथमें सारी शक्ति देने और बगालमे स्वराज्य-पार्टीकी जड मजबूत बनानेमे कोई कसर उठा न रखी। समवत कांग्रेस-महा-समितिकी कलकत्ताकी बैठकके बाद, १५ जुलाईको, गाधीजीने पडित मोतीलाल नेहरूके नाम एक परची इस आशयकी लिखकर भेजी कि चूंकि काग्रेसमे स्वराजियो-की बहुलता है, और चूंकि आप स्वराज्य-पार्टीके सभापति है, इसलिए काग्रेसकी कार्य-समितिकी अध्यक्षताका भार भी आपको अपने ऊपर ले लेना चाहिए। मैं इसका अध्यक्ष अब अधिक समय रहना नही चाहता। इस परचीसे स्वराजियोमे हलचल मच गयी। परन्तु यह बात पं० मोतीलालजीको मजूर न हुई।

अगस्तमे गाधीजीने लिखा था: "मुझे काग्रेसके मार्गमे और अधिक खडा न होना चाहिए। काग्रेसका पथ-प्रदर्शन मुझ जैसे आदमीके द्वारा अब नही होना चाहिए, क्योकि मैंने अपने-आपको अपढ जनतामे मिला दिया है। और भारतके शिक्षित समाजकी मनोवृत्तिसे मेरे विचारोका मेल नही बैठता। अत अब मैं शिक्षित भारतीयोके मार्गमे बाधक बनना नही चाहता। मै अब भी उनपर अपना असर डालना चाहता हूँ। परन्तु यह काम तभी अच्छी तरह हो सकता है, जब मैं रास्तेमेसे हट जाऊँ और काग्रेसकी सहायतासे, उसके नामपर अपना सारा ध्यान

इस प्रकार असहयोगकी जो गाडी गयामे ऊँचाईसे ढलकनी शुरू हुई, वह १९२६ के आरम्भमे साबरमतीमे करीव-करीब नीचे आ गिरी। प्रतिसहयोगी स्वतन्त्र राष्ट्रीय दलवालोंके बहुत निकट पहुँच गये थे, इसके फलस्वरूप 'इडियन नेशनल पार्टी' का जन्म हुआ।

सितम्बरमे लाला लाजपतराय और प० मोतीलाल नेहरूमे बडी कौंसिलके सम्बन्धमे मतभेद उठ खडा हुआ। लालाजीका खयाल था कि स्वराजियोंकी बहिर्गमनकी नीति हिन्दू-हितोंके लिए स्पष्टतया हानिकर है।

१९२६ मे गौहाटी-काग्रेस हुई। अधिवेशनमे यह समाचार पहुँचा कि एक मुसलमानने स्वामी श्रद्धानन्दको रोगशय्यापर उनसे मुलाकात करनेके बहाने गोली मार दी। काग्रेसमे इस सवादसे वडा शोक छा गया।

स्वामी श्रद्धानदजीके सबधमे प्रस्ताव गाधीजीने पेश किया और अनुमोदन मौ० मोहम्मदअलीने किया। गाधीजीने समझाया कि मजहबकी असलियत क्या है। उन्होंने हत्याके कारणोपर भी प्रकाश डाला। फिर वे वोले, "शायद अव आप लोग समझ जायँगे कि मैंने अब्दुल रशीदको 'भाई' क्यो कहा। मैं तो उसे स्वामीजी-को हत्याका दोषीतक नही ठहराता। दोषी तो असल मे वे है, जिन्होंने एक-दूसरेके खिलाफ घृणाको उत्तेजित किया।"

गाधीजीने सारी चर्चामे दिलचस्पीसे भाग लिया, यहाँतक कि विषय-समितिने नाभा और मुद्रा-व्यवस्थाके विषयमे जो प्रस्ताव पास कर दिये थे, उन्हे उन्होंने बदलवा दिया।

गौहाटीके अवसरपर खद्दरकी प्रदर्शनी की गयी। ऐसी प्रदर्शनियोंने देशकी राजनैतिक, सामाजिक और सास्कृतिक उन्नतिके साथ-साथ आर्थिक उन्नति की ओर ध्यान देनेमे भी सहायता पहुँचायी। साथ ही लोगोंको विश्वास दिला दिया कि खादीका अर्थ है, निर्धनोंको भोजन और वस्त्र देना।

पर हिन्दू-मुस्लिम दगे १९२५ और १९२६ मे भी होते रहे। इससे दुखी होकर गाधीजीने कलकत्तामे कहा था :

"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है कि इस रोगकी औषधि करनेवाले वैद्यकी विशेषता मुझमे नही है। मैं तो नही देखता कि हिन्दू या मुसलमान मेरी औषधिको स्वीकार करनेके लिए तैयार हैं। इसलिए मैंने आजकल इस समस्या-को यो ही केवल सरसरी चर्चा करके सन्तोष करना आरम्भ कर दिया है। मैं यह कहकर सन्तोष कर लेता हूँ कि यदि हम अपने देशका उद्धार करना चाहते हैं तो एक-न-एक दिन हम हिन्दू-मुसलमानोंको एक होना पडेगा।

"यदि हमारे भाग्यमे यही बदा है कि एक होनेके पहले हमे एक-दूसरेका खून बहाना चाहिए, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें, उतना ही अच्छा है। यदि हम एक-दूसरेका सिर तोडनेपर उतारू है, तो हमे मर्दानगीके

साथ ऐसा करना चाहिए। हमे झूठमूठके आँसू न बहाने चाहिए। यदि हम एक-दूसरेके साथ दया नही करना चाहते, तो हमे किसी दूसरेसे सहानुभूतिकी याचना भी नही करनी चाहिए।"

२०. खादीका विराट् रूप

(१९२४-'२६)

१९२४ मे गाधीजी बेलगांव-काग्रेसके अध्यक्ष महज इसी उद्देश्यसे हुए कि वे खादी और चरखेका तथा रचनात्मक कामका प्रचार काग्रेसके जरिये कर सकें और काग्रेसके कामको अपने उदाहरणसे सही दिशा दिखा सकें।

उन्होने काग्रेसके सविधानमे सशोधन करवाकर चवन्नीके एवजमे काग्रेस-सदस्यताका चदा "२००० गज अपने हाथका कता सूत" करा लिया। फिर खादी-प्रचारको अधिक सुव्यवस्थित रूप देनेके लिए जो खादी-मडल अबतक बना हुआ था, उसे "अखिल भारतीय चरखा-सघ" के रूपमे बदल दिया। वे इतने ही पर नही रुके। उन्होने खादी-यात्राएँ भी शुरू की। देशी-राज्योमे भी खादी-प्रचारकी अनुकूलताएँ देशी-राजा देने लगे थे। दरिद्रनारायणके लिए चन्दा भी इकट्ठा किया, जो सालभरमे लगभग ९ लाख हो गया। क्या महिलाएँ और क्या बच्चे, सबको वे खादीके रगमे रँगने लगे।

अपने दौरोमे एक स्कूलके बच्चोने अपना हाथकता सूत गाधीजीको भेंट करते हुए उनका सन्देश मांगा। उन्हे गाधीजीने लिखा :

"केवल इसलिए नही कातना कि मैं कहता हूँ, बल्कि इसलिए कि यह एक जरूरी काम है। आप चरखेके महत्त्वको अच्छी तरह समझ लें। विद्यार्थियोको हमारे देशकी भयकर गरीबीका ज्ञान होना चाहिए। हमारे गाँव किस प्रकार उजडते जा रहे हैं, यह वे स्वयं आकर अपनी आँखों देखें। भारतकी विशालता और उसकी जनसख्याकी उन्हें जानकारी हो। उन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि वह क्या चीज है, जो लोगोंको इस गरीबीमे कुछ सहारा दे सकती है। वे इन दलितो-गरीबोके साथ अपनेको मिला देनेकी कोशिश करें। उन्हें सिखाया जाय कि जो चीजें गरीबोको नही मिल सकती, उन्हे वे भी लेनेसे इनकार कर दें। तब चरखेका महत्त्व उनकी समझमे आ सकेगा। तब वे उसे कभी नही छोडेंगे—मेरे बारेमे उनके विचार बदल जानेपर भी।"

१९२६ के गौहाटी-अधिवेशनमे मतदाता चुनावोमे भाग लेनेवालोंके लिए आदतन खादी पहनना लाजिमी कर दिया गया।

अपनी खादी-यात्रामे गाधीजी मध्यप्रदेशमे गये, तो वहाँ बहुत कम उत्साह था। एक स्थान पर उनके आगमनके उपलक्ष्यमे थैलीके लिए चन्दा एकत्र किया

गया। कुल रु० ५,५००) एकत्र हुए। इन रुपयोंकी खादी खरीद ली गयी और खादी-भंडारका उद्‌घाटन करनेके लिए गांधीजीसे प्रार्थना की गयी। गांधीजी उद्‌घाटन-भाषण करनेके बदले खुद ही गज और कैशमेमो लेकर खादी बेचने बैठ गये। हर कैशमेमोपर बेचनेवालेकी जगहपर खुद ही हस्ताक्षर करते चले गये। अंतमें उन्होंने कहा—"इस देशमें करोड़ोंका विदेशी कपड़ा आता है। उसके मुकाबलेमें आजकी यह रु० ५००) की बिक्री सिन्धुमें बिन्दुके समान है। हमारे लिए यह लज्जाकी बात है कि इस बिक्रीके लिए आपको ललचानेके लिए खुद मुझे कैश-मेमो लेकर यहाँ बैठना पड़ा। पर मैं क्या करता ? खादी जैसी सीधी-सादी-सी चीजका भी महत्त्व आप लोग नहीं जानते।"

उन दिनों सकलातवाला—एक कम्युनिस्ट—इंग्लैंडकी पार्लियामेण्टके सदस्य थे। उन्होंने पूछा कि "आप खादीकी इतनी रट क्यों लगा रहे हैं ?"

गांधीजीने कहा : "इसलिए कि यह भद्दापनका नहीं, सादगीका प्रतीक है, गरीबोंका पहनावा है। अगर चाहे तो अमीरों और कलाके भक्तोंको भी खादी सुशोभित कर सकती है। यह एक पुराने उद्योगको पुनर्जीवित करती है। यह यन्त्रोंको नष्ट नहीं, नियन्त्रित अवश्य करना चाहती है। चरखा भी तो स्वयं एक सुन्दर छोटा-सा यंत्र ही है। फिर खादी किसी भी गृहोद्योगको 'खो' नहीं देना चाहती। बल्कि वह स्वयं अनेक गृहोद्योगोंका केन्द्र बनती जा रही है। विधवाकी उजड़ी गृहस्थीके लिए यह आशा की एक किरण है। किन्तु यदि वह अन्य प्रकारसे अधिक कमा सकती है, तो खादी उसे या अन्य किसीको भी रोकती नहीं। दूसरा काम मिल रहा हो तो वे शौकसे करें। किन्तु जिनको इज्जतके साथ कोई दूसरा काम नहीं मिल सकता, वे इसे ग्रहण कर सकते हैं। राष्ट्रके बेकार समयका इसमें उपयोग हो जाता है। खद्दर शहरों और गाँवोंके बिगड़े और स्वाभाविक सम्बन्धोंको सुधारनेका काम करती है।

"खादी संगठन-चातुर्यके अनंत बीजोंसे भरी पड़ी है, क्योंकि इसकी जरूरत सम्पूर्ण देशको है और यह काम विशाल संगठनके बिना बन नहीं सकता। करोड़ों गरीबों और भूखों तथा मध्यमवर्गके हजारों स्त्री-पुरुषोंके स्वेच्छापूर्ण और शांतिपूर्ण सहयोगसे ही यह काम बन सकता है। लाखों-करोड़ोंको यह रोजी भी दे सकती है और उन्हें संगठित करके एक शक्तिका निर्माण भी।"

महाड (महाराष्ट्र) के विद्यार्थियोंको गांधीजीने कहा : "आप खादी नहीं पहनते, इसका कारण यह नहीं कि आपकी खोपड़ी उलटी है। बल्कि इसलिए कि आपको अपने देशकी गरीबीका दर्शन और भान ही नहीं। लार्ड कर्जनने जब स्याम-देशके लोगोंसे कहा कि 'मैं एक ऐसे देशसे आ रहा हूँ, जिसकी नदियोंका जल सालमें कुछ महीने जमकर बर्फ बन जाता है', तो उन लोगोंको विश्वास ही नहीं हुआ। ऐसी बात आपकी भी है। पर मैं आपसे कहता हूँ कि हमारे देशमें करोड़ों

लोग ऐसे हैं, जिनको दिनमें एक बार भी पेटभर खाना नहीं मिलता। यह मैंने अपनी आंखों देखा है। खादी उन्हें खाना देनेके लिए है।"

अपनी खादी-यात्राने ता० ६ सितम्बरको गांधीजी मद्राससे कुडलूर गये। चिदम्बरम्को वे तीर्थ-स्थान मानते थे। अछूत संत नन्दनारका यह स्थान है। इन संतको अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए उन्होंने कहा : "इस संतने अपनी दुर्दमनीय आत्मा और भगवान्में अटूट श्रद्धासे अपने युगके कठोर-से-कठोर ब्राह्मणोंको भी शुद्धतम तपश्चर्या और कष्ट-सहनके बलपर वशमें कर लिया। उसने अपने सतानेवालोंको कभी भला-बुरा नहीं कहा और न उसने कभी कुछ मांगा। केवल उनके उदात्त चरित्र और भक्तिको देखकर ही ब्राह्मण लज्जित हो गये।"

यह उदाहरण देते हुए उन्होंने खादीकी भावना और अंतर्मुखताकी ओर संकेत करते हुए कहा :

"हमारे अन्दर भी आज नन्द की-सी ही भावना की जरूरत है। खादीके विषयमें भी हमारे अन्दर ऐसी ही भावना होनी चाहिए। हमें आशा करनी चाहिए कि गुण्डे और वेश्याएं भी खादी पहनें, क्योंकि जिस प्रकार हमारी भांति वे भी गेहूं और चावल ही खाते हैं, उसी प्रकार अपना शरीर ढांकनेके लिए वे कोई-न-कोई कपड़ा तो पहनते ही हैं। तब खादी ही क्यों न पहनें? परन्तु खादी पहनते वक्त उसका अर्थ हमारे ध्यानमें रहना चाहिए। जब भी हम पहननेके लिए ये कपड़े उठायें, हमें दरिद्रनारायणका स्मरण हो जाना चाहिए और उन करोड़ों भूखों-नंगोंका खयाल हो जाना चाहिए, जिनके लिए हम खादी पहनते हैं। हमारे अन्दर खादीकी यह भावना होगी, तो हमारे जीवनके हर क्षेत्रमें अपनेआप सादगी आ जायगी। खादीका मतलब है असीम धीरज। जो-जो भी जानते हैं कि खादी किस प्रकार बनती है, कितने धीरजके साथ कतिनों और बुनकरोंको अपना काम करना पड़ता है, वे ही समझ सकते हैं कि स्वराज्यकी कताई भी कितना धीरज हमसे मांगती है। खादी-भावनाका अर्थ है, असीम श्रद्धा। जिस प्रकार एक कत्तिनको यह श्रद्धा होती है कि वह और उसकी बहनें जो सूत कातती हैं, वह कुल मिलाकर सारे देशका तन ढंक सकता है, इसी प्रकार हमारे अन्दर भी सत्य और अहिंसामें ऐसी ही असीम श्रद्धा हो कि हम अपने मार्गमें आनेवाली हर विघ्न-बाधापर विजय पायेंगे।

"खादी-भावनाका अर्थ है, पृथ्वी-तलके मानव-मात्रके साथ मित्र-भाव। उसका अर्थ है ऐसी हर चीजका त्याग, जिससे हमारे सहजीवी प्राणियोंको हानि पहुंचनेकी संभावना हो। यदि यह भावना हम अपने करोड़ों भाइयोंमें उत्पन्न कर सकें, तो हमारा यह देश क्या से क्या हो सकता है। ज्यों-ज्यों इस देशमें मैं घूमता हूं और उसका दर्शन करता हूं, त्यों-त्यों चरखेकी शक्तिमें मेरी श्रद्धा बढ़ती और अविचलित दृढ़ होती जाती है।

"रामनामका ही उदाहरण लीजिये। जब हम बुद्धिसे विचार करते हैं कि रामके नाममे ऐसा क्या रखा है, जो लोग उसकी इतनी महिमा गाते है, तो कुछ भी समझमे नही आता। फिर भी मैं मानता हूँ कि मेरे सामने अभी आप जितने लोग बैठे है, उनमे एक भी ऐसा भाई या बहन नही होगी कि जो मानती हो कि हमे यह मन्त्र सिखानेवाले ऋषि मूर्ख थे। इसी प्रकार मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि खादी-भावनामे भी वे सारी शक्तियाँ है, जो मैंने आपको बतायी। परन्तु केवल एक शर्त है। वह यह कि रामजीका नाम हमको देनेवाले ऋषियोके पीछे उनके सम्पूर्ण जीवनकी तपश्चर्या थी। खादीके अन्दर भी तभी उस शक्तिका दर्शन होगा, जब उसके पीछे भी ऐसी ही तपश्चर्या होगी। मैं क्षण-क्षण अनुभव करता रहता हूँ कि खादी-कार्यमे जिन्होने अपना जीवन अर्पण कर दिया है, वे यदि निरतर जीवनकी शुद्धता और पवित्रताका ध्यान न रखेगे, तो निश्चय ही वह लोगोमे अप्रिय हो जायगी। मैं जानता हूँ कि खादी दूसरी वस्तुओकी होडमे नही खडी रह सकती, जिस प्रकार सत्याग्रहकी भी तुलना दूसरे शस्त्रोके साथ नही की जा सकती। परन्तु साथ ही मैं यह निश्चयपूर्वक जानता हूँ कि खादी अपने आपमे एक विलक्षण वस्तु है और गुणोमे उसकी बराबरी कोई चीज भारतमे नही कर सकती। इसलिए आप आज जो मुझे ये थैलियाँ भेट कर रहे है, इनसे मुझे बहुत खुशी नही हो रही है। मैं तो जानता हूँ कि यदि आपके अन्दर मेरी श्रद्धाका दसवाँ हिस्सा भी होता, तो आप मुझे इतना देते और सतुष्ट कर देते कि मुझे और कही जानेकी जरूरत ही नही रह जाती।"

"खादी खेतीका सहायक और साथी पेशा है। लाखो-करोडो हरिजन इनारो-के लिए तो यह प्राणके समान है। जबतक हम गाँवोसे बेकारीको निर्मूल नही कर देते, हमने चरखेको उसका अपना स्थान दे दिया, यह नही कहा जा सकता। जहाँ लाखो-करोडो बेकार होगे, वहाँ लडाई-झगडे और खून-खराबी होगी ही। तत्वार्थभित समाजवादका एकमात्र विकल्प है—चरखा। पश्चिमके समाजवादका आधार यान्त्रिक उद्योगीकरण है। भारत जिस समाजवादको हजम कर सकता है, वह चरखेसे ही आ सकता है। इसलिए ग्रामसेवक तो चरखेको ही अपनी सारी सेवाओंका केन्द्र बनायें।

"यो खादीका हेतु शुद्ध सेवाका—बेकारो-गरीबोको राहत देनेका—है। उसके साथ राजनीतिको न जोडा जाय। जरूरत भी नहीं, क्योंकि भारतमे उसका राजनीतिक असर अवश्यंभावी है।"

२१. शादी—संयमकी साधना

(१९२६)

'इमां कन्यां सन्तानोत्पादनार्थं तुभ्यं संप्रददे ।'

(यह कन्या मैं तुमको (केवल) सन्तानोत्पादनके लिए देता हूँ ।) विवाहके अवसरपर कन्याके पिता का संकल्प ।

गांधीजी जीवनके सर्वतोमुखी सुधारक थे । समाजकी हर कमीपर उन्होंने प्रहार किया और नयी रीति-नीतियाँ चलायीं ।

विवाह-पद्धति भी उनकी निगाहसे बची न रह पायी । वैसे तो वे विवाहित अवस्थामें भी ब्रह्मचर्यसे रहनेका उपदेश देते थे, परन्तु विवाह-प्रणाली भी ऐसी सादी करवायी, जो दम्पतीको जीवनभर संयमका पाठ पढ़ाती रहे ।

ऐसे दो-तीन विवाह उनकी उपस्थितिमें, उन्हींकी प्रेरणासे साबरमती-आश्रममें हुए—एक मोती बहन आसरका, दूसरा कुमारी कमला बजाजका और तीसरा खुद उनके पुत्र श्री रामदास गांधीका । रामदासजीकी शादीका हाल सुन लीजिये ।

पाणिग्रहणके दिन वर-वधूने उपवास किया, गोशाला और कुएँके आसपास सफाई की । प्रकृतिके साथ तादात्म्यके रूपमें पौधोंको पानी दिया । कताई की और गीताका बारहवाँ अध्याय पढ़ा ।

वर-वधू स्वच्छ-श्वेत खादी पहने थे । इसके अलावा उनके शरीरपर कोई आभूषण नहीं था ।

विवाह-विधि कुल ९० मिनटमें पूर्ण हो गयी । इसमें गुरुजनों और अग्निकी साक्षीमें परस्परके प्रति सचाई और निष्ठा तथा सेवामय जीवनकी प्रतिज्ञा थी ।

न बाजे थे, न संगीत, न भोज, न दहेज । वर-वधूमें केवल मंगल-मालाओंका आदान-प्रदान हुआ । गांधीजीने भेंटके रूपमें गीता, भजनावली और दो तकलियाँ दीं । वधूकी माँने चरखा दिया ।

साढ़े नौ बजे आश्रमवासियोंकी सभामें गांधीजीने बड़े गंभीर वातावरणमें वर-वधूको आशीर्वाद दिये । जब उन्होंने कहा कि "रामदास और देवदास दोनों पूरी तरहसे मेरी निगरानीमें बड़े हुए हैं" तो यह कहते हुए उनकी आँखोंमें आँसू छलछला आये । कहा—"इस बच्चेने मुझे कभी धोखा नहीं दिया, न मुझसे कभी झूठ बोला ।" यह कहते हुए मानो वह ईश्वरके प्रति अपनी कृतज्ञता और बच्चे रामदासकी साधुतापर गर्व प्रकट कर रहे थे । रामदाससे कहा :

"जब तूने अपने दोष और कमजोरियाँ मेरे सामने कबूल कीं, तो उनसे मैं डरा नहीं, क्योंकि तेरी सरलता और सचाईने उन भूलोंको खुद ही धो डाला । मुझे

निश्चय है कि भले ही सारा ससार तुझे धोखा देता रहे, परन्तु तू कभी किसीको धोखा नही देगा।

"अपनी पत्नीका आदर करना। तू उसका मालिक नही, सच्चा मित्र है। मैं आशा करता हूँ, मुझे विश्वास है, कि उसके शरीर और आत्माको पवित्र मानेगा। निश्चय ही वह भी तेरे शरीर और आत्माको एसा ही मानेगी। इसके लिए तुझे अपने जीवनको सादा, सयमी और परिश्रमी बनाना होगा। तुम एक-दूसरेको विषयका साधन नही मानोगे।

"तुम दोनोको यहाँ आवश्यक शिक्षण मिला है। तुम्हारा जीवन अपनी मातृभूमिकी सेवामे ही लगे। जबतक शरीरमे प्राण रहे, तुम्हें सेवामे ही लगे रहना है। तुम जानते हो कि हमने स्वेच्छापूर्वक और पूरी तरहसे सोचसमझकर गरीबी का व्रत लिया है। अत जिस प्रकार हमारे देशके मजदूर और किसान अपने खरे पसीनेकी रोटी खाते है, उसी प्रकार तुम्हें भी अपने पसीनेकी ही रोटी खानी है। अपने घरके कामकाज दोनो हिलमिलकर करना और ऐसा करनेमे आनन्द मानना।

"मैंने तुम्हें कोई भेंट नही दी है। तकली और मेरी प्यारी गीता तथा भजनावली के अलावा मैं तुम्हें कुछ भी नही दे सकता। सूतकी यह माला तेरा कवच है। यदि मैं अपने मित्रोसे तेरे लिए कीमती भेंटें जुटानेकी कोशिश करता, तो ससारकी नजरोमे मैं झूठा और पाखडी ही सिद्ध होता। इसलिए आज मैं तुझे वही चीजें दे रहा हूँ जो सचमुच मेरे जसे पिता और पुरुषको देना उचित है।

"गीता मेरे लिए तो रत्नोंकी खान रही है। वह तेरे लिए भी ऐसी ही हो। जीवन-पथमे वह सदा तेरी मदद और मार्गदर्शन करती रहे। खूब-खूब जीयो और सेवा करते रहो।"

इस प्रसगपर गाधीजीने यह भी आशा प्रकट की कि आश्रमके अन्दर यह अतिम सजातीय विवाह होगा। अबसे दो भिन्न जातियोमे ही विवाह हो। आश्रम-को इसमे नेतृत्व करना चाहिए। लडकियोका विवाह अब २० वर्षके पहले न हो। २५ वर्ष तक न हो तो और भी अच्छा।

श्री जमनालालजी बजाजकी सुपुत्री कुमारी कमलाकी शादी भी ऐसी ही सादगीके साथ आश्रमपर हुई थी। वह मारवाडी समाजके लिए दिशादर्शक है। उस अवसरपर गाधीजीने वर-वधूको आशीर्वाद देते हुए कहा :

"हिन्दू जातियोमे जो विवाह होता है, उसमे आडम्बर और प्रलोभनके कारण विवाहका धार्मिक अश छिप जाता है। विवाहमे पैसेका व्यय इतना होता है कि गरीबोको विवाह करना एक आपत्ति-सी हो जाती है। इस आश्रमका आदर्श है, विवाहित होते हुए भी ब्रह्मचर्यका पालन करना। अत इसको धर्म-सकट माना जाय। अहिंसा-धर्मी किसीपर बलात्कार नही करते। अत जो ब्रह्मचर्य नही पालन कर सकते, उन वर-वधूको हम आशीर्वाद क्यो न दें? और विधि भी अच्छी ही

क्यों न चलायें? स्मृतियोंमें लिखा है कि जो दम्पती नियमसे रहते हैं, वे ब्रह्मचर्य-का ही पालन करते हैं। मैंने इसे बहुत समयतक नहीं समझा था। जो विकारोंका नाश नहीं कर सकते और विकारोंपर अंकुश रखते हुए जितना अनिवार्य हो उतना ही व्यवहार करते हैं, तो वे भी संयमी कहलाते हैं।...

" जितनी सादगीसे विवाह कर सकें, करना चाहिए। इस तरहसे विवाहकी क्रिया करनी चाहिए कि दोनों विवाहका सच्चा अर्थ समझ सकें। इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों हैं।

"जमनालालजी दस, बीस, पच्चीस हजार रुपया फेंक दे सकते हैं, और उनके मारवाड़ी भाई भी कहेंगे कि कैसा अच्छा विवाह किया। परन्तु उन्होंने धन होते हुए भी उसका उपयोग नहीं किया। इसका परिणाम अच्छा ही हुआ। रामेश्वर प्रसाद और कमलाकी उमर अब इस योग्य हो गयी कि इस बातको समझ सकें कि विवाह स्वच्छन्दताके लिए, विकारका गुलाम बननेके लिए, नहीं है। रामेश्वर प्रसादको मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि वह कमलाको गुलाम नहीं समझे। स्त्री-को सहधर्मिणी, अर्द्धांगिनी और मित्र समझना चाहिए। यह दम्पती शिव-पार्वती, सत्यवान-सावित्री या राम-सीताकी तरह आदर्शभूत बनें।

"हिन्दू-धर्मने स्त्रियोंको उच्च स्थान दिया है। हम सीता-राम कहते हैं, राम-सीता नहीं। राधा-कृष्ण कहते हैं, कृष्ण-राधा नहीं। अगर सीता नहीं होती तो रामको, सावित्री नहीं होती तो सत्यवान्को कोई नहीं जानता। मैं इन दोनोंको आशीर्वाद देता हूँ कि ये दोनों दीर्घायु हों और धर्मकी रक्षा और देशकी सेवा करें।"

पति-पत्नी या स्त्री-पुरुषके पवित्र प्रेम के बारेमें गांधीजीने एक विदुषी बहनको पत्रमें बड़ी मार्मिक बातें लिखी थीं। बंगालमें कुछ "आध्यात्मिक" विवाह हुए थे। वे स्त्री-पुरुष अपनेको आध्यात्मिक पति-पत्नी मानते थे। बापू भी विवाहके आध्यात्मिक रूपको मानते थे। इसीको दृष्टिमें रखकर बापूने एक ऐसी ही बहनके आध्यात्मिक विवाहके बारेमें निजी आदर्श बताते हुए लिखा था.

"मैंने आध्यात्मिक पत्नीका अर्थ निश्चित कर लिया है। यह स्त्री और पुरुष-की वह सहधर्मिता है, जिसमें शारीरिक पक्षका सर्वथा अभाव होता है। यह केवल दो ऐसे व्यक्तियोंके बीच सम्भव है जो मनसा, वाचा और कर्मणा ब्रह्मचारी हों। तुम पत्नी हो, क्योंकि तुमने हमारे समान आदर्शका अपनी अपेक्षा मुझमें अधिक विकास देखा। इस आध्यात्मिक सहधर्मिताको कायम रखनेके लिए हमारा प्रेम एकान्तिक, वासना-मूलक नहीं, ज्ञानमूलक होना चाहिए। यह दो समान आत्माओंका मिलन है। यह सहधर्मिता उन स्थितिमें भी सम्भव है जब कोई पक्ष किसी दूसरेसे शारीरिक रूपसे विवाहित हो। किन्तु यह भी तभी जब वे दोनों ब्रह्मचर्यका पालन करते हों। आध्यात्मिक सहधर्मिता पति और पत्नीके बीच भी सम्भव है। यह शारीरिक सम्बन्धोंसे परे होती है और मृत्यु उपरान्त भी कायम

रहती है। मैंने जो कुछ कहा है, उससे सार यह निकलता है कि आध्यात्मिक सहधर्मी इस जीवनमे या भावी जीवनमे भी शरीरत कभी विवाहित नही हो सकते, क्योकि वह सहधर्मिता तो तभी सम्भव है जब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी तरहकी वासना न हो।"

२२. सायमन-कमीशन—कफनमें कील

(१९२७-२८)

'मेरी छातीपर लगा एक-एक डण्डा ब्रिटिश हुकूमतके कफनकी एक-एक कील साबित होगी।'

—लालाजी

जब स्वराज्य-दल कौंसिलके अन्दर जाकर अपनी अडगा नीति जोरसे चलाने लगा, तब ब्रिटिश सरकारने शासन-सुधारके लिए एक कमीशनकी नियुक्ति की, जिसके अध्यक्ष सर जॉन सायमन बनाये गये। इसके पहले भारतमे कई जगह दगे हो चुके थे और स्थिति नाजुक बनती जा रही थी। कमीशनकी नियुक्तिकी सूचना भारतमे ८ नवम्बर १९२७ को की गयी। उसके पहले ५ नवम्बर और उसके बादकी तारीखोमे भारतके मुख्य-मुख्य नेताओको वाइसरायसे मिलनेका निमत्रण दिया गया। गाधीजी इस समय दिल्लीसे बहुत दूर बगलोर थे। उन्होने अपना कार्यक्रम रद कर दिया और दिल्ली आ पहुँचे। जब गाधीजीने वाइसराय लार्ड इरविनसे पूछा कि 'क्या बस यही काम है ?' तो लार्ड इरविनने कहा, 'बस यही।' गाधीजीने सोचा कि यह सदेश तो एक आनेके लिफाफेद्वारा भी उनके पास पहुँच सकता था।

वाइसराय कमीशनके प्रति सबकी सद्भावना प्राप्त करनेके प्रयत्नमे थे। परन्तु सभी दल इस कमीशनकी नियुक्तिसे नाराज हो गये, क्योकि उसमे एक भी भारतीय सदस्य नही रखा गया था। सरकारद्वारा इन शब्दोमे कमीशनको यह काम सौंपा गया था—

"कमीशन ब्रिटिश भारतके शासन-कार्य की, शिक्षा-वृद्धि की, प्रातिनिधिक सस्थाओके विकासकी एव तत्सम्बन्धी विषयोकी जाँच करे और इस बातकी रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासनका सिद्धान्त लागू करना ठीक है या नही। यदि है तो किस दरजे तक।"

मद्रास-काग्रेस (१९२७) मे कमीशनके बहिष्कारका प्रस्ताव पास किया गया। उसमे कहा गया कि ब्रिटिश सरकारने भारतके स्वभाग्य-निर्णयकी पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, इसलिए यह काग्रेस निश्चय करती है

कि भारतके लिए अब यही एकमात्र आत्मसम्मानपूर्ण मार्ग रह गया है कि वह इस कमीशनका हर तरह और हर हालतमे बहिष्कार करे।

बहिष्कार किस प्रकार हो, इस सम्बन्धमे एक लम्बा-चौडा प्रस्ताव स्वीकार किया गया। साथ ही काग्रेसके ध्येयको भी एक पृथक् प्रस्तावद्वारा इस प्रकार स्पष्ट किया गया—"यह काग्रेस घोषित करती है कि भारतीय जनताका लक्ष्य-पूर्ण राष्ट्रीय स्वतत्रता है।"

१९ दिसम्बर १९२७ को इसी बीच हकीम अजमल खाँ की मृत्यु हो गयी, इस-पर गाधीजीने लिखा था .

"हकीम साहबके स्वर्गवाससे देशका सबसे सच्चा सेवक उठ गया। मैंने न सिर्फ एक बुद्धिमान् और दृढ साथी ही खोया है, बल्कि ऐसा मित्र खोया है जिसपर आडे अवसरोपर भरोसा कर सकता था। हिन्दू-मुस्लिम एकताके बारेमे वे हमेशा ही मेरे रहबर थे। हिन्दू-मुसलमान एकतापर वे जान देते थे।"

इस समय काग्रेसमे स्वराज्यके सम्बन्धमे प्राय तीन विचार-धाराएँ थी—एकमे ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत स्वराज्य, दूसरीमे स्वराज्यकी कोई परिभाषा नही थी और तीसरीमे पूर्ण-स्वतन्त्रताका लक्ष्य था। आखिरी दलके नेता प० जवाहरलाल नेहरू थे। सबके अपने-अपने मसविदे थे, अत. इस अधिवेशनमे स्वराज्य का एक निश्चित मसविदा तैयार करनेकी भी माँग की गयी। काग्रेसने कार्यसमितिको अधिकार दिया कि वह अन्य सस्थाओसे मशविरा करके स्वराज्यका मसविदा तैयार करे और उसे सम्मेलनके सामने स्वीकृतिके लिए रखे। इस कार्यके लिए कार्य-समितिको और सदस्य बढानेका भी अधिकार दिया गया।

कमीशन को नियुक्त करते समय भारतसचिव लार्ड बर्कनहेड ने एक घोषणा की थी कि "सरकारकी आलोचना करनेवालोको अपने तीन वर्षके कार्यकालमे मैंने दो-दो बार निमन्त्रण दिया है कि आखिर वे भी तो बतायें कि शासन-सुधारके बारेमे उनके क्या सुझाव हैं। परन्तु कोई सुझाव नही आया है। यह निमन्त्रण अब भी कायम है।"

विधान-समितिकी यह योजना इस चुनौतीका जवाब थी।

जब १९२८ का साल आरम्भ हुआ तो इस समय देशके राजनैतिक वाता-वरणमे साइमन-कमीशनकी नियुक्तिपर सरकारके प्रति रोष ही रोष विद्यमान था। देश कमीशनके बहिष्कारमे जी-जानसे जुटा हुआ था। कमीशनकी घोषणा करते समय लार्ड इरविनने कहा कि भारतीय सम्मान तथा भारतीय गौरवको जान-बूझकर अपमानित करनेका सम्राट् सरकारका कोई इरादा नही है। पर साथमे उन्होंने इस बातकी भी धमकी दी कि यदि कमीशनके कार्यमें भारतीयोकी सहा-यता न प्राप्त हुई, तब भी कमीशन अपना कार्य बदस्तूर चलाता रहेगा और

अपनी रिपोर्ट पार्लियामेंटमे पेश कर देगा। रिपोर्ट पेश होनेके बाद पार्लियामेण्ट इसपर अपनी इच्छानुसार जो निर्णय करना चाहेगी, करेगी।

सायमन-कमीशनके भ्रमणके बाद मद्रास-कांग्रेसके उपर्युक्त प्रस्तावके अनुसार दिल्लीमे फरवरी-मार्च सन् १९२८ मे सर्वदल-सम्मेलनकी बैठक की गयी। सम्मेलनमे उपस्थित भारतकी समस्त वैधानिक सस्थाएँ और कांग्रेस इस बातपर एकमत हो गयीं कि भारतकी वैधानिक समस्यापर 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' को आधार मानकर विचार होना चाहिए। दो महीनोंमे सम्मेलनकी कुल मिलाकर २५ बैठकें हुई और लगभग तीन-चौथाई समस्याएँ शातिपूर्वक तय हो गयी। १९ मईको डॉ० अंसारी के सभापतित्वमें फिर सम्मेलनकी बैठक हुई, जिसमे यह निश्चय हुआ कि भारतीय सविधानके सिद्धान्तोका मसविदा तैयार करनेके लिए प० मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें एक कमेटी नियुक्त की जाय, जो १ जुलाई १९२८ तक अपनी रिपोर्ट दे दे और मसविदा देशकी भिन्न-भिन्न सस्थाओके पास भेजा जाय। २९ राजनैतिक सस्थाओने कमेटी नियुक्त करनेके प्रस्तावके पक्षमे राय दी।

नेहरू-कमेटीने लगातार परिश्रम करके अपनी रिपोर्ट तैयार कर ली। कांग्रेसके कलकत्ता-अधिवेशनमे इसपर विचार होनेवाला था।

कलकत्ताका कांग्रेस-सम्मेलन राष्ट्रीय सम्मेलनोमे बडा महत्त्वपूर्ण सम्मेलन था। उसे कांग्रेसका भावी मार्ग निश्चित करना था। सायमन-कमीशनके बहिष्कारके फलस्वरूप जो दमनचक्र चला, उससे स्वराज्य-दलके नेताओका विश्वास भी विधानसभाओपरसे हटने लगा था। उसमे नेहरू-कमेटीकी रिपोर्टपर मुख्य प्रस्ताव गाधीजीने रखा। प्रस्तावमें कहा गया था

"अगर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट इस विधानको ३१ दिसम्बर १९२९ तक या उसके पहले ज्यो-का-त्यो स्वीकार कर ले तब तो यह कांग्रेस इस विधानको अपना लेगी, बशर्ते कि राजनीतिक स्थितिमे कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीखतक पार्लियामेण्ट इसे मजूर न करे या इससे पहले ही इसे नामजूर कर दे तो कांग्रेस देशको यह सलाह देगी कि वह करोका देना बन्द कर दे और अन्य तरीकोंद्वारा, जिनका बादमे निश्चय हो, अहिंसात्मक असहयोगका आन्दोलन सगठित करे।"

प्रस्तावमें मुख्य बातके साथ एक वाक्य इस आशयका भी था कि "अध्यक्षको यह अधिकार दिया जाता है कि वह इस प्रस्तावकी प्रतिलिपि और रिपोर्टकी प्रति वाइसराय महोदयके पास भिजवा दे, जिससे कि वे उसपर अपनी मर्जीके माफिक जो कार्रवाई करना चाहें, करें।" इसपर एक सशोधन आया कि ये शब्द निकाल दिये जायें। गाधीजीका कहना था कि प्रस्तावकी प्रति वाइसरायके पास भेजना शिष्टाचारकी दृष्टिसे आवश्यक है और यदि हमारे अन्दर उच्चताकी व्यर्थ

भावना भरी न होती या यदि हम स्वय ही अपने ऊपर कम एतवार न करते होते तो हम इस बातपर जोर न देते कि यह धारा निकाल दी जाय।

प्रस्तावके शेष भागपर काफी वादविवादके पश्चात् स्वाधीनता-संघके सदस्यों और विषय-समितिके अन्य सदस्योंमें समझौता हो गया। लेकिन काग्रसके खुले अधिवेशनमें इस समझौतेको नही निभाया गया। श्री सुभाषचन्द्र बसुने प्रस्ताव-पर संशोधन पेश कर ही दिया और प० जवाहरलालने उसका समर्थन किया, यद्यपि ये दोनो व्यक्ति समझौता करनेवालोंमेंसे थे। इस वादाखिलाफीमें गाधीजी-की भावनाओको बहुत ठेस पहुँची। खुले अधिवेशनमें समझौतेवाले प्रस्तावको पेश करते हुए गाधीजीने अपनी भावनाओंको इन शब्दोंमे व्यक्त किया—"आप लोग चाहे स्वतत्रताका राग अलापा करें,जैसा कि मुसलमान अल्लाहका राग अला-पते हैं और हिन्दू राम या कृष्णका, लेकिन इस अलापके पीछे यदि कोई सच्चाई नही है तो आपका यह अलाप कोई मतलब नही रखता। आप यदि अपने शब्दों-की ही कदर नही कर सकते, तो फिर स्वतत्रता कहाँकी रही ? आखिर स्वतत्रता तो बडी ठोस चीज है। वह शब्दोंके प्रपच से थोडे ही आ सकती है।"

कलकत्ता-काग्रेसकी एक और बात उल्लेखनीय है। आसपासके मिल-क्षेत्रोंके रहनेवाले लगभग ५०,००० से अधिक मजदूर सुव्यवस्थित रूपमे एक जुलूस बनाकर काग्रस-नगरमें घुस आये और राष्ट्रीय झडेकी सलामी करके पडालमें आकर बैठ गये।

इस प्रसगपर एक बडे उद्योगपतिकी इस लेखकसे बात हो रही थी। उन्होंने कहा—"हरिभाऊजी, होशियार हो जाइये। मजदूरोका रुख बदलता जा रहा है।"

मैंने कहा—"इसमे मेरे होशियार होनेकी क्या बात है? यह संकट मुझ जैसोंपर थोडे ही आनेवाला है। आप उद्योगपतियोंको ही सतर्क रहनेकी जरूरत है। डर हो सकता है तो आप लोगोंको ही। मुझे कुछ डर नही, जब मिलोंमें गडबड होगी तो मैं मजदूरोंका नेता हो जाऊँगा।"

लेकिन अभीतक ऐसा मौका नही आया है।

इसी साल (१९२८) गाधीजीके जीवनमे एक बहुत बडी शोकजनक घटना घटी। गाधीजीके भतीजे मगनलाल गाधी दक्षिण अफ्रीकासे ही गाधीजीके साथ थे। वे अपना सब-कुछ छोडकर उनके जीवन-कार्यमें शरीक हो गये थे। भारत आनेपर गाधीजीने साबरमतीमें जो सत्याग्रहाश्रम स्थापित किया, उसके वे मुख्य व्यवस्थापक बने। बडे मेहनती, त्यागी, व्यवस्था-निपुण और तपस्वी थे। ऐसी आवश्यकता महसूस हुई कि वे बिहारमें जाकर खादीके सगठन और प्रचारका काम करें। वहाँ रहते हुए उनको मियादी बुखार हुआ और उसीमें २२ अप्रलको पटनामें उनकी मृत्यु हो गयी।

गाधीजीका दाहिना हाथ टूट गया। सावरमती-आश्रममे स्व० मगनलालजी की पत्नी सतोक बहन और बेटी राधा और रुक्मिणी फूट-फूटकर रोने लगी। गाधीजीके शोकका तो पूछना ही क्या। इस समय उनके चित्तकी व्यथा जो वहाँ थे, वे ही समझ सकते थे। किन्तु वे वडा धैर्य रखकर मगन कुटीरमे गये और मगनभाईके बच्चोंको गोदीमे लेकर उन्हे सात्वना देने लगे। उन्होने सन्तोक बहनसे कहा, "आज तुम विधवा नही हुई हो, विधवा मैं हुआ हूँ। तुम्हारा तो पति ही गया, पर मेरा तो सभी कुछ चला गया। तुम्हारा सहारा तो मैं बैठा हूँ। जबतक मैं जीवित हूँ, तुमको शोक करनेका कोई अधिकार नही। परन्तु मेरी हानिकी पूर्ति किसीसे नही हो सकती।"

खादीके यन्त्रशास्त्रमे मगनलाल भाईने वहुत शोध किये थे। उनकी स्मृतिमे वर्धाके खादी-ग्रामोद्योग सग्रहालयको गाधीजीने 'मगन-सग्रहालय' नाम दिया।

इसी वर्ष ता० १७ नववरको लाला लाजपतरायकी मृत्यु हुई। सायमन-कमीशनके विरोधस्वरूप जुलूस निकले। उन विरोधी जुलूसोपर पुलिसने खूब डडे वरसाये। उससे लालाजीकी छातीमे गहरी चोट आयी। इसके फलस्वरूप वे शीघ्र ही मृत्युके शिकार हो गये। पजावका यह शेर स्वतत्रताकी बलिवेदीपर चढकर अमरताका रास्ता दिखा गया।

जब लालाजीका अस्पतालमे इलाज हो रहा था, तब उन्होने कहा था "मेरी छातीपर लगा एक-एक डण्डा ब्रिटिश हुकूमतके कफनकी एक-एक कील सावित होगा।" आगे चलकर यह भविष्यवाणी सत्य सावित हुई और जिस दिन भारत आजाद हुआ, उस दिन लालाजीकी आत्माने जरूर अपनी आँखोसे हर्षके फूल वरसाये होगे।

कलकत्ता-काग्रेसमे जानेसे पूर्व वर्धामे गाधीजीने लालाजीके स्मारककी योजना बनायी। उसमे श्री घनश्यामदास बिडला भी उपस्थित थे। उनके स्मारकके अध्यक्ष या मत्री श्री घनश्यामदास बिडला थे। कम-से-कम पच्चीस लाख रुपया इकट्ठा करना था। विडलाजी स्वय धनी—करोडपति थे। जहाँतक मुझे याद है, उन्हें यह रकम कम मालूम हुई थी और उन्हे यह विश्वास था कि गाधीजीके कलकत्ता-काग्रेसमे आने तक २५ लाख रुपये इकट्ठा कर लेंगे।

बिडलाजीने अबतक चन्दा दिया था—माँगा नही था। पहलेपहल वे अपने घनिष्ठ और घनी मित्र श्री छाजूराम चौधरीके पास चन्दा माँगने गये। चौधरीजी लालाजीके परम मित्र थे। पजाब (भिवानी) के रहनेवाले थे। गाधीजीके प्रति भी श्रद्धा रखते थे। घनश्यामदासजी ने सोचा कि कम-से-कम पाँच लाख तो दे ही देंगे। परन्तु उन्होने साफ 'ना' कह दिया। बिडलाजीका दिल बैठ गया। जब गाधीजीने घनश्यामदासजीसे पूछा, 'कितने रुपये इकट्ठा हुए?' तो घनश्याम-दासजीने सारा हाल बताकर कहा, "मुझसे तो चन्दा इकट्ठा नही होगा, जब

छाजूरामजी ही नट गये तो और किससे आशा करूँ ? मुझसे आप जितना चाहें, उतना रुपया ले लीजिये।"

दैवयोगसे दूसरे दिन गांधीजी कलकत्ताके विक्टोरिया मेमोरियलके मैदानमे घूमने निकले और चौ० छाजूरामजी मिल गये। घनश्यामदासजी भी गांधीजीके साथ थे। गांधीजीने मुस्कराकर चौधरीजीसे उलाहनेके स्वरमे कहा, "क्यों, अपने दोस्तके लिए चन्दा देनेमे अपने दूसरे दोस्तसे भी नट गये।" तब चौधरी मुँह पिचकाकर हँसते हुए बोले, "घनश्यामदास चन्दा माँगना क्या जाने, ये तो चन्दा देना जानते है। चन्दा यो सहजमे लिया जाता है ? चन्दा लेना हो तो बापूजी, मेरे घर आओ। मुझे समझाओ। मेरी छातीपर चढो। मेरी गर्दन दबाओ। तब जाकर चन्दा मिलेगा। घनश्यामदासजी यह सब क्या जाने।" सब लोग बेतहाशा हँसने लगे।

गांधीजीने अधिवेशनके कार्यमे खूब भाग लिया। प्रस्तावोकी रूपरेखा बनायी और उन्हे सामने लाये। राजनीतिक वातावरण इस समय बहुत अन्धकारमय था। स्वतंत्रताके हामियोपर मुकदमे चलनेकी अफवाहें, वाइसरायके उत्तेजना-पूर्ण भाषण, कलकत्तामे 'फारवर्ड' के सम्पादकको सजा होना, मद्रासमे मुकदमो-का दौरदौरा—ये ऐसी घटनाएँ थी, जिन्होने गांधीजीके ऊपर बहुत भारी प्रभाव डाला। ये घटनाएँ स्वयं ही बहुत बेचैनी पैदा करनेवाली थी। खास तौरपर कलकत्ताकी घटनाओसे वे और भी बेचैन थे। सोच-समझकर एक समझौतेका किया जाना और फिर उसका क्रमशः बंगाल, युक्तप्रान्त और अन्तमे मद्रासद्वारा जान-बूझकर तोडा जाना।

इन दोनो बातोके अलावा गांधीजीके पास यूरोप आनेका निमंत्रण भी था। परिस्थिति अनुकूल हुई, तो गांधीजीका इरादा था कि वे १९२९ मे ही यूरोपका दौरा प्रारम्भ करे। आश्चर्यकी बात है कि पंडित मोतीलाल नेहरूने भी इस बातकी अनुमति दे दी। लेकिन खूब विचार कर लेने और मित्रोसे परामर्श लेनेके बाद गांधीजी इस नतीजेपर पहुँचे कि उन्हे कम-से-कम एक वर्ष के लिए तो अपनी यात्रा स्थगित रखनी चाहिए। गांधीजीने लिखा, "मै अगले वर्षके बारेमे विचार भी नही कर सकता। डेनमार्कके मेरे एक मित्रने लिखा है कि 'स्वतंत्र भारतका प्रतिनिधि होकर ही मेरा यूरोप आना श्रेयस्कर है।' मै इस कथनकी सचाई महसूस करता हूँ।"

हृदयकी आवाजको पहचानकर गांधीजी ठीक निश्चयपर पहुँच गये। उन्होने लिखा, "अन्तरात्माकी आवाज मुझे यूरोप जानेको नही कहती है। इसके विपरीत कांग्रेसके सामने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रस्ताव रखकर और उसका इतना सर्व-व्यापी समर्थन देखकर मुझे यह महसूस हो रहा है कि यदि इस समय मै यूरोप चला गया तो कार्यको छोडकर भागनेका दोषी होऊँगा। अन्तरात्माकी आवाज मुझसे

कह रही है कि जो कुछ कार्य मेरे सामने आये, उसके लिए केवल तैयार ही न रहूँ, बल्कि उस कार्यक्रमको, जो मेरी दृष्टिमे बहुत बडा है, कार्यान्वित करनेके लिए उपाय भी बताऊँ और सोचूँ। इन सबके अलावा सबसे बडी बात यह है कि मुझे अगले साल तो लडाईके लिए भी अपने आपको तैयार करना चाहिए,—चाहे उस लडाईका स्वरूप कैसा भी हो।"

२३. वारडोली-संग्राम

(१९२८)

'ओ विश्वस्त वारडोली, ओ भारत की थर्मापोली!'

—मै० श० गुप्त

विधिकी लीला कोई जान नही सकता। गाधीजी सन् १९२२ मे गिरफ्तार हुए थे और उन्हे छह वर्षकी सजा हुई थी। परन्तु वीमारीके कारण उन्हे दो वर्षके वाद ही सरकारको छोड देना पडा था। इस बीच देशकी हालत काफी वदल गयी थी। सत्याग्रह अथवा कानून-भगका वातावरण अब कही नही था। कांग्रेसके नेता धारासभाओमे सरकारसे युद्ध करनेकी भाषा वोलने लगे थे और जनसमाज-में राजनीतिक वेचैनीका स्थान साम्प्रदायिक अशान्तिने ग्रहण कर लिया था। इस प्रकार जो वारडोली सन् १९२२ मे कर-बन्दीका आन्दोलन करने जा रही थी, उसे सबक सिखानेका उपयुक्त अवसर जानकर सरकारने वहाँ नया वन्दोवस्त जारी करके उसे कर-वृद्धिके रूपमे सजा देनेकी योजना बनायी। वहाँ नया वन्दोवस्त किया गया, जिसके द्वारा इस तहसीलमे जमीनोका लगान लगभग २२ प्रतिशत वढा दिया गया। किसान और उसके नेताओने सरकारसे वहुतेरी विनती की, परन्तु उसका कोई उपयोग न हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा कि जो कदम सन् १९२२ मे स्वराज्य-प्राप्तिके व्यापक ध्येयके लिए वारडोलीने उठाया था, वही कदम उसे अपने ही एक अन्यायको दूर करनेके लिए उठाना होगा। इसी सम्बन्धमे गाधीजीसे सलाह लेनेके लिए श्री कल्याणजी और श्री कुवरजी सावरमती पहुँचे। गाधीजी अपने साप्ताहिक प्रवचनके लिए गुजरात-विद्यापीठ जा रहे थे। दोनो भाई उनके साथ हो लिये। श्री कल्याणजी भाईने गांधीजीको बताया कि अब वारडोली करवन्दीके लिए तैयार है। नये वन्दोवस्तमे लगानमे जो वृद्धि है, वह हम नही देना चाहते।

गाधीजी—"मुझे इस सम्बन्धकी सही-सही जानकारी नही है।"

कल्याणजी—"वहाँ २२ प्रतिशत लगान वढा दिया गया है। लोग कहते है, हम तो पुराना लगान ही देंगे, यह वढा हुआ लगान नही देंगे।"

गाधीजी—"पर आप जानते है न, यह बहुत भयकर बात है। सरकार आपका पैसा लेकर उसीसे आपको कुचल देगी और लगान वसूल कर लेगी। आप तो सरकारसे साफ कह दें कि आपको एक पाई भी नही मिलेगी जबतक कि लगान-वृद्धि रद्द नही की जायगी। पुराना लगान भी तब मिलेगा, जब यह लगान-वृद्धि रद्द होगी। यह कहने के लिए लोग तैयार हैं ?"

कल्याणजी—"बारडोली और वालोद जैसे बडे गाँवोकी तो मैं नही कह सकता। परन्तु दूसरे गाँव मजबूत हैं।"

गाधीजी—"परन्तु अपने पक्षकी सचाई और न्याय्यताके बारेमे तो आपको कोई शका नहीं है न ?"

कल्याणजी—"जरा भी नही। श्री नरहरिभाईने इस बातको अपने लेखोंमे स्पष्ट कर दिया है।"

गाधीजी—"मैंने ध्यानसे ये लेख नही पढे हैं। परन्तु याद रखिये, आपको अपने साथ सारे देशको रखना है। इसलिए आपका पक्ष सोलहों आना सच्चा होना चाहिए। फिर एक बात और है। लोग लडनेके लिए तैयार भी होंगे ? परन्तु यह सत्याग्रह है। मान लीजिये कि वल्लभभाई और उनके साथ-साथ आप जैसे दूसरे नेताओंको भी सरकार गिरफ्तार कर लेती है। फिर भी लोग लडते रहेंगे ?"

कल्याणजी—"यह मैं नही कह सकता।"

गाधीजी—"तो इस बात का पता लगाइये। और खुद वल्लभभाई की राय क्या है ?"

तबतक स्वयं वल्लभभाई भी आ पहुँचे।

उन्होंने कहा—"मैंने सारे प्रश्नका अच्छी तरहसे अध्ययन कर लिया है। वह सच्चा है।"

गाधीजी—"तब तो फिर सोचनेके लिए कुछ भी नही रह जाता। बोल दो, 'जय गुजरात'।"

गाधीजीके आशीर्वाद मिलते ही किसानो और कार्यकर्ताओंका उत्साह दूना बढ गया। प्रत्यक्ष सत्याग्रह शुरू करनेसे पहले कानूनके अनुसार जो-जो भी विधि-पूर्ति करनी बाकी थी, वह सब प्राय हो चुकी थी। अत अब तो केवल युद्धका शंख फूंकना शेष था। ता० १२ फरवरी को बारडोलीमे संपूर्ण तहसीलके प्रतिनिधियों-की सभा हुई। श्री वल्लभभाईने सत्याग्रह-संग्रामकी गुरुता, पवित्रता और जिम्मे-दारी उनको समझाते हुए कहा—"पहले तो कोई बडा जोखिमका काम उठाना नहीं चाहिए, पर यदि उठा लिया तो उसे ठेठ मुकामपर पहुँचा देना चाहिए। लडाई छेडकर आप यदि हार गये तो याद रखना, सारे देशकी नाक नीची होगी और यदि जीत गये तो सारे संसारमे आपका मस्तक ऊँचा उठ जायेगा। कही यह समझकर अखाडेमे नही कूद पडना कि चलो, वल्लभभाई जैसा नेता मिल गया है। आपको

तो अपनी ताकतपर ही लडना है। मैं तो केवल राह बतानेवाला हूँ। इस बार कही हार गये तो अगले सौ वर्ष तक सँभल नही पाओगे।

"सरकारकी तमाम गलतियो और पोलोको मैदानमे लाकर रख दें। कह दें कि जबतक इन्साफ नही होगा लगान नही दिया जायगा। हम नही कहते कि हमारी ही बात मानो। स्वय सरकार एक निष्पक्ष जाँच-समिति नियुत कर दे। उसके सामने सरकार अपना पक्ष रखे और हम भी अपना पक्ष रखें। जबतक यह नही होगा, काम नही चलेगा। यदि आपकी जगहपर मैं होता तो मैं साफ कह देता कि शरीरके टुकडे-टुकडे हो जायँ, पर मैं तो ऐसे लगानकी एक पाई भी न दूंगा।"

इसके बाद सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा ली गयी और भजन-प्रार्थनाके बाद सभा-समाप्तिके साथ लडाई शुरू हो गयी।

यह लडाई सरदार वल्लभभाई के सगठन-चातुर्यका अनुपम नमूना थी। लगभग सवा सौ गाँवो और ८७,००० की जनसख्यावाली इस तहसीलमे २५० स्वयसेवको-की मददसे १६ केन्द्र स्थापित कर दिये गये थे। सरकारने भी अपनी तरफसे लोगोको दबाने-कुचलनेमे कोई कमी नही की। जनताको सतानेके लिए वह पठान ले आयी। किसानोकी स्थावर-जगम सपत्तिको जब्त और नीलाम करनेकी उसने कोशिश की। परन्तु किसानोकी तरफसे न उसे सहयोग मिला, न विरोध-सघर्ष हुआ। जायदाद कुर्क करनेवाले दलो या सरकारी अधिकारियोके आनेकी सूचना देनेके लिए स्वयसेवक पेडोपर बैठकर पहरा दिया करते। ज्यो ही इनका दल दिखाई देता, वहाँसे ढोल बजाकर उनके आगमनकी सूचना गाँवको दे दी जाती। तुरन्त गाँवके सारे स्त्री-पुरुष मकानोमे ताले लगा-लगाकर जगलमे निकल जाते। गाँव निर्जन बन जाता। कहाँ किसका मकान है, इसका नाम-पता बतानेवाला भी कोई नही मिलता। अधिकारियोको चायके लिए दूध तक नही मिलता और यदि उनकी मोटर कीचडमे फँस जाती तो उसे निकालनेवाला भी न मिलता। सत्याग्रहका सचालन करनेके लिए सूरतसे "सत्याग्रह पत्रिका" निकाली जाती थी। प्रतिदिन उसकी १८,००० प्रतियाँ तहसीलके गाँव-गाँव पहुँच जाती। दिनभरमें कहाँ क्या-क्या हुआ, इसके समाचार प्रतिदिन शामको इसके कार्यालयमे पहुँच जाते और दूसरे दिन हर गाँवको इसपर मार्ग-दर्शन इन पत्रिकाओके द्वारा मिल जाता। कुर्क करनेवाली पार्टियोको कोई ग्राहक न मिलता तो वे चार-चार आनेमें भैंसें खुद ही खरीद लेते। बम्बई धारा-सभाके सात गुजराती सदस्योंने त्याग-पत्र दे दिये। इसी प्रकार ६३ पटेलो और ग्यारह पटवारियोंने भी त्यागपत्र दे दिये। सारेके सारे स्वयसेवक और उनके खास-खास नेता गिरफ्तार कर लिये गये। विट्ठलभाई पटेल उन दिनो बडी कौसिलके सभाध्यक्ष थे। उन्होने वाइसरायसे अपील की कि वे बीचमें पडकर इस प्रकरणको सुलझा दें। सत्याग्रहको प्रतिमास १०००) अपने वेतनमेंसे देनेकी घोषणा भी उन्होंने कर दी।

इस प्रकारका संघर्ष स्वभावतः अधिक समय तक चलना संभव नहीं था। अंतमें ता० २३ जुलाईको बम्बईके गवर्नरने घोषणा कर दी कि अब सरकार कानूनकी इस अवज्ञाको अधिक बरदाश्त नहीं कर सकती। सरकार एक जाँच-समिति नियुक्त करनेके लिए तैयार है। परन्तु किसान पहले बढ़ा हुआ लगान अदा कर दें। अगर दो हफ्तेके अन्दर यह नहीं अदा किया गया तो इस आन्दोलनको कुचलनेमें सरकार अपनी पूरी ताकत लगा देगी। दूसरी तरफ सरकारके अन्य चक्र भी सक्रिय बने। धारा-सभाके एक सदस्यने बढ़े हुए लगानकी रकम अपनी तरफसे सरकारी खजानेमें जमा करा दी। इसके साथ ही जाँच-समितिकी नियुक्ति भी लगभग उन्हीं शब्दों और शर्तोंके अनुसार हो गयी, जैसे सरदारने बताया था। इस समितिकी घोषणा होते ही सरदारने भी सत्याग्रहकी समाप्तिकी घोषणा करके किसानोंको पुरानी दरोंके अनुसार लगान अदा कर देनेकी हिदायतें जारी कर दीं। सत्याग्रही जेलोंसे छोड़ दिये गये और सारी जब्त संपत्ति भी लौटा दी गयी।

जाँच-समितिने २२ प्रतिशतके बजाय ५ प्रतिशत वृद्धिकी सिफारिश की।

१२ अगस्तको सूरतमें सत्याग्रहकी समाप्तिका उत्सव था। सरदार और सत्याग्रहियोंके स्वागतमें उस दिन सूरतने मानो अपना सारा वैभव बिछा दिया था। अपूर्व उत्सव था।

गांधीजीने कहा : "इस सत्याग्रहमें सरदार वल्लभभाईको अपने वल्लभ मिल गये। तबसे उनका नाम ही "सरदार" हो गया।"

इस सत्याग्रहमें एक दिलचस्प बात यह थी कि श्री वल्लभभाईने एक कड़ा आदेश निकाला था कि सारी बारडोली तहसीलमें भाषण मेरे सिवा कोई नहीं करे। उनकी मंशा यह थी कि कोई गैर-जिम्मेदार भाषण न होने पावे।

एक बार जब बारडोलीके कुछ लोग बापूजीको भाषणके लिए बुलाने गये तो बापूने मना कर दिया कि वहाँके नेता वल्लभभाई हैं। उनका आदेश है कि उनके सिवाय कोई भाषण न करे। अतः जबतक वे वहाँ आकर भाषण करनेका आदेश न दें, मेरा जाना उचित नहीं है। फिर एक बार श्री वल्लभभाईने खुद ही उन्हें भाषण करनेके लिए बुलाया। तब बापूने कहा :

"यहाँके नेता वल्लभभाई हैं, और मैं उनका एक सिपाही हूँ। उन्होंने बुलाया है तो एक सिपाहीकी हैसियतसे यहाँ भाषण करने आया हूँ।"

सब सुनकर चकित रह गये। यहाँ वल्लभभाईका दृढ़ नेतृत्व और बापूका एक सिपाहीकी हैसियतसे अनुशासन, दोनों अपनी-अपनी जगह महान् हैं।

२४. लाहौर-कांग्रेस : स्वाधीनताका झण्डा

(१९२९-१९३०)

'हैं ये तीनो एक—ईश, स्वातन्त्र्य, अमरता।
आज नहीं तो कभी सिद्ध होगी यह समता॥'
—श्री अरविन्द

अन्य अधिवेशनोंकी भांति लाहौर-कांग्रेसके समय भी भविष्यके गर्भमे बहुत बड़ी-बड़ी घटनाएँ थी। अत लाहौर-कांग्रेसके लिए सुयोग्य अध्यक्षकी जरूरत थी। दस प्रान्तोंने गाधीजीके लिए, पांचने श्री वल्लभभाईके लिए, और तीनने प० जवाहरलाल नेहरूके लिए राय दी। गाधीजीका चुनाव विधिपूर्वक घोषित हो गया, परन्तु उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। तब दूसरे अध्यक्षका चुनाव आवश्यक हुआ। अत २५ सितम्बर, १९२९ को लखनऊमे कांग्रेसकी महासमितिकी बैठक हुई। सबकी दृष्टि गाधीजी पर लगी हुई थी। वही ऐसे नेता दीखते थे जो उस समय कांग्रेसकी बागडोर सम्हाल सकते थे और उसे विजय-पथपर अग्रसर कर सकते थे। कौंसिलोंमे प० मोतीलाल और कुछ सदस्योका भी उकता उठना छिपा नही रह सकता था। यह सकेत स्पष्टत आ चुका था कि कौंसिलोकी मेम्बरी छोड दी जाय। पर आगे क्या किया जाय? सविनय-अवज्ञाके सिवा चारा ही क्या था? परन्तु इस नवीन मार्गपर गाधीजीके अलावा राष्ट्रका सफल पथ-प्रदर्शन और कौन करे? उन्हे पहले भी दबाया गया था। लखनऊमे फिर उनपर जोर डाला गया कि वे अपनी अस्वीकृति वापस ले लें। परन्तु उनकी दूरदर्शिताने कांग्रेसकी गद्दीपर ऐसे युवकको बैठानेकी सलाह दी कि जिसपर देशके युवक-हृदयोकी श्रद्धा हो। गाधीजीने इसके लिए युवक जवाहरलालको सभापति बनाना उचित समझा। नवयुवकोको कांग्रेसकी नीति-रीति धीमी और सुस्त मालूम होती थी। ऐसी दशामे यदि कांग्रेसकी विजय-यात्राको आगे ले जाना हो तो उसका सूत्र किसी नौजवानके हाथमे देना ही उचित है। सरदार वल्लभभाईने गाधीजी और जवाहरलालजीके बीच आडे आना पसन्द नही किया। लखनऊमे उपस्थिति अधिक नही थी। उपस्थित मित्रोंने बहुमतसे प० जवाहरलालको चुन लिया।

अक्तूबरका महीना घटनापूर्ण था और अधिवेशनके पहले ही लार्ड इर्विन विलायत जाकर २५ अक्तूबरको लौट आये थे और उन्होने एक घोषणा भी कर दी थी। प० मोतीलाल नेहरूने पहली नवम्बरको दिल्लीमे कार्यसमितिकी जरूरी बैठक बुलायी। समितिके सदस्योके अतिरिक्त राजधानीमे अन्य दलोके नेता भी उक्त घोषणाको सुनने और उसपर सम्मिलित कार्रवाई करनेके लिए मौजूद थे।

जून १९२९ के अन्तमे इग्लैड के लिए रवाना होते हुए लार्ड इरविनने कहा था, "विलायत पहुँचकर मैं ब्रिटिश सरकारसे इन गम्भीर मामलोपर चर्चा करनेका अवसर ढूँढूँगा। जैसा मैं अन्यत्र कह चुका हूँ, जो लोग भारतीय राजनैतिक लोकमतके प्रतिनिधि है उनको भिन्न-भिन्न दृष्टियोंको ब्रिटिश सरकारके सम्मुख रखना मेरा कर्तव्य होगा।" इसके बाद उन्होंने अगस्त १९१७ की घोषणा और सम्राट्‌द्वारा दिये गये उनके नामके आदेशपत्रका हवाला दिया। इस आदेश-पत्रमे सम्राट्‌ने कहा था—"हमारी सर्वोपरि इच्छा और प्रसन्नता इसीमे है कि हमारे साम्राज्यका अग रहते हुए ब्रिटिश भारतको क्रमश उत्तरदायी शासनकी प्राप्तिके लिए पार्लियामेंटने जो योजना बनायी है वह इस प्रकार सफल हो कि हमारे उपनिवेशोमे ब्रिटिश भारतको भी अपने योग्य स्थान मिल जाय।"

इसे और भी स्पष्ट करते हुए घोषणामे लार्ड इरविनने कहा—"१९१९के सुधार-कानूनका अर्थ लगानेमे विलायत और भारत दोनो ही देशोमे ब्रिटिश सरकारकी इच्छाओ पर सन्देह किया गया है। इसलिए ब्रिटिश सरकारने मुझे यह स्पष्ट घोषित कर देनेका अधिकार दिया है कि १९१७ की घोषणामे यह अभिप्राय असंदिग्ध रूपसे है कि भारतको अतमे उपनिवेशका दर्जा मिले।"

उत्तरमे गाधीजीने कहा—"मैं तो सहयोग देनेको मर रहा हूँ। इसी हेतु पहला मौका हाथ आते ही मैने हाथ आगे बढा दिये। परन्तु जैसे मैं कलकत्ता-काग्रेसके प्रस्तावके प्रत्येक शब्द पर कायम हूँ, वैसे ही नेताओके इस सम्मिलित वक्तव्य पर भी अटल हूँ। इन दोनोमे कोई भी विरोध नही है। किसी भी दस्तावेजके शब्दोमे क्या धरा है, यदि भावनामे उसकी रक्षा हो जाय। यदि मुझे व्यवहारमे सच्चा औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय तो उसके विधानके लिए भी ठहर सकता हूँ। अर्थात् आवश्यकता इस बात की है कि हृदय-परिवर्तन सच्चा हो—अग्रेज लोग भारतको एक स्वतन्त्र और स्वाभिमानी राष्ट्रके रूपमे वस्तुतः देखना चाहें और भारतमे अधिकारी-मण्डलकी भावना सेवा-पूर्ण हो जाय। इसका अर्थ है सगीनोंके बजाय जनताके सद्‌भावकी स्थापना। क्या अग्रेज लोग अपने जान-मालकी रक्षाके लिए अपने किलेकी तोप-बन्दूकके स्थानो पर प्रजाके सद्‌भाव पर विश्वास रखनेको तैयार है? और यदि उनकी यह तयारी अभी नही है तो मुझे कोई औपनिवेशिक स्वराज्य सन्तुष्ट नहीं कर सकता। औपनिवेशिक स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यदि मैं चाहूँ तो आज ही ब्रिटिश साम्राज्यसे सबध-विच्छेद कर सकूँ। ब्रिटेन और भारतके पारस्परिक सबधोका निर्णय करनेमे जबरदस्ती जैसी कोई बात नही चल सकती।

आगे चलकर गाधीजीने लार्ड इरविनके सामने नीचे लिखी शर्तें रखी—

१. सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।

२ विनिमयकी दर घटाकर १ शिलिंग ४ पेंस रख दी जाय।

३. जमीनका लगान आधा कर दिया जाय और उसपर कौंसिलोका नियन्त्रण रहे।
४. नमक-कर उठा लिया जाय।
५. सैनिक-व्ययमे आरम्भमे ही कम-से-कम ५० फी-सदी कमी कर दी जाय।
६. लगानकी कमीको देखते हुए बडी-बडी नौकरियोके वेतन कम-से-कम आधे कर दिये जायँ।
७ विदेशी कपडेके आयातपर निषेध-कर लगा दिया जाय।
८. भारतीय समुद्रतट केवल भारतीय जहाजोके लिए सुरक्षित रखनेका प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय।
९. हत्या या हत्याके प्रयत्नमे साधारण ट्रिब्यूनलोद्वारा सजा पाये हुए लोगोके सिवा समस्त राजनैतिक कैदी छोड दिये जायँ, सारे राजनैतिक मुकदमे वापस ले लिये जायँ, १२४ 'अ' धारा और १८१८ का तीसरा रेगुलेशन उठा दिया जाय और सारे निर्वासित भारतीयोको देशमे वापस आ जाने दिया जाय।
१० खुफिया पुलिस उठा दी जाय, अथवा उसपर जनताका नियन्त्रण कर दिया जाय।
११. आत्मरक्षार्थ हथियार रखनेके परवाने दिये जायँ और उनपर जनताका नियन्त्रण रहे।

गाधीजीने यह भी कहा—"अन्य देशोके लिए स्वतन्त्रता-प्राप्तिके दूसरे उपाय भले ही हो। परन्तु भारतके लिए अहिसात्मक असहयोगके सिवा दूसरा मार्ग नही है। परमात्मा करे, स्वराज्यके इस मन्त्रको सिद्ध और प्रकट करने और स्वाधीनताकी लडाई जो निकट आ रही है, उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण करनेका बल और साहस वह हम सबको प्रदान करे।"

लाहौर-अधिवेशनमे जवाहरलालजी और उनके मित्रो तथा युवक साथियोंने स्वतन्त्रतापर पूरा जोर लगाया। बडे शानदार ढँगसे काग्रेस-अध्यक्षका जुलूस निकला। उसने सारे लाहौरमे एक जोशका माहौल खडा कर दिया। लाहौरके रास्तेमे हम लोगोको समाचार मिला कि वाइसराय साहबकी गाडीके नीचे बम फूटा और वाइसराय-भवनमे भारतकी आशाएँ पूर्ण हुई। हमने सोचा कि अब तो सबके लिए प्राणोकी बाजी लगाकर अपने-अपने कर्तव्यपर आरूढ होनेका समय आ पहुँचा है। इस प्रकार निकट भविष्यमे ही जी तोडकर लडनेका सकल्प आरम्भ हुआ।

उत्तर भारतके कडाकेके जाडोमे लाहौरका काग्रेस-अधिवेशन था। तम्बुओमे रहना प्रतिनिधियोंके लिए बडा कष्टप्रद सिद्ध हुआ। कार्यसमितिमे बैठे-बैठे बार-बार पैर गरम करने पड़ते, किन्तु यदि बाहर इतनी असह्य सर्दी थी तो भीतर

भावना और जोशकी गरमी कम न थी। सरकारसे समझौता न होनेपर रोष था। युद्धके बाजे सुन-सुनकर लोगोंकी भुजाएँ फड़क रही थीं। पंडित जवाहरलाल नेहरू जितने कम उम्र थे, उतने ही बड़े राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय नेता थे। उनका अभिभाषण क्या था, मानो उन्होंने अपने हृदयको उँडेलकर देशवासियोंके सामने रख दिया था। उनमें भारतके अपमानपर क्रोध भरा था। उसमें उन्होंने भारतको स्वतंत्र करनेकी योजनाको अपने स्पष्ट साम्यवादी आदर्शोंके साथ सफल करानेके अपने दृढ निश्चयको व्यक्त किया था।

सारे अधिवेशनका वातावरण उत्साह और उल्लाससे परिपूर्ण था। कलकत्ता-कांग्रेसमें औपनिवेशिक स्वराज्यके लिए सरकारको एक वर्षकी सूचना दी गयी थी। इस एक वर्षमें सरकारकी तरफसे तत्काल औपनिवेशिक स्वराज्यकी घोषणा का कहीं पता नहीं था। इसलिए सारे प्रतिनिधि कांग्रेसके ध्येयको पूर्ण स्वाधीनतामें बदलनेके लिए अधीर हो रहे थे। आखिर प्रारम्भिक कार्यवाहीके बाद यह प्रस्ताव पेश किया गया।

पूर्ण स्वाधीनताका प्रस्ताव

"औपनिवेशिक स्वराज्यके सम्बन्धमें ३१ अक्तूबरको वाइसराय साहबने जो घोषणा की थी और जिसपर कांग्रेस एवं अन्य दलोंके नेताओंने सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया था, उस सम्बन्धमें की गयी कार्य-समितिकी कार्यवाहीका यह कांग्रेस समर्थन करती है और स्वराज्यके राष्ट्रीय आन्दोलनको निपटानेके लिए वाइसराय महोदयकी कोशिशोंकी कद्र करती है। किन्तु उसके बाद जो घटनाएँ घटी हैं और वाइसराय साहबके साथ महात्मा गांधी, पं० मोतीलाल नेहरू और दूसरे नेताओंकी मुलाकातका जो नतीजा निकला है, उसपर विचार करनेपर कांग्रेसकी यह राय है कि सम्प्रति प्रस्तावित गोलमेज परिषद्में कांग्रेसके शामिल होनेसे कोई लाभ नहीं। इसलिए गत वर्ष कलकत्तेके अधिवेशनमें किये हुए अपने निश्चयके अनुसार यह कांग्रेस घोषणा करती है कि कांग्रेस-विधानकी पहली कलममें "स्वराज्य" शब्दका अर्थ "पूर्ण स्वाधीनता" होगा। कांग्रेस यह भी घोषणा करती है कि नेहरू-कमेटीकी रिपोर्टमें वर्णित सारी योजनाको खत्म समझा जाय। कांग्रेस आशा करती है कि अब समस्त कांग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्षकी पूर्ण स्वाधीनताको प्राप्त करनेमें ही लगायेंगे। चूँकि स्वाधीनताका आन्दोलन संगठित करना और कांग्रेसकी नीति को उसके नये ध्येयके अधिकसे अधिक अनुकूल बनाना आवश्यक है, इसलिए यह कांग्रेस निश्चय करती है कि कांग्रेसवादी और राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लेनेवाले दूसरे लोग भावी निर्वाचनोंमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई भाग न लें और कौंसिलों और कमेटियोंके मौजूदा कांग्रेसी मेम्बरोंको इस्तीफा देनेका आदेश देती है। यह कांग्रेस अपने रचनात्मक कार्यक्रमको उत्साहपूर्वक पूरा करनेके लिए

राष्ट्रसे अनुरोध करती है और महासमितिको अधिकार देती है कि वह जब और जहाँ चाहे, आवश्यक प्रतिबन्धोंके साथ सविनय-अवज्ञा और करबंदीतकका कार्य-क्रम आरम्भ कर दे।"

इसी अधिवेशनमें स्वाधीनताकी एक प्रतिज्ञा तैयार की गयी और सारे देशको आदेश दिया गया कि ता० २६ जनवरीको झण्डावन्दनके साथ वह हर गाँव और शहरमें पढी और दोहरायी जाय। प्रतिज्ञा इस प्रकार है

स्वाधीनताका घोषणा-पत्र

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रोंकी भाँति अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहें, अपने परिश्रमका फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन-निर्वाहके लिए आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हों जिससे हमें भी विकासका पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार यह अधिकार छीन लेती है और प्रजाको सताती है तो प्रजाको उस सरकारको बदल देने या मिटा देनेका भी अधिकार है। अंग्रेजी-सरकारने भारतवासियोंकी स्वतन्त्रताका ही अपहरण नहीं किया है, बल्कि उसका आधार भी गरीबोंके रक्त-शोषणपर है और उसने आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टिसे भारतवर्षका नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्षको अंग्रेजोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

"भारतकी आर्थिक बर्बादी हो चुकी है। जनताकी आमदनीको देखते हुए उससे बेहिसाब वसूल किया जाता है। हमारी औसत दैनिक आय सात पैसे है और हमसे जो भारी कर लिये जाते हैं उनका बीस फीसदी किसानोंसे लगानके रूपमें और तीन फीसदी गरीबोंसे नमक-करके रूपमें वसूल किया जाता है।

"हाथ-कताई आदि ग्रामोद्योग नष्ट कर दिये गये हैं। इससे सालमें कम-से-कम चार महीने किसान लोग बेकार रहते हैं। हाथकी कारीगरी जाती रहनेसे उनकी बुद्धि भी मन्द हो गयी। और जो उद्योग इस प्रकार नष्ट कर दिये गये हैं, उनके स्थानपर दूसरे देशोंकी भाँति कोई नये उद्योग जारी भी नहीं किये गये हैं।

"चुंगी और सिक्केकी व्यवस्था इस प्रकार की गयी है कि उससे किसानोंका भार और भी बढ गया। हमारे देशमें बाहरका माल अधिकतर अंग्रेजी कारखानोंसे आता है। चुंगीके महसूलमें अंग्रेजी मालके साथ साफ तौरपर पक्षपात होता है। इसकी आयका उपयोग गरीबोंका बोझा हलका करनेमें नहीं किया जाता, बल्कि एक अत्यन्त अपव्ययी शासनको कायम रखनेमें किया जाता है। विनिमयकी दर भी ऐसे स्वेच्छाचारी ढँगसे निश्चित की गयी है कि जिससे देशका करोड़ों रुपया बाहर चला जाता है।

"राजनीतिक दृष्टिसे भारतका दर्जा जितना अंग्रेजोंके जमानेमें घटा है, उतना

पहले कभी नहीं घटा था। किसी भी सुधार-योजनाने जनताके हाथमें वास्तविक राजनीतिक सत्ता नहीं आयी है। हमारे बडे-से-बड़े आदमीको विदेशी सत्ताके सामने सिर झुकाना पडता है। अपनी राय आजादीसे जाहिर करने और आजादीसे मिलने-जुलनेके हमारे हक छीन लिये गये हैं और हमारे बहुतसे देशवासी निर्वासित कर दिये गये हैं। हमारी शासनकी सारी प्रतिभा मारी गयी है और सर्वसाधारणको गाँवोंके छोटे-छोटे ओहदों और मुशीगिरीसे सन्तोष करना पडता है।

"संस्कृतिके लिहाजसे शिक्षा-प्रणालीने हमारी जड ही काट दी है और हमें जो तालीम दी जाती है, उससे हम अपनी गुलामीकी जंजीरोंको ही प्यार करने लगे हैं।

"आध्यात्मिक दृष्टिसे, हमारे हथियार जबर्दस्ती छीनकर हमें नामर्द बना दिया गया। विदेशी सेना हमारी छाती पर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी मुकाबलेकी भावनाको बडी बुरी तरहसे कुचल दिया है। उसने हमारे दिलोंमें यह बात बैठा दी है कि हम न अपना घर सम्हाल सकते हैं और न विदेशी आक्रमणसे देशकी रक्षा कर सकते हैं। इतना ही नहीं, चोर, डाकू और बदमाशोंके हमलोंसे भी हम अपने बाल-बच्चों और जान-मालको नहीं बचा सकते। जिस शासनने हमारे देशका इस प्रकार सर्वनाश किया है, उसके अधीन रहना हमारी रायमें मनुष्य और भगवान् दोनोंके प्रति अपराध है। किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हमें हिंसाके द्वारा स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। इसलिए हम ब्रिटिश सरकारसे यथासम्भव स्वेच्छापूर्वक किसी भी प्रकारका सहयोग न करनेकी तैयारी करेंगे और सविनय-अवज्ञा एवं कर-बन्दीतकके साज सजावेंगे। हमारा दृढ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलनेपर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सकें तो इस अनानुषी राज्यका नाश निश्चित है। अतः शपथपूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्यकी स्थापनाके हेतु कांग्रेस समय-समय पर जो आदेश देगी, उनका हम पालन करते रहेंगे।"

२६ जनवरी सन् १९३० को स्वाधीनताकी प्रतिज्ञा लेनेके बाद गांधीजी-का चेहरा गंभीर हो गया और वे स्वतन्त्रता-संग्रामकी रूपरेखा बनानेमें दत्तचित्त हो गये।

स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए जोरदार कदम उठानेकी आवाज चारों ओरसे आ रही थी। गांधीजीपर सबकी निगाह लगी हुई थी। देखें, अब देशको गांधीजी क्या नया कार्यक्रम देते हैं। कांग्रेसके विधिवत् अध्यक्ष या नेता कोई भी हो, वास्तविक नेता तो गांधीजी ही थे।

ता० ३१ की रातके बारह बजे पूर्ण-स्वाधीनताका प्रस्ताव पास होनेपर जवाहरलालकी खुशीका पारावार न रहा। वे और उनके कुछ साथी खुशीमें मस्त होकर नाचने लगे।

२५. ॐ स्वाहा : दांडी-कूच

(१९३०)

'सरपर कफन लपेटे कातिलको ढूंढते हैं।'

गाधीजीने घोषणा की कि अब असहयोग अत्यन्त अनिवार्य हो गया है। वे सोचने लगे कि सामूहिक कानून-भगके लिए कानूनका कौनसा मुद्दा लिया जाय। अंतमे वे इस निर्णय पर पहुँचे कि नमक-कानून तोडना अच्छा रहेगा।

जब यह बात खास-खास लोगोको मालूम हुई, तो लोग बडे चकराये और कहने लगे कि नमक-कानून तोडकर, यानी घर-घर नमक बनाकर, हमे स्वराज्य कैसे मिल जायेगा, और यहांसे अग्रेजोको कैसे हटा सकेंगे ?

इसीपर विचार करनेके लिए सम्भवत फरवरीमे काग्रेसकी बैठक साबरमतीमे बुलायी गयी। उसमे जिस विस्तारसे गाधीजीने नमक-कानून तोडनेका महत्त्व और तरीका समझाया, उसपर सब लट्टू हो गये। मोतीलालजीने कहा कि गाधीजी सचमुच जादूगर है। हमारी समझमे नही आ रहा था, मगर उन्होने हमारे सबके दिमागोपर कब्जा कर लिया।

गाधीजी सत्याग्रह-सग्रामके महान् सेनापति (डिक्टेटर) बनाये गये। १२ मार्चको उन्होंने अपने सहित आश्रमके चुने हुए अस्सी स्त्री-पुरुष सैनिकोके साथ दाडी-यात्रा प्रारम्भ की और ६ अप्रैलको दाडीके समुद्रतटपर बिना नमकका कर चुकाये थोडा-सा नमक अपनी झोलीमे भर लिया। उनके सब साथियोने भी ऐसा ही किया। गाधीजीके हाथो उस दिन नमक-कानून ही नही टूटा, साम्राज्यवादकी जडपर बडी जोरका कठोर आघात हुआ।

५ मईकी आधी रातको गाधीजीकी गिरफ्तारी हुई। पुलिस उन्हे अज्ञात स्थानपर ले गयी।

६ अप्रैलको दाडीमे गाधीजीके द्वारा नमक-कानून तोडना नमक-सत्याग्रह करनेकी हरी झडी था। सारे देशमे जगह-जगह काग्रसके नेताओने और स्वयसेवक स्त्री-पुरुषोने गैरकानूनी नमक बनाया और उसके फलस्वरूप सारे भारतकी जलें नमक-सत्याग्रहियोसे भर गयी।

लाहौर-काग्रेस, बल्कि उसके पहले कलकत्ता-काग्रेसके बादसे ही, और खास-कर, नमक-कानून तोडनेकी बात जबसे वातावरणमे फैली, लोग बडी गभीरता और जिम्मेदारीके साथ स्वतत्रता-सग्रामकी तयारीमे लग गये थे। वे अब पहलेसे अधिक अनुशासन सीख गये थे और सघर्षकी रूपरेखाको अधिक स्पष्ट रूपसे समझने लगे थे। उसकी कला भी अब कुछ-कुछ समझमे आ रही थी। किन्तु गाधीजीके दृष्टिकोणसे इससे भी बडी बात यह थी कि हर आदमी पूरी तरहसे समझ गया

था कि अहिंसाके लिए गांधीजीके हृदयमे एक जबर्दस्त सचाई और लगन है। इस सम्बन्धमे अब किसीको सन्देह नही रह गया था, जैसा कि दस साल पहले लोगोको था। इतनेपर भी यह निश्चय कैसे हो सकता था कि कही एकाएक या किसी षड्यन्त्रके फलस्वरूप हिंसा नही फूट पडेगी और यदि ऐसी कोई घटना घटी तो उसका आन्दोलनपर क्या प्रभाव पडेगा ? क्या पहलेकी तरह इस बार भी आन्दोलन सहसा बन्द कर दिया जायेगा ? यह सम्भावना सबसे ज्यादा घबराहट पैदा कर रही थी।

गांधीजीकी बातोंसे लगता यही था कि उनकी विचारधारामे कुछ परिवर्तन आ गया था। सविनय-अवज्ञाके आरम्भ हो जानेपर उसे किसी आकस्मिक हिंसक घटनाके कारण बन्द करनेकी आवश्यकता नही पडेगी। किन्तु अगर हिंसा किसी रूपमे आन्दोलनका ही अंग बन जाय, तो नि सदेह वह आन्दोलन एक शांतिपूर्ण आन्दोलन नही रह जायगा और उसकी कार्रवाइयोंको कम करना या बदलना होगा। गांधीजीके इस आश्वासनने बहुतोको काफी निश्चिन्त कर दिया था।

एकाएक 'नमक' एक रहस्यपूर्ण और प्रभावकारी शब्द बन गया था। दूसरी आश्चर्यजनक घटना गांधीजीकी "ग्यारह सूत्रों" की घोषणा थी। कुछ लोग मनमे सोचने लगे थे कि जब हम स्वतन्त्रताकी बातें कर रहे थे, तो थोडेसे राजनीतिक और सामाजिक सुधारोंकी सूची बनानेका क्या मतलब था, चाहे वे सुधार अच्छे ही क्यो न हो ? क्या 'स्वतन्त्रता' शब्दका प्रयोग करते समय गांधीजीका भी वही मतलब हुआ करता है, जो हमारा है ? किन्तु बहस करनेके लिए समय ही कहाँ था ? घटनाका क्रम प्रारम्भ हो गया था। भारतमे तो घटनाएँ हमारी आँखोंके सामने ही राजनीतिक रूप धारण कर दिन-पर-दिन आगे बढ रही थी। भारतसे बाहर संसारके अन्य देशोंमे भी वह तेजीसे बढ रही थी, चीजोकी कीमतें गिर रही थी। शहरवाले अतिशय लाभका संकेत समझकर प्रसन्न हो रहे थे, किन्तु किसान और आसामी उसे घबराहटके साथ देख रहे थे। ऐसे वातावरणमे गांधीजीने दाण्डी-यात्रा शुरू की थी।

श्री जवाहरलाल लिखते है—"हम उनसे दाण्डी-यात्रामे मिलने गये। उस समय वे अपने जत्थेके साथ जम्बूसर पडावमे थे। वहाँ हम उनके साथ कुछ घंटे रहे, जिसके बाद वे दलबल सहित खारे समुद्रकी यात्राके अगले पडावकी ओर चल दिये। उस रूपमे मेरे लिए उनकी वह अंतिम झलक थी। हाथमे एक लाठी लिये वे अपने अनुयायियोंके आगे-आगे मजबूत कदम और शांतिपूर्ण किन्तु स्थिर दृष्टिसे चल रहे थे। निश्चय ही वह दृश्य हृदयको हिला देनेवाला था।

"ऐसा मालूम होता था, मानो सहसा बसंत छा गया। देशके शहर-शहर और गाँव-गाँवमे नमक बनानेकी चर्चा थी और नमक तैयार करनेके लिए बडे विचित्र तरीके काममे लाये जा रहे थे। इस सम्बन्धमे हम जानते तो बहुत ही कम

थे, [illegible] नमक होता था, यहाँसे कुछ पढ-पढाकर परचे बाँट-बाँटकर [illegible] थे। [illegible] और [illegible] करते थे और अन्तमे थोडा-बहुत [illegible] थे। उनीको हम विजय-उन्मादमे उठाये फिरते थे और [illegible] कर देते थे। चीज अच्छी तैयार हो रही है या बुरी, [illegible] नहीं था। असली काम मनहूस नमक-करको तोडना था और [illegible] मिले, चाहे हमारेद्वारा तैयार किया गया नमक हलके [illegible] था।

“जब हमने देखा कि जनतामे अगाध उत्साह है और नमक बनानेका काम घासकी आगकी तरह फैलता जा रहा है, तो हमे इस बातपर लज्जा आयी कि जब गाधीजीने पहले-पहल नमक बनाकर नमक-कानूनको भग करनेका प्रस्ताव रखा था, तो हमने उनकी कार्यक्षमतापर शका प्रकट की थी। अब हम उनके जनताको प्रभावित करने और उससे सगठितरूपमे काम करानेके आश्चर्यजनक कौशलको देखकर स्तम्भित रह गये।

‘सन् १९३० का वह साल नाटकीय स्थितियो और जोश दिलानेवाली घटनाओंसे भरा हुआ था। हमे सबसे अधिक आश्चर्य गाधीजीकी समस्त जनताको प्रभावित और उत्साहित करनेकी विस्मयकारी शक्तिपर हुआ। उनमे मानो एक मोहिनी थी और हमे गोखलेके उन शब्दोका स्मरण हो आया, जिनका उन्होने एक बार गाधीजीके लिए प्रयोग किया था। उन्होने कहा था कि इनमे मिट्टीके लोंदेसे बडे-बडे बहादुरोंका निर्माण करनेकी शक्ति है।”

राष्ट्रीय उद्देश्योकी पूर्तिके लिए एक कार्य-प्रणालीके रूपमे शात सविनय-अवज्ञा आन्दोलन अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुका था और देशभरमे—मित्रो और शत्रुओ, दोनोंके हृदयमे—यह मौन विश्वास उत्पन्न हो गया कि हम विजयकी ओर बढ रहे हैं। जो लोग आदोलनमे सक्रिय भाग ले रहे थे, उनमे एक विचित्र उत्तेजना भरी हुई थी और यह कुछ-कुछ जेलोंतकमे पहुँच गयी थी। साधारण कैदी कहते थे—“स्वराज्य आ रहा है।” और इस स्वार्थपूर्ण आशामे कि इससे उन्हे भी कुछ लाभ होगा, वे बेचैनीके साथ उसकी प्रतीक्षा करते रहे। जेलवाले भी बाजारकी चर्चाओंको सुनकर यह उम्मीद करने लगे थे कि स्वराज्य निकट है। जेलके छोटे-छोटे अधिकारी कुछ ज्यादा परेशान दिखाई देने लगे थे।

गाधीजीका यह नियम था कि सविनय-अवज्ञा जैसा कोई भी बडा कदम उठानेसे पहले सरकारसे एक बार फिर अपील करते थे कि सरकार अब भी काग्रेसकी माँगोपर विचार करे ताकि कानून-भग जैसा अप्रिय कदम उठानेकी जरूरत पैदा न हो। तदनुसार उन्होने इस बार भी अपने आगेके कार्यक्रमके बारेमे सूचना देते हुए लार्ड इरविनको एक विस्तृत पत्र लिखा। इस पत्रमे लाहौर-काग्रेसद्वारा स्वीकृत पूर्ण-स्वाधीनताके प्रस्तावका उद्देश्य वाइसरायके सामने रखते हुए, जिन अभावो,

अन्यायों और जुल्मोके कारण काग्रेसको यह प्रस्ताव स्वीकृत करना पड़ा, उन्हें दूर करनेकी अपील करते हुए, अतमे लिखा

"अहिंसापर मेरा व्यक्तिगत विश्वास सर्वथा स्पष्ट है। जानबूझकर मैं किसी भी प्राणीको दु ख नही पहुँचा सकता, मनुष्योको तो दु ख पहुँचानेकी बात ही नहीं, भले ही वे मेरा या मेरे स्वजनोंका कितना ही अहित कर दें। अत जहाँ मैं ब्रिटिश राजको अभिशाप समझता हूँ, वहाँ मैं एक भी अग्रेज या भारतमे उसके किसी भी उचित स्वार्थको नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता।

"राजनीतिक दृष्टिसे हमारी स्थिति गुलामोंसे अच्छी नहीं है। हमारी सस्कृति-की जड ही खोखली कर दी गयी है। हमसे हथियार छीनकर हमारा सारा पौरुष अपहरण कर लिया गया है। हमारा आत्मबल तो लुप्त हो ही गया था, हम सबको नि शस्त्र करके कायरोंकी भाँति नि सहाय और निर्बल बना दिया गया।

"सविनय-अवज्ञाकी योजना उपर्युक्त बुराइयोंके मुकाबले के लिए है। ब्रिटिश सम्बन्ध-विच्छेद तो हम उन्ही बुराइयोके कारण करना चाहते हैं। इनके दूर हो जानेपर हमारा मार्ग सुगम हो जायगा। उस समय मित्रतापूर्ण समझौतेका द्वार खुल जायगा। यदि ब्रिटेनके भारतीय व्यापारमेसे लोभका मैल निकल जाय, तो आपको हमारी स्वाधीनता स्वीकार कर लेनेमे कुछ भी मुश्किल नहीं होगी। मैं आपसे आदरपूर्वक अनुरोध करता हूँ कि इन बुराइयोको दूर करनेका मार्ग सुगम बनाइये और इस प्रकार वास्तविक परिषद्के लिए अनुकूलता पैदा कीजिये। यह परिषद् बराबरीके लोगोकी होगी, जिनका हेतु एक ही होगा। वह यह कि स्वेच्छापूर्वक मित्रताका सम्बन्ध रखकर मानव-जातिकी भलाईका उद्योग किया जाय और उभय पक्षको ध्यानमे रखकर पारस्परिक सहायता एव व्यापारकी शर्तें की जायें। दुर्भाग्यवश इस देशमे साम्प्रदायिक झगडे अवश्य हैं, किन्तु आपने उनपर जरूरतसे ज्यादा जोर दिया है, यद्यपि किसी भी शासन-सम्बन्धी योजनामे इस समस्यापर विचार करना महत्त्वपूर्ण बात है, फिर भी इससे भी बडी-बडी अन्य समस्याएँ हैं जो कौमी झगडोंसे परे है और जिनके कारण सब जातियोको समान-रूपसे हानि उठानी पडती है। अस्तु, यदि आप इन बुराइयोको दूर करनेका उपाय नही कर सकेंगे और मेरे पत्रका आपके हृदयपर असर नही होगा, तो इस मासकी ११ तारीखको मैं आश्रमसे उपलब्ध साथी लेकर नमक-कानून तोडनेके लिए चल पडूँगा। गरीबोंकी दृष्टिसे मैं इस कानूनको सबमे अन्यायपूर्ण समझता हूँ। स्वाधीनताका यह आन्दोलन मूलत गरीबसे गरीबकी भलाईके लिए है। इसलिए इस लडाईकी शुरुआत भी इसी अन्यायके विरोधसे होगी। आश्चर्य तो इस बातपर है कि हम इतने दीर्घकालतक नमकके इस निर्दय एका-धिकारको सहन करते रहे। म जानता हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्न-को विफल कर सकते है। उस दशामे मुझे आशा है कि मेरे पीछ हजारो आदमी

नियमितरूपसे यह काम सँभालनेको तैयार होंगे और नमक-कानून जैसे घृणित कानूनको, जो कभी बनना ही नही चाहिए था, तोडनेके कारण जो सजाएँ दी जायँगी, उन्हे वे खुशी-खुशी बर्दाश्त करेंगे ।"

इस चिट्ठीको रेजिनाल्ड नामक अंग्रेज युवक दिल्ली ले गये। ये भाई कुछ समयतक आश्रममे रह चुके थे ।

गाधीजीके इस पत्रको जनता और अखबारोने 'अंतिम चेतावनी'का नाम दिया था। लार्ड इरविनका उत्तर भी तुरन्त और साफ-साफ मिला। वाइसराय साहबने खेद प्रकट किया कि गाधीजी ऐसा काम करनेवाले हैं, जिससे निश्चित रूपसे कानून और सार्वजनिक शान्ति भग होगी। गाधीजीका प्रत्युत्तर भी उनके योग्य ही था। वह सच्चे सत्याग्रहीके एकमात्र कवच विनय और साहसकी भावना से कूट-कूटकर भरा था। उन्होने लिखा, "मैंने दस्तबस्ता रोटीका सवाल किया था और मिला पत्थर! अंग्रेज जाति सिर्फ शक्तिका ही लोहा मानती है। इसलिए मुझे वाइसराय साहबके उत्तरपर कोई आश्चर्य नही है। हमारे राष्ट्रके भाग्यमे तो जेलखानेकी शान्ति ही एकमात्र शान्ति है। सारा भारत ही एक विशाल कारागृह है। मैं इस अंग्रजी कानूनको माननेसे इनकार करता हूँ और इस जबर्दस्तीकी शान्ति 'मनहूस एकरसता' को भग करना अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ, इस शान्तिसे राष्ट्रका गला रुँधा हुआ था। अब उसके हृदयका चीत्कार होना चाहिए।"

इस अवसरपर अमेरिकाके एक महान् आस्तिक वीर थियोडोर पार्करकी याद आ जाती है—

"वहाँकी दासप्रथाके मिटानेमे वे विश्वविभूति बन गये थे। उस समयके धर्मशास्त्रियोने पार्करको शास्त्रार्थके लिए चुनौती दी। मित्रोंने उन्हें बचनेकी सलाह दी और उन्हे अपने मकानमे बन्द कर दिया। उनके शत्रुओंने सामने आनेपर मार डालनेकी धमकी दी और इस प्रकार छिपनेपर कायरताका लाछन लगाया। पर पार्कर तो अचानक सभामे आ उपस्थित हुए और व्याख्यान मचपर जा पहुँचे! बोले : 'मार सकते हो तो मारो। मेरे खूनकी एक-एक बूँदमे हजारो पार्कर जन्म लेगें और दासोको मुक्त कराकर छोडेंगे।' विरोधियोंके हाथ-पैर ठडे पड़ गये। सभा भग हो गयी।"

२६. आजादीकी सही भूमिका

(१९३०-'३१)

'ज्यो-ज्यो वह गया दबाया, त्यो-त्यो ही ऊपर आया'

१९३० के आसपास सारे देशमे एक दूसरी हवा चल रही थी। लोग तैयार थे कि अब कुछ किया ही जाना चाहिए। कांग्रेसके सारे कार्यक्रम इस बातपर जोर दे रहे थे कि हमें अब सक्रिय हो जाना चाहिए। गाधीजीने सविनय-अवज्ञाका नारा दिया और इस बातमे पूरी आस्था बतायी कि अहिंसाका रास्ता ही एकमात्र रास्ता है, जो देशको आजादी दिला सकता है। इसके पहले जगह-जगह हड़तालें हो रही थी, लेकिन सबके मनमे गाधीजीके प्रति पूरी आस्था थी। साबरमतीमे हुई बैठकमे यह तय किया गया कि 'नमक-भण्डारोपर धावा बोला जाये।' अधिकाश लोग इस बातका उपहास करने लगे कि नमक भी धावेकी चीज है क्या? लेकिन इस गरीब देशके लिए उन दिनो 'नमक' प्रतीक हो गया था। हर आदमीकी जबानपर 'नमक' का नाम था। गाधीजीने लोगोको समझाया कि सरकार सारी निष्ठुरताका उपयोग करेगी। वह हमे कुचल देना चाहेगी, लेकिन अहिंसा और विनयका मार्ग हमें नही छोडना है। सिरपर डण्डे बरसें तो सहो, अगर घायल हो जाओ और मर भी जाना पडे तो वह आहुति है। उसके लिए मनमे दुःख नहीं होना चाहिए। गाधीजीने पहले ही बतला दिया कि नेताओंके गिरफ्तार हो जानेपर क्या किया जाना चाहिए। सारा कार्यक्रम इस तरह बनाया गया था कि नमक-कानून-को तोडनेमें हुई गिरफ्तारियोसे आन्दोलन किसी भी स्थितिमे रुके नही। यह सच था कि नमकके लिए आन्दोलन एक नैतिक आन्दोलन था और वह माध्यम था जिसे लेकर शासनको खुली चुनौती दी गयी थी। नमक-कानून तोडनेके आन्दोलनमें नमकका उतना महत्त्व नही था, जितना महत्त्व था सविनय-अवज्ञा का।

लार्ड इरविनको गाधीजीने एक लम्बा पत्र भेजा कि ब्रिटिश सरकार इस देशको कीचडमे सान रही है। सारा देश भयकर खर्चके दौरमेसे गुजर रहा है और सारा खर्च विदेशियोंके लिए किया जा रहा है। उस पत्रमे कहा गया था "स्वाधीनताका

आन्दोलन मुख्य गरीब-से-गरीबकी भलाईके लिए है। इसलिए इस लडाईकी शुरुआत भी इसी अन्यायके विरोधसे होगी। आश्चर्य तो इस बातपर है कि हम इतने लम्बे समयसे नमकके इस निर्दय एकाधिकारको सहन करते रहे। मैं जानता हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्नको विफल कर सकते हैं। उस दशामे मुझे आशा है कि मेरे पीछे हजारो आदमी नियमित रूपमे यह काम सम्हालनेको तैयार होगे। नमकके घृणित कानूनको तोडनेके कारण जो सजाएँ दी जायेगी, उन्हें वे खुशी-खुशी बर्दाश्त करेंगे।"

गांधीजीके शब्दोमे ताकत थी और एक ऐसी हार्दिकता कि देशका हर आदमी उस समरमे कूदनेकी इच्छा करने लगा था। जब वाइसरायने उनके पत्रको मात्र धमकी समझा तो कूचकी तैयारी होने लगी। इतिहासमे पहली बार सारी दुनियाकी आँखें इस अवज्ञा-आन्दोलनपर लगी। देश-विदेशके पत्रकार यह जाननेको उत्सुक थे कि उस ब्रिटिश सरकारसे कैसे लोहा लिया जाता है जिसके राज्यमे कभी सूर्य नही डूबता और सो भी अहिंसा, विनय और अवज्ञाके माध्यमसे, मुट्ठीभर लोगोको साथ लेकर नमक जैसी साधारण वस्तुके लिए!

१२ मार्च १९३० की सुबह यात्रा शुरु हुई। गाधीजीके साथ आश्रमके ७९ साथी थे। वह कूच केवल दाण्डीतकके लिए नही था, वह तो पूर्ण आजादीतकके लिए था। जगह-जगह लोग सरकारी नौकरियोसे इस्तीफा देने लगे। एक चिनगारी देश-भरमे फैल गयी। गाधीजी जैसे-जैसे आगे बढते, लोग उन्हे घेर लेते, उनकी बाते सुनते। इस विधिसे लोग एक झण्डेके नीचे आते गये। ब्रिटिश सरकारको एक चुनौती मिली कि गोला-बारूद ही सब-कुछ नही है, उससे बडा हथियार है सत्याग्रह। देशके लोग अपनी इच्छासे सत्याग्रहके प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर करने लगे। गाधीजीने लोगोको बतला दिया था कि "अगर वे गिरफ्तार हो जायें तो लोगोको क्या करना चाहिए। उन्होने कहा कि जो आदमी एक बार आन्दोलनमे शरीक हो जाये, वह फिर उससे अलग न हो। समय अपने आप उत्तराधिकारी देता रहेगा और सत्याग्रहमे अगर बल है तो हिंसाको एक दिन झुकना ही होगा।"

यात्रा कोई दो सौ मीलकी थी—साबरमतीसे दाण्डीतककी, जहाँ पहुँचकर गाधीजी नमक-कानून तोडनेवाले थे। कूचके बीच ही गाधीजीने घोषणा की—"आजादी नही मिली तो रास्तेमे मर जाऊँगा या आश्रमके बाहर रहूँगा। नमक-कर न उठा सका तो आश्रम लौटनेका भी कोई इरादा नही है।"

२४ दिनके बाद गाधीजी दाण्डी पहुँचे। समुद्रतटपर गाधीजीने नमक-कानून तोडा और कहा. "नमक-कानून तोडा जा चुका है। अब जो कोई सजा भुगतनेको तैयार हो वह जहाँ चाहे और जब सुविधा देखे नमक बना सकता है।"

जगह-जगह सभाएँ हुईं। पूना, कराची, मद्रास, शोलापुर, कलकत्ता, दिल्ली

—हर जगह लोग अगली कार्यवाहीके लिए अधीर हो रहे थे। गांधीजीने घोषणा की कि अब धारासणाका नमक-भण्डार लूटा जायेगा। वाइसरायको पत्र लिखकर उन्होंने बतला दिया कि या तो वे नमक-कर उठा लें या सत्याग्रहियोंकी गिरफ्तारी करें या मनचाहा गुण्डापन दिखायें। उत्तरमें ५की रातको गांधीजीको गिरफ्तार करके यरवदा भेज दिया गया। जाते हुए वे लिखवा चुके थे—"यदि इसे शुभारम्भ मान लिया जाये तो पूर्ण स्वराज्य मिले बिना नहीं रहेगा।" वे बोले—"मुट्ठी टूट भले जाये, लेकिन खुलनी नहीं चाहिए।"

सभाएँ हुईं। हड़तालका तांता लग गया। जुलूस निकले। विदेशोंमें रहनेवाले भारतीय सहानुभूति बतानेके लिए हड़ताल करने लगे।

अगले नेता थे अब्बास तैयबजी। वे १२ अप्रैलको गिरफ्तार हुए। एकके बाद दूसरा दल धावा बोलने जाता था। वे लोग टोलियोंमें शान्तिपूर्वक आगे बढ़ते थे और बगैर किसी विरोधके पुलिसकी मार सहते थे। जगह कांटोंसे घेर दी गयी थी और सिपाही निष्ठुरतम व्यवहार कर रहे थे। लोगोंके हाथ-पैर टूट गये, सिर फूट गये, वे बेहोश होकर वहीं गिर गये, लेकिन किसीने उफ् तक नहीं की! तैयबजीके बाद सरोजिनी देवीने नेतृत्व किया। धारासणाके बाद बडालापर हमला बोला गया। वहाँ कोई ४०० सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिये गये। हजारोंकी संख्यामें लोग जेलोंमें ठूँस दिये गये। 'न्यू फ्रीमैन' के संवाददाताने लिखा था—"धारासणा-जैसे पीडादायक दृश्य मेरे देखनेमें नहीं आये। कभी-कभी तो ये इतने दुखद हो जाते कि क्षण-भरको आँखें फेर लेनी पड़ती थीं। स्वयंसेवकोंका अनुशासन अद्भुत था। लगता था कि इन लोगोंने गांधीजीकी अहिंसाको घोलकर पी लिया है।"

यह था दमन-चक्र। १४ अप्रैलको जवाहरलालको भी बन्द कर दिया गया। सजाएँ कठोर होने लगीं। सत्याग्रहके साथ बहिष्कारवाले आन्दोलनने भी जोर पकड़ा। फिर यह प्रस्ताव आया कि कांग्रेस किन शर्तोंपर गोलमेज परिषद्में शामिल हो सकती है। गांधीजीकी कई शर्तें थीं और लार्ड इरविनके साथ उनकी लम्बी बातचीत चलती रही। जब २६ जनवरीको कांग्रेस कार्य-समितिके सदस्योंकी रिहाई हुई तो गांधीजीने कहा—"मैं शान्तिके लिए नरम रहा हूँ, लेकिन अपने किसी अधिकारको छोड़ना नहीं चाहूँगा।" उन्होंने यह भी कहा कि "गोलमेज परिषद्की पेडका निर्णय उसके फलसे ही होगा।" इस बीच न तो सरकारका दमन रुका, और न ही कांग्रेसका बहिष्कार-आन्दोलन। लम्बी बातचीतके बाद ५ मार्च १९३१ को गांधी-इरविन समझौता हुआ। इसके अनुसार सारे कैदियोंको छोड़ दिया गया और आन्दोलन-सम्बन्धी आर्डिनेन्स हटा लिये गये। बदलेमें यह चाहा गया था कि सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन बन्द कर दिया जायेगा।

ठीक उसके बाद कराचीमें कांग्रेस-अधिवेशन हुआ। एक ओर जहाँ सविनय-

अवज्ञा-आन्दोलनके स्वयसेवक छूट रहे थे, वही भगतसिंह और उनके साथियो-को फाँसीकी सजा दी गयी थी। करांचीमे उदासी फैली हुई थी। गाधीजी जब वहाँ पहुँचे तो उन्हे काले गुलाब भेंट किये गये।

गाधी-इरविन समझौता कोई बहुत बडी खुशीका कारण नही था, लोग उसे एक तरहकी असफलता मान रहे थे। ५ अप्रैलको गाधीजीकी गिरफ्तारीके दिन जो उत्साह था, वह ठण्डा पडता जा रहा था। विदेशी वस्त्रोकी होली जलानेमे या इन चीजोकी पिकेटिंग करनेमे जनताकी जितनी रुचि थी, उतनी सरकारके साथ समझौतेमे नही। गाधी-इरविन समझौतेमे दोनो पक्षोकी ओरसे सम्मानजनक कोशिश थी कि कोई रास्ता निकाला जाये, लेकिन जो देश पूर्ण स्वराज्यको अपना लक्ष्य बना चुका हो, वह छोटी-छोटी बातोसे कमी सन्तुष्ट नही हो सकता है।

भारतीय स्वतन्त्रताके इतिहासमे नमक-आन्दोलन और दाण्डी-यात्राका उज्ज्वल महत्त्व है। इस आन्दोलनने साबित कर दिया कि सत्य, अहिंसा और सविनय-अवज्ञामे एक छिपी हुई ताकत है, जो हिंसात्मक कार्यवाहीको भी झुका सकती है। यह आन्दोलन इस बातमे समर्थ हुआ कि देशकी कुर्बानीके लिए सारी जनता तैयार है और आजादीके लिए कुछ भी कर गुजरना हर देशवासीका धर्म है। नमक-आन्दोलनके समय जिस तरह स्वयसेवकोने वीरताका प्रदर्शन किया, वह शहीदोकी अनहोनी गाथा है। बहिष्कार जैसे अनमोल अस्त्रका इस बार ही खुलकर प्रयोग किया गया। गाधीजीने कहा था "इस आन्दोलनका सचालक मैं नही, परमात्मा है। वह इसके हृदयमे निवास करता है। इसमे श्रद्धा होगी तो वह अवश्य रास्ता दिखायेगा।" जिस तरहका विश्वास गाधीजीके मनमे था, वैसा ही विश्वास जनताके मनमे भी जनमा था। लोगोको आशा बँध चली थी कि अहिंसात्मक मार्ग ही हमे स्वराज्यकी ओर ले जायेगा।

डेली हेरल्डके श्री स्लोकोम्बने लिखा था "गाधीजी जेलमे क्या बन्द है कि भारतकी आत्मा बन्द है, यह मजूर कर लेनेसे अब भी असीम हानि टाली जा सकती है।"

गाधीजीको इस आदोलनसे एक तरहका मत्र ही हाथ लग गया था—"सत्याग्रह शास्त्रके अनुसार सत्ताधारी कानूनकी रक्षाके नामपर जितना अधिक दमन और अपने ही बनाये कानूनोका भग करेंगे, सत्याग्रही उतने ही अधिक कष्टोको आमन्त्रण देंगे। स्वेच्छापूर्वक सहन किया जाय तो जितना अधिक कष्ट-सहन, उतनी ही निश्चित सफलता।"

२७. गांधीजी इंग्लैंडमें

(१९३१)

[१]

'नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन।
इति महति विरोधे भासमाने समाने
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता॥'

(जो राजकर्ताओका पक्ष लेता है उसे लोग बुरा कहने लगते है, जो जनता हित-साधन करता है, उससे शासक-वर्ग कुढ जाता है। इस प्रकारकी परस्पर विरो भावनाओमे ऐसा कार्यकर्ता दुर्लभ होता है, जो राजकर्ता और जनता दोनोमे प्रि हो, जो दोनोका हित साधता हो।)

भारतमे नमक-सत्याग्रह अपने पूरे जोरपर था, तब भारतमे नरमदलके ने बडे असमजसमे पड गये। वे यह तो अनुभव करते थे कि सरकार बडा जुल्म कर रही है, परन्तु स्वय उसके विरुद्ध वे सत्याग्रहमे शरीक नही हो सकते थे। अत उन्होंने सरकारपर जोर डाला कि देश सुख-शान्तिकी दिशामे बढे, इसके लिए सरकारको कुछ करना चाहिए। स्वय सरकार भी सत्याग्रहके कारण बढती हुई अशातिमे परेशान थी। नि शस्त्र सत्याग्रहियोपर होनेवाले जुल्म छिपे नही रह सकते थे। ससारका लोकमत सरकारके विरोधमे तेजीसे बढता जा रहा था। अत इस अशातिको दूर करनेके लिए इग्लैंडमे ब्रिटिश सरकारने 'गोलमेज परिषद्' के नामपर एक परिषद्का आयोजन किया। इसमे ब्रिटिश प्रधानमत्रीने स्थूल रूपसे यह बताया था कि उनकी सरकार भारतको कैसे सुधार देना चाहती है। परन्तु चूंकि इस परिषद्मे देशके सच्चे प्रतिनिधि नही थे, इसलिए उसकी कार्यवाही प्राथमिक चर्चातक ही सीमित रही। स्वय ब्रिटिश सरकारने भी उसकी निरर्थकता को समझकर यह जाहिर किया कि जो लोग सविनय-अवज्ञामे लगे है, वे भी इस परिषद्मे भाग ले सकें तो अच्छा हो। यह घोषणा १९ जनवरी १९३१ को हुई और इस दिशामे अपनी तरफसे अनुकूलता करनेकी दृष्टिसे सरकारने पहले काग्रेस कार्य-समितिके सदस्योसहित गाधीजीको और बादमे सारे सत्याग्रहियोको भी रिहा कर दिया। तथाकथित गाधी-इरविन समझौतेके अनुसार सत्याग्रह स्थगित हुआ और काग्रेसके एकमात्र प्रतिनिधिके रूपमे गाधीजी दूसरी गोलमेज परिषद्मे भाग लेनेको इग्लैंडके लिए विदा हुए।

ता० १२ सितम्बरको गाधीजी जहाजसे इग्लैंड पहुंचे, परन्तु तीर्थोके पण्डोकी

भांति इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशोके पत्रकार बहुत पहलेसे उनके साथ जहाजपर आ गये थे और उनके पत्रोमे गांधीजीके बारेमे अनेक प्रकारके झूठे-सच्चे समाचार प्रकाशित होने लगे थे।

लन्दनमे सबसे पहले गांधीजीका स्वागत 'फ्रेण्ड्स हाउस' मे हुआ। उनका स्वागत करते हुए श्री लारेन्स हाउसमनने कहा "आप धर्म और राजनीतिके मेलके हामी है। इस चीजको बहुत कम लोग समझ पाते है। हमारे आजके दैनिक जीवनका एक वाक्यमे वर्णन करना चाहे तो कह सकते है, 'गिरजेमे हम सब पापी है और राजनीतिमे हमे छोडकर शेष सब।' इस प्रकार आप हमे आत्म-निरीक्षणकी प्रेरणा देते है। विलक्षण पुरुष है आप। हमे तो अजीब लगते ही है, अपने लोगोको भी आप ऐसे ही लगते होगे। इतने सीधे-सच्चे आप है कि हम तो आपकी बाते सुनकर चक्करमे पड जाते है।"

स्वागतमे सभी वर्गोके लगभग एक हजार स्त्री-पुरुष थे। गांधीजीने अपने उत्तरमे काग्रेसका सन्देश सुनाया और भारतके नगे-भूखोका खयाल रखनेका उनसे अनुरोध किया।

लन्दनमे गांधीजी सरकारद्वारा निश्चित किसी स्थानमे नही, अपनी शिष्या-कुमारी म्यूरियल लिस्टरके साथ मजदूर-बस्तीके किंग्स्ले हॉलमे ठहरे—

दुर्योधनको मेवा त्यागो, साग विदुर घर खाई।

गोलमेज-परिषद्से गांधीजीको कोई खास आशा नही थी, क्योकि सरकारकी नीयतका कुछ-कुछ अदाज उन्हें भारतमे ही सरकारी अधिकारियोके रुखसे और गांधी-इरविन समझौतेका जिस प्रकार पालन तथा भग हो रहा था, उससे हो गया था। अन्तमे वे खाली हाथ ही लौटे भी। सत्याग्रहीको समझौतेका कोई अवसर अपने हाथसे जाने नही देना चाहिए और अपनी तरफसे समस्याको सुलझानेमे कोई कोर-कसर नही रखनी चाहिए, इस उद्देश्यसे गांधीजी इंग्लैंड गये थे। इसके अतिरिक्त सरकारने वहाँ जो अनेक झूठी बाते फैलाकर जनताको भ्रममे डाल रखा था, उसे भी दूर करना था। इसलिए इस अवसरका उन्होंने पूरा-पूरा लाभ उठाया। परिषद्-के लिए सुबहसे वे निकलते तो रातके बारह-बारह एक-एक बजेतक लौटते। परि-षद्के बादका सारा समय वहांके लोगोको भारतकी—काग्रेसकी—बात समझाने और उनकी शकाओ और भयका निवारण करनेमे ही बिताते।

परिषद्का मुख्य काम सघ-विधायक-समिति और अल्पसख्यक-समितिने किया। गांधीजी दोनोके सदस्य थे। वे हर महत्त्वके विषयपर बोले और इसके प्रमाणमे उस विषयपर काग्रेसके प्रस्तावोका आधार बताते रहे।

जातीय और साम्प्रदायिक चर्चाओमे गांधीजीका रुख बडा दृढतापूर्ण रहा। परन्तु सारी वैधानिक और खानगी चर्चाएँ निष्फल रही। तीन-तीन बार बैठकोको

स्थगित करना पडा और अन्तमे अल्पसख्यकोकी समितिने सूचना भेज दी कि वह किसी निर्णयपर नही पहुँच सकी है। डॉ० अम्बेडकर दलित जातियोके लिए पृथक् निर्वाचन चाहते थे। सिखोको छोडकर अन्य सब अल्पसख्यकोका उनको समर्थन था। डॉ० अम्बेडकरने यह भी बताया कि दलित जातियोको इस बातकी कोई चिंता नही है कि ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानियोके हाथोमे सत्ता सौप दे। उन्होने न तो कभी इसकी माँग की और न आन्दोलन। सिखो और मुसलमानोने कहा कि जबतक इस जातीय तथा साम्प्रदायिक प्रश्नका निर्णय नही हो जाता, तबतक वे सघयोजनाको अपनी स्वीकृति नही दे सकते। आगाखाँ इन सब अल्प-सख्यक लोगोका नेतृत्व कर रहे थे। प्रधानमत्रीको उन्होने इन सभी अल्पसख्यकोकी तरफसे एक स्मृति-पत्र दिया, जिसमे इनके लिए वैधानिक अधिकारोके साथ-साथ जातीय प्रतिनिधित्वके आधारपर पृथक् निर्वाचन और नागरिक अधिकारोकी माँग की। गाधीजीने समितिके अध्यक्षको सूचित कर दिया कि जहाँतक हिन्दू, सिख और मुसलमानोका सबध है, वहाँतक तो वे प्रधानमत्रीका निर्णय मान्य कर लेंगे और काग्रेसको सिफारिश कर देंगे कि वह भी उसे स्वीकार कर ले। परन्तु आगाखाँ, जिन्ना, शौकतअली और इकबालने घोषित कर दिया कि जबतक सभी अल्प-सख्यकोके हस्ताक्षर नही हो जायेंगे, वे किसी निर्णयको स्वीकार नही करेंगे।

ता० १७ नवम्बरको मैकडोनाल्डने अल्पसख्यकोंके उपर्युक्त निर्णयको विधि-वत् मजूरी दे दी। इसमे दलित जातियोके लिए भी पृथक् निर्वाचनकी माँग थी। घासके अन्दर छिपे इस साँपको गाधीजीने देखा और उसे तुरन्त अपने पैरोके नीचे दबाकर बोले.

"दूसरे अल्पसख्यकोके पृथक् निर्वाचनकी माँगको तो मै समझ सकता हूँ। परन्तु दलित जातियोके लिए पृथक् निर्वाचनकी माँग मेरे लिए सबसे अधिक निष्ठुर प्रहार है। इसका अर्थ है सदाके लिए जुदाई। भारतकी आजादीके लिए अस्पृश्योके हितोको मै नही बेच सकता। मै दावा करता हूँ कि मै स्वय अछूतोका प्रतिनिधि हूँ। मै निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि अगर अछूतोकी राय ली जाय तो वे मुझे ही चुनेंगे, सबसे अधिक वोट वे मुझे ही देंगे। हम नही चाहते कि हमारे मत-दाताओकी सूचीमे अछूतोको हमसे अलग लिखा जाय, सिख, मुसलमान और यूरोपियन सदाके लिए अलग भले ही लिखे जायें। परन्तु क्या अछूत सदाके लिए 'अछूत' ही लिखे जाते रहेंगे? अस्पृश्यताको इस प्रकार अमर बनानेकी अपेक्षा तो मै पसन्द करूँगा कि हिन्दू-धर्म ही मिट जाय। सम्पूर्ण ससारका राज्य मिलता हो तो भी मै उनके अधिकारोको नही बेचूँगा। जो लोग अछूतोके राजनीतिक अधिकारो-की बाते करते है, वे भारतीय समाजकी रचनाको ही नही जानते। इसलिए मै अपने सम्पूर्ण बलके साथ कहता हूँ कि यदि इस चीजके विरोधमे मै अकेला भी रह गया, तो उसके विरोधमे मै अपने प्राणोकी बाजी लगा दूंगा।"

[२]

गाधीजीने अपने भाषणोमे बालिग मताधिकारपर जोर दिया। और कहा : "अंग्रेजोंने अपने वैज्ञानिक तरीकोसे दलितो और पतितोको जिस भयकर दलदलमे गिरा रखा है, उसमेसे उन्हे बाहर निकालनेके लिए भारतको स्वतत्रताके बाद लगातार वरसोतक कानून बनाते रहना पडेगा। यदि उन्हे इस दलदलसे बाहर निकालकर राष्ट्रीय सरकार अपने घरको व्यवस्थित करना चाहती है तो सबसे पहले उसे उन तमाम बोझोको उनके कन्धोपरसे हटाना होगा, जिनके नीचे आज वे पिसे जा रहे हैं। यही नही, उन्हें लगातार सरक्षण भी देते रहना पडेगा। इसलिए आज जो-जो भी स्वार्थ विशेष प्रकारसे लाभ उठा रहे हैं, वे सब—फिर वे जमीदार हो, जागीरदार हो, धनिक हो, अंग्रेज हो या हिन्दुस्तानी,—यदि अनुभव करें कि उनके साथ ज्यादती हो रही है तो उनके साथ मेरी सहानुभूति तो होगी, परन्तु शक्ति और सभव होनेपर भी मैं किसी प्रकार भी उनकी मदद नही कर सकूंगा, क्योकि इस काममे मुझे उन्हीकी मददकी जरूरत होगी। उनकी मददके बगैर इन गरीबोको उस दलदलसे बाहर निकालना असम्भव है।

"अस्पृश्योकी हालतपर जरा गौर तो कीजिये कि आज वे कहाँ हैं। आज उनके पास जमीन नही है। वे उच्च वर्णवालोकी—और इसलिए मुझे कहने दीजिये—राज्यकी दयापर जी रहे हैं। उन्हें एक जगहसे हटाकर कही भी दूसरी जगह खदेडा जा सकता है। इसकी शिकायत किसीसे वे नही कर सकते और न कानून ही उनकी कोई सहायता कर सकता है। इसलिए किसी भी प्रकारकी समानता लानेके लिए सबसे पहला कदम यह होगा कि उन्हें कही-न-कही बिना मूल्य लिये जमीन देनी होगी। परन्तु जिनके पास अधिक जमीन है या दूसरे अधिक साधन हैं, उनसे लेकर देनी होगी, इनमे हिन्दुस्तानी भी होगे, अंग्रेज भी। इसलिए आप हरगिज यह न समझें कि महज अंग्रेज होनेके कारण आपके साथ कोई भेदभाव बरता जायगा। यह नियम तो सभीको लागू होगा, चाहे वह अंग्रेज हो, जापानी हो, भारतीय हो या और कोई हो।"

ता० २८ नवम्बरको पूरी परिषद्की अतिम बैठक हुई। श्री मैकडोनाल्ड अध्यक्ष थे। लार्ड सैंकीने सघ-विधायक समितिकी रिपोर्ट पेश की। इसमे धारासभाके अधिकारो और सुरक्षित विषयोका जिक्र था। प्रधानमत्रीने अल्पसख्यक समितिकी रिपोर्ट पेश करते हुए बताया कि उन्होंने अपना निर्णय देने और उसके साथ कुछ शर्तें रखनेकी बात कही थी। परन्तु वे मजूर न हुई। इसके बाद सामान्य चर्चा शुरू हुई। गाधीजी ७० मिनट बोले और इनमे उन्होंने परिषद्की असफलतापर अपनी आत्मा उंडेलते हुए कहा·

"अब आज मैं नही समझता कि मेरे कुछ कहनेका कोई असर होगा, क्योकि

निर्णय तो आप पहले ही ले करके बैठे हैं। परन्तु याद रखिये कि आज कांग्रेसमें बगावतकी भावना भरी हुई है। आप यह भी समझ लें कि पैंतीस करोड़के राष्ट्रको हत्यारेके छुरे, भाला, बरछी, बन्दूककी जरूरत नहीं होगी। बस, उसे तो केवल 'ना' कह देने भरकी देर है और विश्वास रखिये, वह 'ना' कहना सीख रहा है।'

[३]

प्रत्यक्ष गोलमेज-परिषद्में गांधीजीने जो कुछ कहा और उनके लिए जितना समय दिया उससे कहीं अधिक समय परिषद्के बाहर उन्होंने इंग्लैंडके नागरिकोंको भारतका पक्ष समझानेमें लगाया। सबसे पहले ता० १६ सितम्बरको गांधीजीने पार्लियामेण्टमें मजदूर-दलके सदस्योंकी एक विशेष बैठकमें भारतकी मांग संक्षेपमें समझाते हुए कहा : "इंग्लैंडमें भारतका जो परिचय दिया जाता है, वह झूठा है। मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि भारतवासी अंग्रेजी राजको खत्म कर देनेके लिए आतुर हैं, क्योंकि इसने उन्हें भूखों मारा है और अब वे अधिक भूखों मरना नहीं चाहते। भला वे भूखे नहीं मरेंगे तो और क्या होगा? आपके देशमें आपके प्रधान-मन्त्रीका वेतन औसत अंग्रेजकी आयका पचास गुना है। परन्तु भारतके वाइसरायका वेतन औसत भारतीयकी आयसे पाँच हजार गुना है। आप अंदाज लगा सकते हैं कि भारतीयोंकी औसत आय जब इतनी कम है, तो बहुत अधिक संख्यावाले लोगोंकी आय तो लगभग कुछ नहीं होगी।" परन्तु मजदूर-दलके सदस्य तो अपने बेकार मजदूरोंका ही खयाल कर रहे थे। अतः जब उन्होंने लंकाशायरकी कपड़ा-मिलोंके मजदूरोंका प्रश्न गांधीजीके सामने रखा, तब गांधीजीने कहा : 'मुझे यह तो समझाइये कि हिन्दुस्तानके लोग जब अपना कपड़ा खुद बना सकते हैं, तब क्या फिर भी उन्हें लाजिमी तौरपर लंकाशायरका कपड़ा खरीदना ही चाहिए? क्या स्वयं लंकाशायरको प्रायश्चित्त नहीं करना चाहिए?"

लंकाशायरके मजदूरोंकी सभामें गांधीजीने कहा : "यहाँ जो बेकारी पैदा हो गयी है, उसे देखकर मुझे दुख होता है। परन्तु यहाँ भुखमरी या आधी-भुखमरी भी नहीं है। यह दुखमें सुखकी बात है। हिन्दुस्तानमें तो ये दोनों हैं। अगर आप वहाँके गाँवोंमें कभी जा सकें तो देखेंगे कि ग्रामवासियोंकी आँखोंमें निराशा ही निराशा भरी पड़ी है। भूखोंके नरकंकाल—जिंदा लाशें—आपको वहाँ दीख पड़ेंगी। अगर हम रोजीके रूपमें उनको कुछ देकर उनमें कुछ जान डाल सकें तो उनसे संसारकी भी कुछ मदद ही होगी। आजका हिन्दुस्तान तो उनके लिए एक अभिशाप ही बना हुआ है। इंग्लैंडमें तीस लाख आदमी बेकार हैं। परन्तु हमारे देशमें तो तीस करोड़ मनुष्य वर्षमें छह महीने बेकार रहते हैं। आपके यहाँ तो हर बेकार मनुष्यको सत्तर शिलिंगका बेकारी-भत्ता मिलता है। हमारे देशमें हर आदमीकी औसत मासिक आय केवल साढ़े सात शिलिंग है। इस प्रकार आप तो अपनी मुसीबतमें भी हमारी

तुलनामे कही अधिक सुखी है। परन्तु आपके इस सुखसे मुझे कोई शिकायत नही है। आपका भला हो। परन्तु क्या आप हिन्दुस्तानके करोडोकी कब्रोपर फूलना-फलना पसन्द करते है ? मैं भारतको ससारसे अलग नही रखना चाहता। परन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि मेरा देश कम-से-कम भोजन और वस्त्रके लिए तो किसीका मोहताज न रहे। अपने इस सकटसे पार होनेका कोई-न-कोई उपाय हम अवश्य खोज निकालेगे। परन्तु अब आप यह आशा छोड दें कि आपका व्यापार फिरसे जी उठेगा। अपने इस सकटके लिए आप हिन्दुस्तानको ही दोप नही लगाये। ससारमे आपके विरुद्ध और भी शक्तियाँ काम कर रही है। उनका भी विचार कीजिये और जरा बुद्धिसे काम लेकर गहराईसे सोचिये।"

ब्रिटिश सरकारने जो शासन-योजना बनायी थी, उसमे देश-रक्षा और विदेश-विभाग अपने ही पास रखे थे। उसे लक्ष्य करके दूसरे दलोकी सभाओमे गाधीजीने अपनी बाते और भी जोरके साथ पेश की।

"आत्मरक्षा और वैदेशिक सबध अगर आप हमारे सिपुर्द नही करना चाहते तो इसे कौन आजादी कहेगा ? ऐसे विधानको तो कोई छुयेगा भी नहीं। अभी आप जो विभाग अपने अधीन सुरक्षित रखना चाहते हैं, उससे देशकी आयका ८० प्रतिशत तो विदेशियोके हाथोमे ही रहेगा। हिन्दुस्तानियोके हाथमे तो केवल शिक्षा और सफाई आदि आप देना चाहते हैं। ऐसी आजादीको तो मैं देखूँगा भी नही। इसके बजाय तो आपके कैदखानोमे पडा-पडा 'विद्रोही' कहलाना मैं कही अधिक पसन्द करूँगा।"

ता० २७ सितम्बरको गिल्ड हॉलमे 'स्वेच्छया दारिद्र्य'पर गाधीजीका भाषण रखा गया था। पश्चिमके श्रोताओके लिए यह एक अनोखी वस्तु थी। प्रत्येक सेवकके लिए भी यह अत्यत महत्त्वपूर्ण है। अपरिग्रहपर बोलते हुए गाधीजीने कहा "यदि मुझे जनताकी सेवा करनी है तो मुझे परिग्रहका सम्पूर्ण त्याग कर देना चाहिए। परन्तु मैं आपको सच-सच बता दूँ कि मैं यह एक झटकेमे नहीं कर सका। परन्तु बादमे ऐसा समय आ गया, जब इनके छोडनेमे मुझे प्रत्यक्ष आनन्द होने लग गया। मैं अनुभव करता हूँ कि अब मैं अधिक आसानीसे काम कर सकता हूँ और अपने देशभाइयोकी अधिक अच्छी तरह और अधिक आनदके साथ सेवा कर सकता हूँ। अब तो किसी चीजका सग्रह करना मेरे लिए तकलीफदेह हो गया है।

"अब अपने मनमे मैं कहता हूँ कि परिग्रह तो पाप-अपराध है। मुझे कोई चीज रखनेका अधिकार तभी हो सकता है, जब मैं देखूँ कि जिनको ऐसी चीजकी जरूरत है उनके पास भी वह है या वे उसे प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए इसके परिग्रहसे बचनेकी एकमात्र वस्तु है सम्पूर्ण अपरिग्रह अर्थात् खुद ही त्याग कर देना।

"मैने जो अभीष्ट स्थिति आपके सामने रखी है इसमे और जिसे आमतौरपर 'सभ्यता' कहा जाता है उन दोनोके बीच प्रतिदिन सघर्ष चलता रहता है। सभ्यता-

के लिए जिस जीवनको इष्ट वताया गया है, उसमे तो अपनी जरूरतोंको अधिकाधिक वढाना अच्छा समझा गया है। आपका परिग्रह जितना ही अधिक, उतने ही आप अधिक सभ्य।

"इसके विपरीत आप अपना परिग्रह जितना सीमित करेंगे उतनी आपकी जरूरतें कम होती जायेंगी। उतने आप अधिक सुखी और स्वतन्त्र होंगे—अलवत्ता इस जीवनका उपभोग करनेके लिए नहीं, वल्कि अपने शरीरसे दूसरोंकी सेवा करनेके लिए।

"अत जिन्होंने इस अपरिग्रहके व्रतका अपनी शक्तिभर पालन किया है, वे इस वातकी गवाही देते हैं कि जव आप सेवाके लिए इस प्रकार सर्वस्वका त्याग कर देते है, तो आप ससारकी सारी सम्पत्तिके मालिक वन जाते हैं।"

महासम्पन्न इग्लैंडको ४० करोड साधनहीन, और दरिद्रनारायणके पुजारी गाधीजी अपरिग्रहके सिवाय और क्या दे सकते थे?

२८. फिर युद्धके दावानलमें

(१९३२)

'भावें साडी जान जावे कदी नहीं हारना'

—रा० दत्त चौधरी

गोलमेज-परिषद्मे भाग लेकर गाधीजी २८ दिसम्वर, १९३१ को वम्वई लौटे। सभी प्रान्तोंके प्रतिनिधि उनका स्वागत करनेके लिए वम्वईमे एकत्र थे। विधिवत् स्वागतके वाद उनका शानदार जुलूस निकला।

आजाद मैदानमे हुई सभामें अपूर्व भीड इकट्ठी थी। गाधीजीने उसके सामने गम्भीर आवाजमे अपने हृदयको खोलते हुए कहा: "मैं शान्तिके लिए अपने वसभर कोशिश करूँगा और अपनी तरफसे कोई वात उठा नही रखूँगा।" फिर अपनी प्रतिज्ञा दोहराते हुए कहा. "हिन्दू जातिसे अस्पृश्योको जुदा करनेवाले किसी भी प्रयत्नको मैं वर्दाश्त नही करूँगा, वल्कि मौका पडनेपर उसके विरोधमे मैं अपनी जानतक लडा दूंगा।"

यही वात उन्होने अल्पसख्यक जातियोकी कमेटीकी वैठकमे इग्लैंडमे भी कही थी। परन्तु न तो तव और न इस सभामे किसीका ध्यान उसकी गम्भीरताकी तरफ गया।

तीन दिनतक गाधीजी प्रान्तीय प्रतिनिधियोसे मिलते और उनकी दु ख-गाथाएँ सुनते रहे। उनकी अनुपस्थितिमे गाधी-इरविन समझौता नामकी कोई चीज नही रह गयी थी। आर्डिनेंस जारी कर दिये गये थे और हर प्रान्तमे दमन

पूरे जोरके साथ शुरू हो गया था। प्राय सभी खास-खास नेता जेलके सीखचोमे बन्द कर दिये गये थे।

गाधीजीने भी इग्लैंडके अपने दुखडोकी कहानी सुनायी। वे तो गोलमेज-परिपद्‌मे जाना ही नही चाहते थे, क्योकि वहाँ जो कुछ होनेवाला था, उसके पूर्व-चिह्न जुलाई-अगस्तमे उन्हे देशमे ही नजर आने लगे थे। परन्तु काग्रेस-कार्य-समितिने जोर दिया कि उन्हे जाना ही चाहिए और मजदूर-सरकार भी चाहती थी कि उन्हें किसी प्रकार जहाजपर चढाकर लन्दन रवाना कर ही दिया जाय।

एक प्रकारसे यह अच्छा ही हुआ। वहाँके अपने अनुभव सुनाते हुए गाधीजी-ने सवसे पहले कहा "किसी भी चीजकी कल्पनाकी अपेक्षा उसका प्रत्यक्ष अनुभव एक दूसरी ही चीज होती है।"

नरम दलके नेताओकी मनोदशासे तो वे परिचित थे, पर उस नजारेके लिए वे तैयार नही थे जो उन्होने लन्दनमे देखा। मुसलमानोंके स्वभावको भी वे जानते थे और उनकी प्रतिगामी मनोवृत्तिसे भी नावाकिफ नही थे। पर गोलमेज-परिषद्‌मे राष्ट्रशरीरकी जो चीरफाड हुई और जिस तरह उसके टुकडे-टुकडे किये गये, उसके लिए वे हरगिज तैयार नही थे।

गाधीजीने निश्चय कर लिया कि अव काग्रेस किसी प्रकारकी भी साम्प्रदायिकताका समर्थन नही करेगी। उसका धर्म विशुद्ध राष्ट्रधर्म होगा। उन्होने यह भी कहा कि "अगर देश साम्प्रदायिक प्रश्नके साथ इसी तरह खिलवाड करता रहेगा, तो उसके लिए कोई आशा नही है।"

इन सारे विचारो और अनुभवोके कारण उनके चित्तको वडा क्लेश हो रहा था। आज उन्हे अपने सामने एक जवर्दस्त खाई नजर आ रही थी और यह कठिन सवाल खडा हो गया था कि इस खाईपर पुल वनाया जा सकता है या इसे जिन्दा और मरे हुए आदमियोसे पाटकर ही पार करना होगा?

जव वे अपने काममे भिडे तव उनके हृदयमे इन सारी वातोंके वारेमे विचार उमड रहे थे। कार्य-समिति उनके साथ थी। उसके आदेशानुसार उन्होने वाइसराय लार्ड विलिगडनको सारी स्थिति और उसपर विचार करनेके लिए प्रत्यक्ष मिलनेके वारेमे एक लम्वा तार भेजा। वाइसरायका जवाव आया कि आर्डिनेंस वगैरह कदम सरकारने देशकी स्थिति और उमडती हुई अशान्तिको देखकर वहुत सोच-विचारके वाद उठाये है। उनपर पुनर्विचार नही हो सकता। इस प्रश्नको छोडकर अन्य कोई वातचीत करनी हो तो विचार हो सकता है। वाइसरायने देशमे फैली अशातिके लिए काग्रेसको ही जिम्मेदार ठहराया।

गाधीजीने तार द्वारा फिर कहा कि वातचीतपर कोई शर्त न लगायी जाय। लिखा कि वाइसराय महोदयसे सरकारका पक्ष सुनकर, उसके सम्वन्धमे अपने साथियोसे वातचीत करके तथा देशकी स्थिति देखकर मै निष्पक्ष भावसे विचार

करना चाहता हूँ। साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि मैं अहिंसाको धर्म-रूपमे मानता हूँ। शांति और सहयोगका भूखा हूँ और यदि उसकी गुंजाइश न हो तो यह भी मानता हूँ कि प्रजाजनोंको अपने दुःखोंको दूर कराने तथा अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिए असहयोग करनेका अधिकार है। सविनय-कानूनभंग उनीका एक अंग है।

अंतमें लिखा कि यदि बातचीतसे इस समस्याका कोई हल निकलना संभव न हो और कहीं मुझे जनताको यह समझानेका अवसर न मिल सके कि उसका कर्तव्य क्या है, तो कार्य-समितिने इस संबंधमें जो प्रस्ताव स्वीकार किया है, वह आपकी जानकारीके लिए भेज रहा हूँ। इसपर अमल अभी न होगा, आपके उत्तरपर ही उसका अमल निर्भर करेगा।

अपने इस तार-व्यवहारको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बनाकर गांधीजीने यह भी सूचना दी कि बादमें कहीं इस प्रस्तावको जनतातक पहुँचनेका अवसर न मिल पाये, इस आशंकासे मैं इसे आज ही प्रकाशनार्थ भेज रहा हूँ।

वाइसरायका जवाब नकारात्मक आया और ४ जनवरीको गांधीजीकी गिरफ्तारीके साथ फिर लड़ाई शुरू हो गयी।

कार्य-समितिके प्रस्तावमें *बताया गया था कि बातचीत भंग हो जानेकी* अवस्थामें जनता क्या करे। तदनुसार सारा देश फिर युद्धकी आगमें कूद पड़ा।

२९. प्राणोंकी बाजी

(१९३२)

'कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि।'

अब गांधीजीके उस भीषण व्रतका समय आ गया, जिसमें उन्होंने अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी थी।

मताधिकार और निर्वाचनकी सीटोंका निर्णय करनेके लिए लोथियन-कमेटी १७ जनवरी १९३२ को भारत आ पहुँची थी। समय बीतता जा रहा था। सरकार झटपट काम करनेमें दक्ष है ही। हम कहीं सोचने-विचारने और जवानी जमाखर्चमें ही न रह जायें, इस खयालसे गांधीजीने भारतमंत्री सर सैम्युअल होरको ११ मार्चको पत्र लिखा, जिसमें निश्चय प्रकट किया कि यदि अस्पृश्यों या दलित जातियोंके लिए सरकारने पृथक् निर्वाचन रखा, तो मैं आमरण उपवास करूँगा।

१३ अप्रैलको सर सैम्युअल होरका उत्तर आया। यह उत्तर निस्सार और रूखा था। १७ अगस्तको प्रधानमंत्री श्री रैमजे मैकडोनाल्डने इस संबंधमें अपना निश्चय भी सुना दिया। इसमें दलित जातियोंको पृथक्-निर्वाचनका अधिकार

तो मिला ही, साथ ही आम-निर्वाचनमे भी उम्मीदवार बनने और दुहरे वोट हासिल करनेका अधिकार भी दिया गया। इसपर १८ अगस्तको गाधीजीने निश्चय किया कि वे प्रधानमत्री मैकडोनाल्डके इस निश्चयके विरोधमे २० सितम्बरको तीसरे पहरसे अनशन करेंगे और इसकी सूचना उन्होने प्रधानमत्री मैकडोनाल्डको भेज दी।

प्रधानमत्रीने आरामसे ८ सितम्बरको उत्तर दिया, जिसमे गाधीजीको उलटे दलित जातियोंके प्रति शत्रुताके भाव रखनेवाला बताया। १२ सितम्बरको सारा पत्रव्यवहार प्रकाशित हो गया। अनशन २० सितम्बरसे प्रारम्भ होनेवाला था। इस एक सप्ताहमे सारे देशमे और विदेशोमे भी चिंता, क्षोभ और दु ख फैल गया। ससारके कोने-कोनेसे तार आने लगे, जिनमे गाधीजीसे प्रार्थना की गयी थी कि वे अनशन न करें। उनसे इस सकल्पका त्याग करानेके लिए अनेक प्रकारसे प्रयत्न होने लगे। मित्र उनके प्राण बचानेके लिए व्याकुल थे और शत्रु उपहासपूर्ण कुतूहलके साथ यह सब देख रहे थे।

ब्रिटिश सरकार अपना निश्चय पलटेगी, इसकी कोई आशा नही थी। अत सर्वत्र यही महसूस किया जा रहा था कि स्वय हिन्दू-समाजको ही आपसी समझौते द्वारा इस समस्याको सुलझाकर गाधीजीकी माँग पूरी करके इस सकटको दूर करना चाहिए।

यह बडी अच्छी बात हुई कि दलित जातियोके एक नेता श्री राजाने ही इस दिशामे पहल की। उन्होने पृथक् निर्वाचनको धिक्कारा। देशमे और इग्लैंडमे इस देशके हितैषी और गाधीजीके प्रेमी अपनी-अपनी तौरसे इस प्रयत्नमे लग गये।

२० सितम्बरको सारे देशमे प्रार्थनाएँ की गयी। वैसे सारे प्रयत्नो और आन्दोलनका मुख्य हेतु तो प्रधानमत्रीके निर्णयको बदलवाना ही था, परन्तु इस हलचलने देखते-देखते अस्पृश्यता-निवारणका व्यापक रूप धारण कर लिया। जगह-जगह अस्पृश्योके लिए मदिर खोले जाने लगे।

समय-ज्ञ पण्डित मदनमोहन मालवीयजीने नेताओंकी एक परिषद् तत्काल बुलानेका निश्चय किया। उसमे सवर्ण हिन्दुओ और श्री अम्बेडकर सहित अस्पृश्योके सब नेताओंने भाग लिया और उपवासके पाँचवें दिन सबने मिलकर एक योजना स्वीकार की, जिसके अनुसार दलित जातियोंने पृथक् निर्वाचनका अधिकार त्याग दिया और आम हिन्दू-निर्वाचनोंसे ही सतोष कर लिया। सवर्ण हिन्दुओने उन्हे महत्त्वपूर्ण सरक्षण प्रदान किये। ब्रिटिश प्रधानमत्रीके निर्णयने अस्पृश्योको जितनी जगहे मिलनेवाली थी, उनसे दुगनी इस योजनाके अनुसार उन्हें मिल गयी और कुल मिलाकर अपनी जनसख्यासे अधिक प्रतिनिधित्व भी।

इस योजनाको ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलने भी स्वीकार कर लिया। निर्णयकी घोषणा भारत और इग्लैंडमे एक साथ की गयी।

तब, ६ अक्तूबरको, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी उपस्थितिमे धार्मिक भजन और प्रार्थनाके बाद गाधीजीने उपवास समाप्त किया। सम्पूर्ण देशने राहतकी सांस ली, मानो उसके प्राण लौट आये।

यरवदाका यह समझौता स्वीकार करते हुए ब्रिटिश सरकारने लिखा था कि "अभी बडी कौंसिलके प्रतिनिधित्वके मताधिकारका प्रश्न विचाराधीन है। परन्तु इतना कहा जा सकता है कि सरकार समझौतेके विरुद्ध नही है।" इसलिए गाधीजी उपवास भग करनेको राजी तो हुए, परन्तु साथ ही कह दिया कि "उचित समयके अन्दर अस्पृश्यता-निवारणसम्बन्धी सुधार यदि नेकनीयतीके साथ पूरा न किया गया, तो मुझे निश्चय ही फिर नये सिरेसे उपवास करना पडेगा।"

उपवास शुरू करनेसे पहले भी गाधीजीने दो वक्तव्य दिये थे, जिनमे कहा गया था.

"ज्ञान और तपके लिए उपवास करनेकी प्रथा सनातनकालसे चली आयी है। इसलाम और ईसाई धर्ममे भी साधारणत इसका पालन किया जाता है। हिन्दू-धर्म तो आत्मशुद्धि और तपस्याके लिए किये गये उपवासोके उदाहरणोसे भरा पडा है। मैंने आत्मशुद्धि करनेकी बडी चेष्टा की है और उसका फल यह हुआ है कि मुझे अतर्नाद ठीक-ठीक और साफ-साफ सुननेकी कुछ क्षमता प्राप्त हो गयी है। मैंने यह उपवास उस अतर्नादके आदेशके अनुसार ही किया है।

"यदि कोई कहे कि उपवास तो दूसरोको धमकाना है, तो उसका उत्तर यह है कि प्रेम विवश करता है, धमकाता नही—ठीक जिस तरह सत्य और न्याय विवश करते हैं।

"मैं अपने उपवासको न्यायके पलडेमें रखना चाहता हूँ। ऊपरसे देखनेवालो-को मेरा यह उपवास बच्चोंके खेल-सा प्रतीत हो सकता है, पर मुझे ऐसा प्रतीत नही होता। यदि मेरे पास और कुछ होता तो इस पापको मिटानेके लिए मैं वह सब झोंक देता। परन्तु मेरे पास प्राणोंसे अधिक और कुछ है ही नही। यह उपवास उनके लिए है जिनकी मुझमे आस्था है—चाहे वे भारतीय हो या विदेशी। जिनकी मुझमे आस्था नही है, उनके लिए यह उपवास नही है।"

इस प्रकार गाधीजीने साफ-साफ बता दिया कि यह उपवास न अग्रेज अफसरो-के खिलाफ था और न भारतमे उनके विरोधियोंके खिलाफ, चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान। इस उपवासका प्रधान उद्देश्य तो हिन्दू-अत करणमे ठीक-ठीक धार्मिक-कार्यशीलता उत्पन्न करना था।

अपने साथियो और समाजके अन्दर आत्मशुद्धिकी प्रेरणा जागृत करनेके लिए तथा उनको बल पहुँचानेके लिए उपवास करना गाधीजीके स्वभाव और कार्य-पद्धतिका एक अग ही था। इसके दो उदाहरण तुरन्त खडे हो गये।

केरलमे गुरुवायुरका एक मन्दिर है। उसमे 'हरिजनो'[1] को आने दिया जाय, इस उद्देश्यमे लगभग उन्ही दिनो एक कार्यकर्ता श्री केलप्पन आमरण उपवास करना चाहते थे। उन्होने गाधीजीसे इसकी इजाजत माँगी। गाधीजीने सारी स्थिति जाननेके बाद उन्हे तारद्वारा यह कहकर मना कर दिया कि "चूँकि मदिरके ट्रस्टियोको उन्होने उचित पूर्व-सूचना नही दी है, इसलिए अभी उपवास न करे।"

इसी प्रकारका एक और प्रकरण था—यरवदा जेलमे।

महाराष्ट्रके तपस्वी सेवक श्री अप्पासाहब पटवर्धनने[2] जेलमे भगीका काम करनेकी इजाजत माँगी। सरकारने उन्हे वह काम देनेसे इनकार कर दिया। अत आमरण उपवास करनेके लिए वे मजबूर हो गये थ। गाधीजीने पहले उनके विपयमे बम्बई-सरकारको लिखा, परन्तु उसका कोई असर नही हुआ। अत अप्पासाहबने क्रमश खाना कम करके मृत्यु तक पहुँचनेका कार्यक्रम शुरू कर दिया। उनकी सहानुभूतिमे गाधीजीने भी अनशन शुरू कर दिया। अब सरकार झुकी और अप्पासाहबको मैला साफ करनेकी इजाजत दे दी गयी।

अनशनके बादसे देशमे अस्पृश्यता-निवारण एक मुख्य कार्य बन गया। इस कार्यको बल मिले, इस हेतुसे गाधीजी एक समाचारपत्र भी निकालना चाहते थे। उन्होने इसके लिए सरकारकी इजाजत माँगी और उसे आश्वस्त कर दिया कि इस पत्रमे राजनीति नही होगी। सरकारसे यह इजाजत मिल गयी। फलस्वरूप वे 'हरिजन' नामक पत्र निकालने लगे।

उधर हरिजन-आन्दोलनके कायकर्ताओकी सख्या उत्तरोत्तर बढ रही थी। इन कार्यकर्ताओको अपना काम पवित्रता, सेवाभाव और आत्मशुद्धिकी भावनासे करनेकी प्रेरणा देनेके लिए गाधीजीने ८ मई १९३३ को आत्मशुद्धिके निमित्त फिर २१ दिनका उपवास आरम्भ कर दिया। इस विषयमे उन्होने लिखा है "यह (उपवास) अपनी और अपने साथियोकी शुद्धिके लिए हृदयसे की गयी प्रार्थना है, जिससे वे हरिजन-कार्य अधिक जागरूकता और सावधानीके साथ कर सकें। मै अपने भारतके और ससारके अन्य मित्रोसे अनुरोध करता हूँ कि वे मेरे साथ प्रार्थना करे कि मै इस अग्नि-परीक्षामे सकुशल पार उतरूँ। मै मरूँ या जीऊँ, जिस उद्देश्य से मैने उपवास किया है, वह पूरा हो। मै अपने सनातनी भाइयोसे अनुरोध करता हूँ कि वे प्रार्थना करें कि इस उपवासका परिणाम मेरे लिए जो कुछ भी हो, कम-से-कम वह सुनहला ढँकना हट जाय, जिसने सत्यको ढँक रखा है।"

उसी दिन सरकारने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमे कहा गया कि उपवास जिस उद्देश्यसे किया गया है उसे और उसके द्वारा प्रकट होनेवाली मनोवृत्तिको

---

१ अब अस्पृश्योके लिए यह नाम प्रचलित हो गया है। २ अब स्वर्गीय।

ध्यानमे रखकर भारत-सरकारने निश्चय किया है कि गाधीजी रिहा कर दिये जायँ। तदनुसार गाधीजी ८ मईको जेलसे रिहा कर दिये गये।

रिहा होते ही गाधीजीने एक वक्तव्य दिया। उसमे अपने विचार प्रकट करते हुए कहा .

"मैं इस रिहाईसे प्रसन्न नही हूँ, परन्तु यह मुझे सत्यका अन्वेपण करनेको प्रेरित करती है। यदि मैं अपने दिमागमे हरिजन-कार्यके अतिरिक्त किसी दूसरी वातको जगह दूंगा तो उपवासका उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा।

"इस समय मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि सत्याग्रहके सम्बन्धमे मेरे विचारोमे किसी प्रकार अन्तर नही पडा है। असख्य सत्याग्रहियोकी वीरता और आत्मत्यागके लिए मेरे पास साधुवादके सिवा और कुछ नही है। परन्तु यह भी कहे विना मैं नही रह सकता कि आन्दोलनमे जिस लुकाछिपीसे काम लिया गया है, वह उसकी सफलताके लिए घातक है। इसे छोड देना चाहिए। इसके फलस्वरूप यदि एक भी सत्याग्रहीका मिलना कठिन हो जाय, तो मुझे परवा नही। निस्सन्देह अध्यादेशोने जनसाधारणको भयभीत वना दिया है। परन्तु मेरी धारणा है कि इस दव्बूपनको उत्पन्न करनेमे लुकाछिपीके तरीकोका भी हाथ है।

"सत्याग्रह-आन्दोलन उसमे भाग लेनेवालोकी सख्यापर नही, उनके गुण और योग्यतापर निर्भर करता है। यदि मैं आन्दोलनका सचालन करूँ, तो मैं योग्यतापर ही जोर दूंगा। यदि ऐसा हो सके तो आन्दोलनकी सतह वहुत ऊँची हो जाय।

"एक वात मैं और कहूँगा। (उपवासके) इन तीन सप्ताहोमे सारे सत्याग्रही भीपण दुविधामे रहेंगे। अत यदि काग्रेसके श्री माधवराव अणे वाकायदा छह सप्ताहके लिए सत्याग्रह स्थगित कर दें, तो उत्तम हो।

"सरकारसे भी मैं अपील करूँगा कि यदि वह वास्तविक शान्ति चाहती है, तो इस आन्दोलनवन्दीका लाभ उठाकर उसे सारे सत्याग्रहियोको विना शर्तके रिहा कर देना चाहिए। यदि मैं इस अग्नि-परीक्षामेसे वच गया तो इससे मुझे सारी स्थिति पर विचार करनेका अवसर मिल जायगा और मैं काग्रेसी नेताओ और सरकारोको भी सलाह दे सकूँगा।"

वक्तव्यके अतमे गाधीजीने सरदार वल्लभभाईकी अद्वितीय वीरता और ज्वलत स्वदेश-प्रेमकी प्रशसा की। साथ ही कहा, "सोलह महीनोमे उन्होने मुझे जिस स्नेहसे ढँके रखा, उससे मुझे अपनी प्यारी माँकी याद आ जाती है।"

गाधीजीकी घोषणाके वाद काग्रेसके कार्यवाहक अध्यक्षने छह सप्ताहके लिए आन्दोलन स्थगित कर दिया, परन्तु सरकारने सत्याग्रहियोको रिहा करना मंजूर नहीं किया।

पूर्व निश्चयके अनुसार २९ मई १९३३ को गांधीजीका यह उपवास भी समाप्त हो गया। अभी गाधीजी वाहर ही थे। उनकी उपस्थितिका लाभ उठाकर स्थिति-

पर विचार करनेमे मदद मिले, इस विचारसे कार्यवाहक अध्यक्ष श्री अणे द्वारा सत्याग्रहको स्थगित करनेका समय छह सप्ताह और बढा दिया गया।

इस बीच १६ जुलाईको पूनामे देशकी राजनीतिक स्थितिपर विचार करनेके लिए एक बैठक हुई। अनेक प्रश्नोपर चर्चा हुई। अतमे सरकारसे समझौता करनेके लिए वाइसरायसे मिलकर बातचीत करनेका अधिकार गाधीजीको दिया गया। तदनुसार गाधीजीने तारद्वारा वाइसरायसे मिलनेकी इजाजत माँगी। परन्तु इस पूना-परिषद्के जो (भ्रमपूर्ण) समाचार उनके पास पहुँचे थे, उनका हवाला देते हुए वाइसराय ने मिलनेसे इनकार कर दिया। फलत राष्ट्रको अपना सम्मान सुरक्षित रखनेके लिए पुन युद्ध जारी करनेको बाध्य होना पडा। इस बार सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और जो लोग तैयार थे, उन्हे व्यक्तिगत सत्याग्रह करनेकी सलाह दी गयी।

गाधीजीने व्यक्तिगत सत्याग्रहका प्रारम्भ अपने पासकी मूल्यवान्से मूल्यवान् वस्तुके परित्यागसे किया। इस प्रकार उन्होने उस कष्टमे भाग लेनेकी चेष्टा की, जिसे आन्दोलनके समय हजारो ग्रामीणोने सहा था। उन्होने साबरमती-आश्रम तोड दिया, उसके निवासियोको युद्धमे भाग लेनेके लिए आमन्त्रित किया, उसे खाली कर दिया और सरकारको लिख दिया कि वह उसकी जमीन, इमारत और खेती ग्रहण कर ले। परन्तु सरकारने यह दान स्वीकार नही किया। तब उन्होने आश्रमको हरिजन-कार्यके लिए अर्पित कर दिया।

१ अगस्त १९३३ को गाधीजी रास जानेवाले थे, परन्तु एक दिन पहले ही ३४ आश्रमवासियोके साथ वे गिरफ्तार कर लिये गये। किन्तु ४ अगस्तको फिर इस शर्तपर छोड दिये गये कि वे यरवदा ग्रामकी सीमा छोड पूना जाकर रहे। किन्तु गाधीजीने इस आदेशको नही माना। इसलिए आधे घण्टेके बाद फिर गिरफ्तार कर लिए गये और उन्हे एक साल कैद की सजा सुना दी गयी।

इस बार सरकारने गाधीजीको 'हरिजन' पत्र निकालने आदि की पहले जैसी सुविधाएँ देनेसे इनकार कर दिया। इसलिए गाधीजीको फिर उपवास करना पडा। सरकार अडी रही। उपवासमे गाधीजीकी अवस्था शोचनीय होने लगी। अत १० अगस्तको सरकारने उन्हे सासून अस्पतालमे रख दिया। जब उनका स्वास्थ्य वहाँ भी नही सुधरा और सरकारने देखा कि उनके प्राण सकटमें है, तब २३ अगस्त-को उन्हे बिना शर्त छोड दिया गया।

इस अनपेक्षित परिस्थितिने गाधीजीको असमजसमें डाल दिया। परन्तु अपनी रिहाईकी अवस्थाको ध्यानमे रखकर और गिरफ्तारी उपवास व रिहाईके चूहे-बिल्लीवाले खेलको आरम्भ न करनेकी इच्छासे प्रेरित होकर उन्होने यह निश्चय किया कि ३ अगस्त १९३४ तक आत्मसंयमसे काम लेना चाहिए और सत्याग्रहके द्वारा गिरफ्तारीको निमन्त्रण नही देना चाहिए।

३०. 'अछूत' नहीं, 'हरिजन'

(१९३२)

'साम्राज्यकी डायरशाहीको मै शैतानियत कहता हूँ। अस्पृश्यताको भी मैं उतनी ही भयकर शैतानियत मानता हूँ।' —गाधीजी

यद्यपि अब भारतमे छूआछूत कानूनन दडनीय हो गयी है फिर भी जन-मानस-से उसका भूत अभी निकला नही है।

गाधीजीके मनमे दलितो और गरीबोंके प्रति प्रारभसे ही पीडा थी। छुआछूत-को वे भारी पाप मानते थे। मानव-मानवमे भेदकी बात उनकी कल्पनामे भी नही आ सकती थी। उनके जीवन-दर्शनमे प्रारभसे ही हम इस बातको देखते है कि भेद-भावकी बातोको लेकर दक्षिण अफ्रीकामे उन्होने अपने घरमे ही कितना कुहराम मचा दिया था। गरीबोकी दुर्दशाको और अछूतोपर होनेवाले जुल्मोको सुनकर उनका हृदय रो पडता था। वे करुणाकी साक्षात् मूर्ति थे।

हिन्दी-तिथिके अनुसार उस वर्ष गाधीजीके जन्म-दिन पूनाकी आमसभामे गुरुदेवका भाषण हुआ। उन्होंने भावभीनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए गाधीजीके बारेमे कहा, "महात्माजीकी तपस्याका फल बहुत हुआ है, लेकिन उनकी और भी बडी विजय होगी यदि हम लोग छूआछूतके अन्यायको सदाके लिए दूर कर सकें।"

३० सितम्बरको मालवीयजीकी अध्यक्षतामे बम्बईमे एक विशाल आमसभा हुई, जिसमे अस्पृश्यताको दूर करनेके लिए एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता-विरोधी सगठन खडा किया गया। श्री घनश्यामदास बिडला उसके अध्यक्ष तथा श्री अमृतलाल ठक्कर मत्री चुने गये। यही सगठन बादमे "हरिजन-सेवक-सघ" के रूपमे काम करने लगा।

दलित जातियोंके बारेमे काग्रेसने, १९१९मे ही, एक प्रस्ताव पास कर दिया था, जिसमे कहा गया था कि "यह काग्रेस भारतवासियोसे आग्रहपूर्वक कहती है कि परम्परासे दलित जातियोंपर जो रुकावटे चली आ रही है, वे बहुत दु ख देनेवाली है और क्षोभ-कारक है, जिनसे दलित जातियोको बहुत कठिनाइयो और असुविधाओका सामना करना पडता है। इसलिए न्याय और भलमनसीका यह तकाजा है कि ये तमाम बन्दिशे उठा दी जायें।"

इसके बाद गाधीजीने दक्षिण भारत और केरलका दौरा किया। उस समय वायकोम-सत्याग्रह जोरोपर था। गाधीजीकी उपस्थितिने समझौतेमे मदद की। कुछ खास सडकोपरसे अस्पृश्योंको निकलनेकी मनाही थी। यह आन्दोलन उस मनाहीको दूर करनेके लिए आरभ किया गया था। जब त्रावणकोर-सरकारने

बोर्ड और सिपाही हटा लिये तो सत्याग्रहियोका शत्रु केवल लोकमत रह गया और सत्याग्रहका कारण उस समयके लिए हट गया।

गाधीजीने जेलमे अस्पृश्यता-निवारणकी सुविधाके लिए जो प्रयत्न—उपवास आदि—किये, उसने कुछ लोगो, खासकर समाजवादियोको शिकायत थी कि इससे सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनको धक्का पहुँचा है। इसपर गाधीजीने कहा, "मै जेलमे आ गया याने सत्याग्रहीकी हैसियतसे मुझे बाहर जो करना था, वह मै कर चुका। अब अन्दर आनेके बाद मुझमे और भी कुछ करनेकी शक्ति है, इसलिए वह कर रहा हूँ। लेकिन किसी शर्तपर मै बाहर नही निकलूँगा और नही निकला।

"इस अस्पृश्यता-निवारणके आन्दोलनकी कल्पना इस तरह की गयी है कि किसी भी काग्रेस-कार्यकर्ताको अपना काम न छोडना पडे। जिसके पास दूसरा काम न हो, या जो दूसरा काम न करता हो, ऐसे आदमीके लिए ही यह काम है। जिस काग्रेसीको ऐसा लगे कि मैने तो प्रतिज्ञा ली है और उसका मुझे पालन करना ही चाहिए, वह अपने काममे लगा रहे।"

एक भाईने अपने पत्रमे अस्पृश्योके सबधमे चिन्ता व्यक्त की, तो बापूजीने उसका उत्तर देते हुए कहा

"मै इस सारी समस्यापर एक भारतीय और एक हिन्दूकी दृष्टिसे विचार करता हूँ। गुजरातमे इस प्रश्नको लेकर कैसा बवडर उठ खडा हुआ है! क्या तुमको मालूम है कि मैने जानबूझकर एक ढेडकी लडकी गोद ले ली है। इसके सिवा एक ढेड परिवारको भी आश्रम मे बसा लिया है। तुम्हारा ऐसा सोचना कि मै एक क्षणके लिए भी इस प्रश्नकी अपेक्षा किसी दूसरे प्रश्नको अधिक महत्त्व दे सकता हूँ, मेरे साथ अन्याय करना है।

"मैने तो अस्पृश्यताके पापको ही हाथमे लिया है। मै हिन्दू-पावित्र्यवादपर आक्रमण कर रहा हूँ। चूँकि हिन्दुओका यह खयाल है कि मानव जातिके एक वर्गको छूना इसलिए पाप है कि वह किसी विशेष वातावरणमे पैदा हुआ है, इसलिए मै एक हिन्दू होनेके नाते यह सिद्ध करनेमे लगा हूँ कि यह पाप नही है और इन लोगोको छूनेको पाप समझना ही पाप है। यदि सचमुच अस्पृश्यता हिन्दूधर्मका अग हो, तो मै हिन्दू-धर्मंमे बना नही रह सकता।"

यह पूछे जानेपर कि जिन्हे हम अस्पृश्य मानकर पाप करते है, उनको 'हरिजन' नाम देनेका क्या अर्थ है? उन्हे यह नया नाम क्यो दिया गया?—गाधीजीने बताया, "काठियावाडके एक अस्पृश्य भाईने वर्षो पहले मुझे लिखा था कि 'अन्त्यज', 'अछूत' 'अस्पृश्य' नामसे पुकारे जानेपर उन भाइयोको दु ख होता है। उनका दु ख मै समझ सकता हूँ। उस भाईने बताया कि भक्त कवि नरसी मेहताने एक भजनमे अछूत भाइयोका उल्लेख 'हरिजन' नामसे किया था। यद्यपि जो भजन उस भाईने अपनी बातके समर्थनमे मुझे भेजा था, उसका अर्थ तो जो वह बताते थे, ऐसा

मेरी दृष्टिमे नही था, तो भी मुझे 'हरिजन' नाम बहुत प्रिय जँचा। 'हरिजन' का अर्थ है, 'ईश्वरका भक्त' 'ईश्वरका प्यारा।' ईश्वरकी प्रतिज्ञा है कि दुखियोका वही बेली है, दयाका सागर है, अशक्तोको शक्ति देनेवाला है, निर्बलका बल है, पंगुका पैर है, अंधोकी आंख है, इसलिए दलित लोग उसके प्यारे होने ही चाहिए। इस दृष्टिसे अछूत माने जानेवाले भाइयोंके लिए 'हरिजन' शब्द सर्वथा उपयुक्त है, ऐसा मेरा विश्वास है।*

"अस्पृश्यताके सर्पको मारे बिना हम कुछ नही कर सकते। अस्पृश्यता वह विष है, जो हिन्दू-समाजके मर्मको खोखला कर रहा है। वर्णाश्रम ऊँच-नीचका धर्म नही है। भगवान्‌का कोई भी भक्त किसी दूसरे आदमीको अपनेसे नीचा नही समझ सकता। उसे तो प्रत्येक मनुष्यको अपना सगा भाई मानना चाहिए। यही प्रत्येक धर्मका आधारभूत सिद्धान्त है।

"अस्पृश्यतासे चिपका रहनेवाला कोई भी व्यक्ति इस सरकारकी निन्दा करनेका कोई हक नही रखता। न्यायपूर्ण समता के व्यवहारकी मांग करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको स्वय सर्वथा निर्दोष होना चाहिए। यह सिद्धान्त सर्वत्र लागू होता है।"

एक सज्जनने बापूके पास अस्पृश्यतासे सम्बन्धित कुछ प्रश्न भेजे। उनका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा: "यह कहना कि भगीके शरीरमे ही मैल घर कर गया है, इससे हम उसे चाहे कितना ही क्यों न धोयें, वह अस्पृश्य ही बना रहेगा, उचित नही। मेरी अल्पबुद्धिके अनुसार तो भगीपर जो मैल चढता है, वह शारीरिक है, और उसे आसानीसे दूर किया जा सकता है। लेकिन जिनपर असत्य, पाखंड इत्यादिका मैल चढा हुआ होता है, वह बहुत सूक्ष्म होता है और उसे निकालना बहुत ही मुश्किल होता है। यदि किसीको अस्पृश्य माना जा सकता है, तो असत्य और पाखडसे भरे लोगोको ही। लेकिन उन्हे अस्पृश्य कहनेकी हिम्मत हम लोगोकी नही होती, क्योंकि कम या अधिक मैल हम सभीमे है। इस सच्ची मलिनतासे छुटकारा पानेके लिए हमारे पास धीरज और आन्तरिक स्वच्छता के सिवाय दूसरा कोई उपाय नही है। भगीको यदि हम अपना बना ले तो वह अवश्य साफ रहने लगे।

"डॉक्टरको हम सम्मान देते है। मेरा कहना यह है कि डॉक्टरका धन्धा सिर्फ रोगीके लिए उपकारक है, लेकिन भगीका धन्धा समस्त ससारके लिए उपकारक होनेके कारण डॉक्टरके धन्धेकी अपेक्षा अधिक आवश्यक और पवित्र है। डॉक्टर धन्धेको छोड दे, तो केवल रोगियोका ही नुकसान है; लेकिन यदि भगीका धन्धा बद हो जाय तो जगत्‌का नाश हो जाय। इसलिए इस कथनमे कुछ भी

* इन्हीं दिनों, बल्कि इससे भी पूर्व, यरवडा-जेलमें ही गांधीजीने साबरमती आश्रम हरिजनोंके लिए दे देनेका निश्चय कर लिया था, अब वह 'हरिजन-सेवक-संघ' को दे दिया गया है।

अनुचित नहीं है कि ऐसा आवश्यक कार्य करनेवाले व्यक्तिको अपवित्र कहकर उसका त्याग करनेमे पाप है।

"मुझे मलिनताके प्रति मोह नहीं है, और न भगीके प्रति। मुझे अतिशयोक्ति-की आदत नहीं है। मैं हिन्दू-शास्त्रोंको माननेवाला हूँ। हिन्दू-धर्मका अभिमानी हूँ। मेरा सत्य मुझे निर्मोह रखता है और शास्त्रके नामपर चलनेवाली सब वस्तुओंको आँख मूँदकर स्वीकार कर लेनेसे बचाता है। मुझे लगा है कि साम्राज्यने जैसी डायरशाही चलायी है, वैसी ही डायरशाही हिन्दू-धर्मके नामपर हिन्दुओंने भगी आदि जातिपर चलायी है। साम्राज्यकी डायरशाहीको मैं 'शैतानियत' कहता हूँ। अस्पृश्यताको भी मैं उतनी ही भयकर शैतानियत मानता हूँ। मैं हिन्दू-धर्मको उस दोपमे मुक्त करनेके लिए जी-जानसे प्रयत्न कर रहा हूँ। ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि वह मुझे उसके लिए अधिक कठिन तपश्चर्याके योग्य बनाये।"

दलित-वर्ग-सम्मेलन, अहमदाबादमे अपने भाषणमे गाधीजीने कहा था. "हिन्दू स्वभावत पापी नहीं हैं, वे अज्ञानमें डूबे हुए हैं। मेरी दो बडी इच्छाएँ है, जिनके कारण मैं जीवित हूँ। ये है, अछूतोकी मुक्ति और गायोकी रक्षा। जब मेरी ये दोनो इच्छाएँ पूरी हो जायेंगी, तभी स्वराज्य मिल जायगा और उन्हींकी मुक्तिमे मेरा मोक्ष भी निहित है।"

गाधीजी जिस बातको मानकर चलते थे, उसे जीवन-व्यवहारमे पूरी तरह उतारकर चलते थ, इतना ही नहीं, अपने परिवारवालो, आश्रमवासियोपर भी वह बात उसी तरह लागू थी। हरिजनोकी सेवाके लिए वे इतने आतुर हो गये कि बिना उनकी मुक्ति कराये मानो उन्हे चैन ही नहीं था। इसीलिए उन्होंने निश्चय किया कि समाजमे जो भी सुविधाएँ हरिजनोंके लिए नहीं हैं, उनका लाभ वे स्वय भी नहीं लेंगे और जो उनके विचारोके अनुगामी लोग हैं—चाहे परिवार-वाले हो या आश्रमवासी—वे भी नहीं लेंग। उदाहरणके लिए जिन मदिरोमे हरिजनोंके जानेका निषेध है, उनका उपयोग वे लोग (गाधीजी आदि) नहीं करेंगे। जब एकाध बार कस्तूरबा तथा अन्य आश्रमवासी तीर्थोंके मदिरोंमे दर्शनोके लिए उमड पडनेवाली अपनी भावनाओको नहीं रोक पाये, तब गाधीजीको जितनी वेदना हुई है, वह अवर्णनीय है।

गाधीजीका ही काम था कि जिससे हरिजनोके हितोके लिए समाजमे एक नयी चेतना पैदा हो गयी। भेदभावकी खाइयाँ पटने लगी और हिन्दू-समाजमें अस्पृश्यताका जो घिनौना पाप था, वह कम होने लगा।

हरिजनोत्थानके काममें जिन लोगोने गाधीजीकी भावनाको आत्मसात् करके जीवन खपाया, उनमें अग्रणी व्यक्ति थे स्व० श्री ठक्कर बाप्पा। उन्होने अपने जीवनका समूचा उत्तरकाल इस कामके लिए गाधीजीको समर्पित कर दिया।

सचमुच ठक्कर वाप्पा एक दीनबन्धुके रूपमें ही हरिजनोकी सेवाके लिए गांधीजीको उपलब्ध हो गये थे। ठक्कर बाप्पाने देशके कोने-कोनेमे जाकर हरिजनो, पीडितों, अस्पृश्यो और आदिवासियोंकी सुधि ली। उन्होंने उनकी स्थानीय और तात्कालिक समस्याओंका अध्ययन करके उन्हे दूर करनेका प्रयत्न किया। न केवल ब्रिटिश भारतमें, प्रत्युत रियासती भारतके हर हिस्सेमे जाकर भी उन्होंने अपने 'मिशन' को पूरा करनेमें कोई कसर नही रखी।

यदि गांधीजीने इस महत्त्वपूर्ण कार्यके लिए अपनी शक्ति नही लगायी होती, तो न जाने इस देशका क्या हाल होता। यह गांधीजीकी ही तपस्या, साधना, सूझबूझ और दूरदर्शिताका परिणाम था कि हरिजन-समस्याको उन्होंने सम्हाला और जटिलताओंका मुकाबला करके समय-समयपर उनका समाधान ढूंढा। उन्हे हरिजन-सेवाकी इतनी गहरी तड़प थी और हरिजनोंके सेवाकार्यको समाजमें इतना ऊँचा और जरूरी मानते थे कि वे कहा करते थे कि यदि मेरा अगला कोई जन्म हो और तबतक यदि अस्पृश्यता न मिटी, तो न चाहूँगा कि हरिजनके घरमे जन्म लूं।

३१. हरिजन-यात्रा : सत्याग्रह स्थगित

(१९३३-'३४)

'जे कां रंजले गांजले त्यांसी म्हणे जो आपुलें
तोचि साधु ओळखावा, देव तेथें चि जाणावा।'

—तुकाराम

(जो पीडित-पतितको अपनाता है, वही साधु है और वही भगवान्का निवास है।)

राजनीतिक क्षेत्रमे निष्क्रिय रहनेके लिए विवश हो जानेपर गांधीजी ने नवबर १९३३ मे हरिजन-कार्यके लिए दस महीने देशके हर प्रान्तका दौरा किया। इन दस महीनोका प्रत्येक दिन अस्पृश्यताकी समस्याका अध्ययन और उस समस्याको हल करनेके उपाय सोचनेमे बीता। देशमे भयकर आर्थिक मन्दी थी। फिर भी लगभग आठ लाख रुपया एकत्र हुआ। जहाँ-जहाँ भी वे गये, १९३० केसे ही दृश्य दिखाई देते थे। दो शोचनीय दुर्घटनाएँ घटीं। २५ जून १९३४ को पूना नगरपालिकाकी ओरसे गांधीजीको मान-पत्र दिया जानेवाला था। सभास्थानपर मोटरमे जा रहे थे कि किसीने उनपर बम फेंका, परन्तु गांधीजी बाल-बाल बच गये। अपराधीने भूलमे एक दूसरी कारको गांधीजीकी कार समझ लिया था।

अनुमान किया जाता है कि वह गाधीजीके अस्पृश्यता-निवारणके कामसे चिढा हुआ था।

दूसरी घटना इसके दो हफ्ते वाद अजमेरमे घटी। वहाँ किसी तेज-मिजाज सुधारकने बनारसके प० लालनाथका सिर फोड दिया, जो हरिजन-कार्यके कट्टर विरोधी थे। इस काण्डके वाद गाधीजीने लालनाथजीको सभामे अपना मनोगत प्रकट करनेके लिए कहा। जव लोगोने सुनना नही चाहा तो गाधीजीने कहा कि इस सभा मे वोलनेका जितना हक मुझे है, उतना ही लालनाथको भी है। यदि आप इनको वोलने नही देंगे, तो मैं भी नही वोलूँगा। अन्तमे इस घटनाको लेकर गाधीजीने सात दिनका उपवास किया।

इस आन्दोलनके सिलसिलेमे एक और घटना उल्लेखनीय है। केरलके श्री केलप्पनने गुरुवायूर-मन्दिरके ट्रस्टियोको तीन महीनेकी नोटिस दी थी। १ जनवरी, १९३४ अतिम निश्चय का दिन था। इस निश्चयका अर्थ केलप्पन और गाधीजी दोनोका आमरण अनशन भी हो सकता था। इसलिए तय किया गया कि गुरु-वायूर-मदिर के उपासकोंकी राय ली जाय। इस प्रयोगका फल अत्यन्त सन्तोषजनक और शिक्षाप्रद भी रहा। ७७ प्रतिशत उपासक हरिजनोके मदिर-प्रवेशके पक्षमे निकले।

अनशन तो टल गया, परन्तु सत्याग्रहके सबधमे स्थिति सतोषजनक नही थी। नेता और कार्यकर्ता दोनो थक गये थे। जो तैयार थे, उन्हे सरकार पकडती नही थी। सरकारने एक तरकीव निकाली। वह लाठियोकी वर्षा करती और पकड-पकडकर छोड देती। इससे सत्याग्रहियोको (जेलका) विश्राम नही मिल पाता था।

इन्ही दिनो १६ जनवरीको विहारमे एक भयकर भूकम्प आया, जिसके समाचार पढकर सारा देश हक्कावक्का रह गया। इस भूकम्पका असर ३०,००० वर्गमीलकी लगभग डेढ करोड जनता पर पडा। लगभग बीस हजार मनुष्योके प्राण गये। दस लाख घर नष्ट हो गये। ६५,००० कुएँ-तालाव निकम्मे हो गये।

इस भूकम्पका गाधीजीके कार्यक्रमपर भी असर पडा। आगेका दौरा स्थगित करके वे सीधे विहार गये और एक महीना वहाँ रुककर सहायता-कार्यका पथ-प्रदर्शन करते रहे।

इधर अध्यादेशोके कारण देशमे जो उत्साहहीनता आ गयी थी, उसे ध्यानमे रखकर देशके अन्दर फैली निष्क्रियताको दूर करनेके विचारसे काग्रेस-नेताओने दिल्लीमे एक परिषद् की। उसने निर्णय किया कि स्वराज्य-पार्टी, जो भग कर दी गयी थी, उसे फिरसे जीवित करके बडी धारासभाके निर्वाचनोमें काग्रेस भाग ले और काग्रेसजन एक तरफ रचनात्मक कार्यको पूरा करे और दूसरी तरफ निर्वाचन-क्षेत्रोमे निर्वाचकोको शिक्षित और सगठित करे। कौंसिल-प्रवेशके दो

उद्देश्य हो—(१) दमनकारी कानूनोंको रद्द करना और (२) गांधीजीने गोल-मेज-परिषद्में कांग्रेसके प्रतिनिधिके रूपमें जो माँगें पेश की थीं, उनको पूरी करानेपर जोर देना। यह भी निश्चय हुआ कि डॉ० अन्सारी, श्री भूलाभाई तथा डॉ० विधानचन्द्र राय गांधीजीसे भी इस सम्बन्धमें मार्ग-दर्शन लें।

इन दिनों गांधीजी भूकम्प-पीड़ित प्रदेशोंका दौरा कर रहे थे। सत्याग्रह-की शिथिलता तथा देशकी अवस्थाके बारेमें उनका भी चिन्तन चल ही रहा था। उन्होंने इस सम्बन्धमें एक वक्तव्य भी तैयार कर लिया था। उसे वह प्रकाश-नार्थ भेजने ही वाले थे कि डॉ० अन्सारीका पत्र आ गया कि अगले कार्यक्रमके बारेमें एक शिष्टमण्डल उनसे मिलने आ रहा है। इसपर गांधीजीने अपने वक्तव्यको रोक लिया। शिष्टमण्डलसे बातचीत करनेके बाद वह प्रकाशनार्थ भेज दिया गया। उसमें गांधीजीने परिस्थितिपर अपने विचार और सत्याग्रहियोंके लिए मार्ग-प्रदर्शन करते हुए लिखा था

"इस वक्तव्यका प्रधान कारण एक समाचार है, जो मुझे अपने एक बहुमूल्य साथीके सम्बन्धमें प्राप्त हुआ। उससे मेरी आँखें खुल गयीं। वे जेलका काम पूरा करनेके इच्छुक नहीं थे और मिले हुए कामकी अपेक्षा पुस्तकें पढ़ना अच्छा समझते थे। यह सब-कुछ सत्याग्रहके नियमोंके सर्वथा विरुद्ध था। उन्हें तो मैं पहलेसे भी अधिक स्नेहकी दृष्टिसे देखता हूँ, परन्तु इस बातसे उनकी दुर्बलताओंसे अधिक, मुझे अपनी दुर्बलताका बोध हुआ। मित्रने कहा कि उनकी धारणा थी कि मैं उनकी दुर्बलताको जानता हूँ। पर मैं अन्धा था। नेतामें अन्धापन एक अक्षम्य अपराध है। मैं फौरन जान गया कि फिलहाल मैं अकेला ही सक्रिय सत्याग्रही रहूँगा और मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि यदि सत्याग्रहको पूर्ण स्वराज्य-प्राप्तिके साधनस्वरूप सफल होना है, तो वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए फिलहाल अकेले मुझे ही सत्याग्रहका दायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए।

"सत्याग्रह सोलहो आने आध्यात्मिक अस्त्र है। जेलसे लौटे आश्रमवासियोंके साथ बातचीत करनेके बाद मैंने अपने हृदयको टटोला और उसके बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मुझे सारे कांग्रेसियोंको स्वराज्य-प्राप्तिके लिए सत्याग्रह करना बन्द करनेकी सलाह देनी चाहिए। हाँ, किन्हीं खास शिकायतोंके लिए सत्याग्रह किया जाय, तो बात दूसरी है। इसलिए जो मेरे प्रत्यक्ष दिये गये या अप्रत्यक्ष रूपसे समझे गये परामर्शके अनुसार स्वराज्य-प्राप्तिके हेतु सत्याग्रह करनेके लिए प्रेरित हुए हैं, वे सब कृपा करके अब सत्याग्रह न करें।

"मेरा सच्चे दिलसे विश्वास है कि मानव जातिके पास अपने कष्ट-निवारण-के लिए यह सबसे बड़ा हथियार है। यह हिंसा या युद्धका स्थान ले सकता है। इसलिए यह आतंकवादी कहे जानेवाले व्यक्तियोंके हृदयोंतक पहुँच सकता है और उस सरकारतक भी पहुँच सकता है जो आतंकवादियोंका बीज ही मिटा देना

चाहती है। यह काम जैसे-तैसे किये गये सत्याग्रहसे नही वन सकता। केवल न्या महत्वकी वस्तु नही है। शुद्ध सत्याग्रहसे यह वन सकता है। इस तथ्यकी सत्यताकी जांच करनेके लिए सत्याग्रह एक समयमे एक ही आदमी तक सीमित रहना चाहिए।

"पर सत्याग्रहमे मुक्त होनेके वाद सत्याग्रही क्या करे ? यदि वे फिर कभी आह्वान होनेपर आगे वढना चाहते है, तो उन्हें स्वार्थ-त्याग और स्वेच्छापूर्वक स्वीकार की गयी दरिद्रताकी कलाको और उसकी सुन्दरताको समझकर राष्ट्र-निर्माणके काममे लग जाना चाहिए। वे स्वय अपने हाथकी कती-वुनी खादी पहनकर खादीका प्रचार करें। वे प्रत्येक क्षेत्रमे एक-दूसरेके साथ निर्दोष सम्पर्क स्थापित करके साम्प्रदायिक एकताका वीज वोयें। स्वय अपने उदाहरणके द्वारा अस्पृश्यताके प्रत्येक रूपका निवारण करें और नशेवाजोके साथ सम्पर्क करके और आचरणको पवित्र रखकर मादक द्रव्योके त्यागका प्रचार करे। ये सेवाएँ है जिनके द्वारा गरीवोकी तरह निर्वाह हो सकता है। जो लोग दरिद्रकी भाँति नही रह सकें, उन्हें किसी छोटे राष्ट्रीय धन्वेमें पड जाना चाहिए।

"इस वक्तव्यको प्रकाशित करके मै काग्रेसके अधिकारमें दस्तदाजी नही कर रहा हूँ। यह तो केवल उन्ही लोगोके लिए है, जो सत्याग्रहके मामलमे मेरा परामर्श चाहते ह।"

३२. कांग्रेससे संन्यास

(१९३४)

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्यात् विद्वास्तयासक्तः चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥ —गीता ३ २५

(साधारण मनुष्य कर्ममें आसक्ति रखते है, परन्तु लोक-सग्रह करनेकी इच्छा-वाले विद्वान् पुरुष कर्म तो करते हैं, परन्तु आसक्ति नही रखते।)

काग्रेसमे गाधीजीके और उनके कुछ साथियोके मतभेद वढते जाते थे। यह देखकर गाधीजीने उससे अपना स्थूल सवध हटा लेना उचित समझा और १७ सित-म्वरको उन्होने एक लम्वा वक्तव्य दिया

"मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि वहुतसे काग्रेसवालो और मेरी विचार-दृष्टि के वीच एक वढता हुआ गहरा अन्तर मौजूद है। मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि वहुतसे वुद्धिशाली काग्रेसवाले यदि मेरे प्रति अनुपम श्रद्धाके वन्धनमे जकडे न होते, तो प्रसन्नताके साय विलकुल विपरीत दिशामे चले जाते। मै देखता हूँ कि इस अप्रतिम श्रद्धापर मुझे अनुचित दवाव नही डालना चाहिए। मतभेद मौलिक हैं।

"सबसे पहले चरखा और खादीको लीजिये। बुद्धिशाली कहे जानेवाले कांग्रेसियोंमेसे चरखा लुप्त-प्राय हो गया है। इसमे उनका विश्वास ही नही रह गया है। दूसरी तरफ मेरा यह विश्वास बढता जा रहा है कि यदि भारतको अपने लाखो गरीबोके लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करनी है और वह भी शुद्ध अहिंसाद्वारा, तो चरखा और खादी शिक्षितोके लिए वैसी ही स्वाभाविक हो जानी चाहिए, जैसी कि लाखो बेकारोके लिए है जो आधा पेट भूखे रहते है और जो भगवान्‌के दिये हाथोको काममे नही ला पा रहे है और इस कारण पृथ्वीपर भाररूप हो गये हैं। इस प्रकार चरखा मानवके गौरव और समानताका शुद्ध चिह्न है। वह खेतीका सहायक धन्धा है तथा राष्ट्रका बायाँ फेफडा है, जिसे काममे न लाने के कारण हम नष्ट हो रहे हैं। बहुत कम कांग्रेसजनोको चरखेकी इस सामर्थ्यमे यह विश्वास है।

"इसी प्रकार पार्लियामेट बॉडीकी बात लीजिये। आज देशके सामने सामूहिक सत्याग्रहकी कोई योजना नही है। ऐसे समय कांग्रेसके नियन्त्रणमे एक पार्लियामेटरी पार्टी बनाना किसी भी कार्यक्रमका आवश्यक अग है। यहाँ भी हम लोगोके बीच गहरा मतभेद है। पटनावाली महासमितिकी बैठकमे मैंने जिस जोरके साथ इस कार्यक्रमको पेश किया था, उसने हमारे बहुतसे साथियोको व्यथित किया और वे उसपर चलनेमे हिचकिचाये। अनेक बार मनुष्यको अनुभव और बुद्धिमे बडे आदमीके सामने अपने मतको दबा देना पडता है। परन्तु ऐसा बार-बार करना दुखदायी बन जाता है। मै तो जन्मना लोकतन्त्रवादी हूँ। अत मेरे लिए तो यह लज्जाकी बात है।

"मैंने समाजवादी दलका स्वागत किया है, जिसमे मेरे बहुतसे आदरणीय और त्यागी साथी मौजूद हैं। यह सब होते हुए भी उनका जो अविकृत कार्यक्रम छपा है, उससे मेरा मौलिक मतभेद है। किन्तु उनके साहित्यमे प्रतिपादित सिद्धान्तोका फैसला अपने नैतिक दबावसे मै रोकना नही चाहता, उनके सिद्धान्तोको स्वतन्त्रताके साथ प्रकट करनेमे मै हस्तक्षेप नही कर सकता, चाहे उनमेसे कुछ सिद्धान्त मुझे कितने ही नापसन्द हो। यदि इन सिद्धान्तोको कांग्रेसने स्वीकार कर लिया, तो मै कांग्रेसमे नही रह सकता और कांग्रेसमे रहकर सक्रिय विरोध करते रहनेकी बात तो मेरी कल्पनामे भी नही आती।

"देशी रियासतोके सम्बन्धमे भी ऐसी ही बात है।

"अस्पृश्यताका प्रश्न मेरे लिए एक धार्मिक और नैतिक प्रश्न है। बहुतोका विचार है कि इस प्रश्नको जिस तरह और जिस समय हाथमे लिया है, उससे सत्याग्रह-आन्दोलनकी गतिमे बाधा पडी है।

"और अहिंसा तो १४ वर्षके प्रयोगके बाद भी अधिकाश कांग्रेसियोंके लिए एक नीति-मात्र है। जब कि मेरे लिए तो वह मूल सिद्धान्त है। कांग्रेसवाले अभी-

तक अहिंसाको जो सिद्धान्त रूपमे स्वीकार नही कर पाये, इसमे उनका कोई दोष नहीं है। शायद मेरे द्वारा उसके प्रतिपादन और अमलमे ही कही दोष है।

"और यदि अहिंसाके सम्बन्धमे यह बात है तो सत्याग्रहका क्या कहूँ ? सत्ताईस वर्षके अनुभवके बाद भी मैं यह दावा नही कर सकता कि मै उसके सबधमे कुछ जानता हूँ। फिर भी चाहे मैं कैसा भी अपूर्ण हूँ, पर इसका एकमात्र विशेषज्ञ होनेके कारण मै इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि कुछ समयके लिए सत्याग्रह मुझतक ही सीमित रहना चाहिए। अनेक व्यक्तियोसे होनेवाली भूलको रोकनेके लिए तथा एक ही व्यक्तिके द्वारा किये जानेवाले सत्याग्रहकी गूढ सभावनाओका पता लगानेके लिए मेरा यह निश्चय आवश्यक है। परन्तु यहाँ भी अपने विचार अपने साथियोसे स्वीकार करानेमे मुझे अधिकाधिक कठिनाई मालूम हुई है। यह तो मैं बार-बार कह चुका हूँ कि देश अहिंसाके मार्गपर बहुत आगे बढा है। यह भी सच है कि बहुतेरोने बेहद साहस और अपूर्व त्याग दिखाया है। फिर भी मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि हम मन, वचन और कर्मसे विशुद्ध अहिंसक नही रहे है। अब मेरा यह परम धर्म हो गया है कि म सरकार और आतकवादियो, दोनोको आइनेकी तरह साफ-साफ दिखा देनेका उपाय करूँ कि अहिंसा, सही लक्ष्य प्राप्त करानेमे, जिसमे पूर्ण स्वतत्रता भी शामिल है, पूर्ण समर्थ है। अहिंसात्मक साधनका अर्थ है हृदय-परिवर्तन, न कि बलात्कार।

"इस प्रयोगके लिए जिसके लिए मेरा जीवन अर्पित है, मुझे पूर्ण निस्सग और स्वतत्र रहनेकी आवश्यकता है। सविनय-अवज्ञा सत्याग्रहका एक अग है और सत्याग्रह मेरे लिए जीवनका एक व्यापक नियम। सत्य ही मेरा नारायण है। अहिंसाके द्वारा ही मैं उसकी खोज कर सकता हूँ, अन्यथा नही। मेरे देशकी ही नही, सारी दुनियाकी स्वतत्रता सत्यके अनुसन्धान मे ही सन्निहित है। सत्यकी इस खोजको मै न तो इस लोकके लिए स्थगित कर सकता हूँ, न परलोकके लिए। इसी अनुसन्धानके उद्देश्यसे मैंने राजनीतिक क्षेत्रमें प्रवेश किया है और अगर मेरी यह बात बुद्धिशाली काग्रेसजनोकी बुद्धि और हृदय स्वीकार नही करता कि सत्यके अनुसन्धानके द्वारा पूर्ण स्वाधीनता और ऐसी ही बहुत-सी वस्तुएँ—जो सत्यका अश हैं—प्राप्त हो सकती है, तो यह स्पष्ट है कि अब मैं अकेला ही काम करूँ और यह विश्वास रखूं कि जो बात आज मैं अपने देशवासियोको नही समझा सकता, वह किसी दिन अपने आप उनकी समझमे आ जायगी।

"सामान्य लक्ष्यकी बात भी विचारणीय है। मुझे इस बातमे सन्देह होने लगा है कि क्या सभी काग्रेसजन 'पूर्ण स्वाधीनता' शब्दसे एक ही अर्थ ग्रहण करते हैं। स्वय मेरे लिए तो 'पूर्ण स्वराज्य' पूर्ण स्वतत्रतासे भी कही अधिक व्यापक है।

"इस 'पूर्ण स्वराज्य'के अर्थके अलावा एक और बात मेरे ध्यानमे आनी है। सन् १९०८ से मैं बराबर कहता आया हूँ कि साधन और साध्य समानार्थक हैं।

इसलिए जहाँ साधन अनेक और परस्पर विरोधी भी है, वहाँ साध्यका रूप भी अवश्य ही भिन्न-भिन्न हो जायगा। साधन हमारे हाथकी बात है, साध्य नही। अत यदि हमारे साधन समान-प्रकृतिवाले हो, तो साध्यकी चिंता करनेकी जरूरत नही होगी परन्तु इस बातको सभी स्वीकार करेंगे कि बहुतेरे काग्रेसवाले (मेरे विचारसे) इस स्पष्ट सत्यको स्वीकार नही करते। उनका विश्वास है कि साध्य शुद्ध हो तो साधन चाहे जैसे काम मे लाये जा सकते है।

"इन सब मतभेदोने ही काग्रेसके वर्तमान कार्यक्रमको विफल बना दिया है कारण, जो काग्रेसजन कार्यक्रममे हृदयसे विश्वास किये बिना मुँहसे उसकी हामी करते रहते है वे स्वभावत उसे कार्य में परिणत नही कर सकते और मेरे पास उस कार्यक्रमके सिवा दूसरा कार्यक्रम है ही नही, जो इस समय देशके सामने है अर्थात्—

१. अस्पृश्यता-निवारण
२. सपूर्ण मद्यनिषेध
३. हिन्दू-मुस्लिम एकता
४ चरखा, खादी-ग्रामोद्योगके रूपमे सौ फीसदी स्वदेशी* और
५. सात लाख गाँवोका सगठन।

यह कार्यक्रम प्रत्येक देश-भक्तकी देश-भक्तिको तृप्त करनेके लिए काफी होना चाहिए।"

अतमे गाधीजीने काग्रेसजनोके कुछ गुण-दोषोकी चर्चा करते हुए लिखा कि "यदि ऐसी सस्थासे मुझे अलग होना ही पडे तो यह नही हो सकता कि ऐसा करनेमे विछोहकी असहनीय पीडा मुझे न सहन करनी पडे। परन्तु मै तभी ऐसा करूँगा, जब मुझे निश्चय हो जायेगा कि काग्रेसके अन्दर रहनेकी अपेक्षा उसके बाहरमे देशकी अधिक सेवा कर सकूँगा।"

इस चर्चाके बाद गाधीजीने काग्रेस-सगठनको तेजस्वी बनानेके लिए कुछ स्पष्ट प्रस्ताव उसके विचारार्थ प्रस्तुत किये .

"१. उद्देश्यमे 'उचित और शातिमय' शब्दके स्थानपर 'सत्यतापूर्ण और अहिंसात्मक' शब्द रखे जायें,
२. सदस्यताका चन्दा वार्षिक चार आनेके बदले प्रतिमास पद्रह नम्बरका अपना ही कता २००० गज सूत सदस्य दें।

---

*इस अधिवेशनकी मुख्य घटना थी ग्रामोद्योग-सघकी स्थापना। इसके बारेमें यह तय हुआ था कि वह गाधीजीकी देखरेखमें काम करेगा और राजनीतिक हलचलोंसे अलग रहेगा।

३. काग्रेसके निर्वाचनमे ऐसे किसी सदस्यको मत देनेका अधिकार न हो जिसका नाम छह महीने तक काग्रेसके रजिस्टरपर न रहा हो।

४. वार्षिक अधिवेशनमे ६००० के वजाय प्रतिनिधियोकी अधिकतम सख्या १००० हो।

"यदि काग्रेसकी नीतिका सचालन मेरे जिम्मे रहे, तो मै इन सशोधनोको और अन्य प्रस्तावोको, जो मेरे इस वक्तव्यके अनुकूल हो, देशके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए अति आवश्यक समझता हूँ। जिस किसी सस्थाकी सदस्यता भी स्वेच्छापर निर्भर करती है, उसके सदस्य अपने प्रस्तावो और नीतिको जवतक तन-मनसे कार्यान्वित नही करते, तबतक उसका उद्देश्य सिद्ध नही हो सकता और जिस नेता-का अनुसरण उसके अनुयायी शुद्ध भावसे, पूरे मनसे, और वुद्धिपूर्वक नही करते वह भी अपना कर्तव्य पूरा नही कर सकता। जिस नेताके पास सत्य और अहिंसा-के सिवा और कोई साधन नही, उसके लिए तो यह वात और भी सत्य है। इस-लिए स्पष्ट है कि मैने जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया है, उसमे समझौतेकी कोई गुजाइश नही। कार्यकर्ताओको चाहिए कि वे शात भावसे उसके गुण-दोषोपर विचार कर ले। वे मेरा कोई लिहाज न करे और अपनी विवेक-बुद्धिसे काम ले।"

इसके वाद वम्वई-काग्रेससे गाधीजीने अपने आपको इस वोझसे मुक्त कर लिया।

वम्वई-अधिवेशनका अतिम दिन। ता० २८ को गाधीजी काग्रेससे अलग होने का यह निश्चय सुनानेके लिए आये। वह दृश्य वडा हृदयस्पर्शी था। सभा-स्थान पर वैठे ८०,००० मनुष्योका सपूर्ण जनसमुदाय उनके प्रति अपना आदर प्रकट करनेके लिए खडा हो गया। अधिवेशनने उनके प्रति अपना आदर और श्रद्धा प्रकट करनेके लिए एक प्रस्ताव मजूर करते हुए कहा

"यह काग्रेस गाधीजीके नेतृत्वमे पुन अपना विश्वास प्रकट करती है और यद्यपि वह उनके निश्चयको अनिच्छापूर्वक स्वीकार करती है, तथापि उन्होंने राष्ट्रकी जो अपूर्व सेवाएँ की है, उनके लिए अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती है। काग्रेस उनके इस आश्वासन पर भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है कि जव-जव भी उनकी सलाह और मार्ग-दर्शनकी जरूरत होगी, वह उसे सदा उपलव्ध रहेगा।"

इसके वाद गाधीजीने फिर कहा—"अव मैं दूर वैठकर दिलचस्पीके साथ देखता रहूँगा कि काग्रेस अपने सिद्धान्तोपर किस प्रकार अमल कर रही है। अगर हम पूर्णत. सच्चे हैं तो हमे समझ लेना चाहिए कि हमारे कार्यक्रमका प्रधान अग आर्थिक, सामाजिक और नैतिक रहा है और चूंकि यह कार्यक्रम हमारे देशकी स्वतत्रताके साथ जुड गया है, इसलिए यह और भी शक्तिशाली वन गया है। स्वतत्रताका अर्थ केवल दूसरे देशकी गुलामीसे मुक्तिमात्र है, मित्रतासे नही। इसका अर्थ यह है कि संपूर्ण समानताके स्तरपर स्वेच्छापूर्वक हमारा सम्वन्ध सव

देशोंसे बना रहेगा। सावधानीके रूपमें एक बात मैं और कह दूँ। कोई यह न समझे कि खादी और सूत-मताधिकार अभी तुरन्त अमलमें नहीं आयेगा। उसपर तो आजसे ही अमल होगा। मेरी यह भूल थी, यद्यपि वह अनजानेमें हुई थी कि मैंने शुरूमें ही इस बात पर जोर नहीं दिया और इसे सविनय अवज्ञाकी अनिवार्य शर्त नहीं बना दिया। कांग्रेससे मेरे इस सन्यासको आप इस भूलका प्रायश्चित्त ही समझें। मेरा उद्देश्य अब सविनय-अवज्ञाकी पात्रता प्राप्त करना है। पूर्ण विनयके साथ जब कानून-भंग होता है तब उसमें बदलेकी भावना पैदा हो ही नहीं सकती।'

३३. मेरा स्वराज्य और चरखा

(१९३९)

'एवं प्रवर्तितं चक्रम्।' —गीता ३ १६

गांधीजी अपनी मान्यताके स्वराज्यके साथ चरखेका अमिट सबंध मानते थे। वे कहते थे "मेरे 'स्वराज्य' को लोग अच्छी तरह समझ लें। भूल न करें। संक्षेपमें वह है विदेशी सत्तासे सम्पूर्ण मुक्ति और साथ ही सम्पूर्ण आर्थिक स्वतंत्रता। इस प्रकार एक सिरेपर राजनीतिक स्वतंत्रता है और दूसरे सिरेपर है आर्थिक स्वतंत्रता। परन्तु इसके दो सिरे और भी हैं। इनमेंसे एक है नैतिक और सामाजिक और दूसरा है धर्म। धर्म अपने ऊँचेसे ऊँचे अर्थमें। इसमें हिन्दू-धर्म, इस्लाम, ईसाई, वगैरह सब आ जाते हैं, परन्तु एक जो इन सबसे ऊपर है, इसे आप सत्यका नाम दे सकते हैं। सत्य यानी केवल प्रासंगिक ईमानदारी नहीं। बल्कि वह परम सत्य (तत्त्व) जो सर्वव्यापक है और जो उत्पत्ति और लयसे परे है।

नैतिक और सामाजिक उत्थानको हमने 'अहिंसा' का नाम दिया है। यह है स्वराज्यका चतुष्कोण। इसमेंसे एक भी कोण अगर सच्चा नहीं है, तो हमारे चतुष्कोणकी सूरत ही बदल जाती है। कांग्रेसकी भाषामें कहें तो हमें सत्य और अहिंसाके बगैर राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। अर्थात् जबतक ईश्वरमें हमारी अनन्य, जीती-जागती श्रद्धा नहीं होगी—हम नैतिक और सामाजिक दृष्टिसे शुद्ध नहीं होंगे—सच्चा स्वराज्य नहीं आयेगा।

राजनीतिक स्वतंत्रतासे मेरा मतलब अंग्रेजोंके हाउस ऑफ कामन्स, या रूसके सोवियत शासन, अथवा जर्मनी या इटलीकी फासिस्ट शासन-प्रणालीकी नकलसे नहीं है। उनकी शासन-प्रणालियाँ उनकी अपनी-अपनी प्रतिभाके अनुसार होंगी। परन्तु स्वराज्यमें हमारी शासन-प्रणाली हमारी अपनी प्रतिभाके अनुसार हो। वह कैसी होगी यह मैं नहीं बता सकता। मैंने उसका वर्णन 'रामराज्य' शब्दके द्वारा किया है, अर्थात् विशुद्ध नैतिक आधारपर स्थापित लोकतन्त्र।

अब आर्थिक स्वतन्त्रताको लीजिये। उसका स्वरूप आधुनिक या पश्चिमी उद्योगीकरणके जैसा नही होगा। भारतकी आर्थिक स्वतन्त्रताका जो स्वरूप मैंने सोचा है, उसमे इस देशकी प्रत्येक स्त्री और प्रत्येक पुरुष अपनी बुद्धि और अपने परिश्रमसे अपनी आर्थिक उन्नति करेंगे। उस समाजमे सब स्त्रियो और सब पुरुषोको आजकी भाति केवल लँगोटी नही, बल्कि सभी प्रकारके आवश्यक कपडे और दूध तथा मक्खन सहित (आज तो करोडोको इनका दर्शन भी नही होता), भरपेट पोषक अन्न मिलेगा।*

अब यह चर्चा मुझे समाजवादकी ओर ले जाती है। सच्चे समाजवादका स्वरूप तो हमे हमारे बुजुर्गोंने 'सबै भूमि गोपालकी' कहकर पहले ही बता दिया है। अब इसमे कही कोई सीमा है? अगर कोई सीमाकी लकीर है—तो वह मनुष्यने ही खीची है, इसलिए वही मिटा भी सकता है। 'गोपाल'का शाब्दिक अर्थ तो है ग्वाला, परन्तु उसका अर्थ ईश्वर भी है। आजकलकी भाषामे उसे 'जनता-जनार्दन' भी कह सकते है। यह सच है कि आज वास्तवमे जमीनपर जनताका स्वामित्व नही है। पर इसमे दोष उस सत्यका नही, हमारा है, जो उसपर अमल नही कर रहे हैं।

"पर मुझे निश्चय है कि हम उस सत्यपर, रूस-सहित किसी भी राष्ट्रके समान, अमल कर सकते हैं। और सो भी बगैर हिंसाके। मारकाटके बगैर बेदखली करनेका सबसे कारगर मार्ग है चरखा—अपने संपूर्ण अर्थमे। अर्थात् जमीन और सारी जायदाद उसकी होगी, जो स्वय उसपर परिश्रम करेगा। दुर्भाग्यसे यह सीधी-सी बात मजदूरोको समझायी नही गयी है या समझायी नही जा रही है।

"हिन्दुस्तान इतना दरिद्र कैसे हो गया, यह बात समझ लेनेकी है। इतिहास कहता है कि यहांके कपडा उद्योगको ईस्ट इण्डिया कम्पनीने नष्ट किया और मनुष्यकी इस दूसरे नम्बरकी सबसे बडी जरूरतकी चीजके लिए इस देशको लकाशायरका मोहताज बना दिया। आज भी (१९३६) बाहरसे हम जितनी चीजे मँगाते हैं, उनमे सबसे बडी मात्रा कपडेकी ही है। इस प्रकार आंशिक रूपमे बेकार लोगोकी एक बहुत बडी फौज यहाँ खडी हो गयी जिसे और कोई काम नही दिया गया। ओटाई, धुनाई, कताई, बुनाईके साथ-साथ एक हदतक गाँवोंके अन्य उद्योग भी खत्म हो गये। वर्षोंकी लगातार लम्बी बेकारीने लोगोको आलसी बना दिया—जो सबसे बडे दुःखकी बात है। इस प्रकार हमारी इस अत्यधिक

* इस विषयमें गांधीजीने कत्तिनोंको 'जीवन-मजूरी' अर्थात् कम-से-कम आठ आना रोजके हिसाबसे कमाई देनेपर जोर दिया था। वे चाहते थे कि खादीको ग्राहकोंके लिए सस्ती बनानेके प्रयत्नमें कत्तिनोंका शोषण नहीं होना चाहिए।

दरिद्रताका कारण विदेशी राज्य तो है ही, परन्तु हम मध्यम वर्गके लोग खुद उनसे भी अधिक इसके लिए जिम्मेदार हैं। हमने ही अपने थोडेसे लाभके लालचमें इस महान् देशकी आर्थिक स्वतन्त्रताको विदेशियोंके हाथ बेचा है। इसलिए यदि हम अपनी इस भूलको समझ ले और चरखेका संदेश गाँवोमें ले जायें तथा लोगोंको अपना आलस्य दूर करके चरखा पुन ग्रहण करनेके लिए राजी कर सकें तो बहुत बडी हदतक उनकी हालत सुधर सकती है। परन्तु अगर हम यह नहीं कर सके, लोगोमें उद्योगशीलता नहीं आयी, और आलस्य ही कायम रहा तथा आशाका स्थान कहीं निराशाने ले लिया तो याद रखिये, इसका परिणाम महा भयकर होगा।"

खादीको वैचारिक और भावनात्मक भूमिकापर दृढ करनेके साथ-साथ उनको समाज जल्दी और आसानीसे ग्रहण कर सके तथा आर्थिक दृष्टिसे वह महँगी न पडे, इस दिशामें भी गाधीजीने पूरा ध्यान दिया। चरखा हलका हो, कताईका वेग बढे, इस दिशामें अनेक प्रयोग हुए। चरखा हाथके बजाय पाँवसे चलाया जा सके तो एकके बजाय दो हाथोंसे दो तार निकल सकते है, ऐसा एक चरखा बना। उसके बाद प्रवासमे आसानीसे ले जा सकें, तथा घरपर बच्चोंको तकुआ लगे नहीं, इस हेतुसे यरवदा पेटी-चक्र आया। यह गाधीजीका ही आविष्कार था। इसका एक छोटा रूप भी तैयार हुआ जो वजन, आकार और देखनेमे एक बडी किताबके जैसा है। नाम है 'सुदर्शन'। दक्षिणके एक कारीगरने छह तकुओंका एक चरखा बनाया जिसपर एक साथ छह तार निकल सकते हैं। कारीगरके नामपर ही इसका नाम 'अम्बर चरखा' है। पहले यह लकडीका बना। अब पूरी तरहसे यह लोहेका बन गया है और इसमें धुनाई होकर पूनियाँ बन जाती हैं और सूत कातकर लपेट लिया जाता है। यह अगर गाँवोंमें पहुँच सके तो कपडा-उद्योगमें क्रान्ति हो सकती है। इसकी चाल सायकिलकी तरह किसीको भी आकर्षित कर लेती है। यह जब चल निकलेगा तब सायकिलकी तरह इसके भी पुर्जे बाजारोंमें मिलने लगेंगे और इसे सुधारनेवालोकी दूकानें गली-गली खुल सकती हैं और गाँव अपने कपडेके बारेमे स्वावलम्बी बन सकते हैं।

चरखेके ही समान खादीकी अन्य प्रक्रियाओंमें भी काफी सुधार हो गया है। यदि शासन और समाज इनकी सारी सभावनाओंको समझ करके इस तरफ ध्यान देने लगे तो गाँवोकी सूरत देखते-देखते बदल सकती है। सिर्फ दृष्टि बदलनेकी जरूरत है। अभीतक यन्त्रशास्त्रका रुख केन्द्रित उद्योग और बडे पैमानेपर उत्पादन द्वारा शोषणकी ओर रहा, जिसके कारण समाज बड़े उद्योगपतियो और सरकारोंका मोहताज बन गया। अब यदि वह शोषण मिटानेके लिए विकेन्द्रीकरणकी ओर हो जाय तो नया समाज, नये गाँव, और नये शहर बन सकते हैं।

३४. हमारे गाँव

(१९३६)

[१]

हमारे देश और हमारे समाजकी काया-पलट करनेके लिए गाधीजीने एकदम बुनियादी ढगसे सोचा था। ग्राम-सुधारपर और गाँवोकी हर समस्यापर उन्होने सबसे अधिक जोर दिया है। वे प्राय कहा करते "हिन्दुस्तान शहरोमे नही, गाँवोमे बसता है। शहर भी जी रहे है और टिके हुए है गाँवके आधारपर ही। गाँववाले भी शहरोकी नकल नही करे। अपना उद्धार वे खुद ही कर सकते है।

"आरोग्यकी दृष्टिसे गावोकी स्थिति बहुत दयनीय है। आरोग्यके लिए आवश्यक और आसानीसे मिल सकनेवाले ज्ञानका अभाव हमारी गरीबीका एक सबल कारण है।

"हमारे अधिकाश गाँव, घूरे (जहाँ गाँववाले गदगी फेंकते है और सारे खादपातका ढेर लगाये रहते है) की-सी हालतमे दिखाई देते है। लोग जहाँ-तहाँ पाखाना फिरते है, घरका सहनतक नही बचता। फिरे हुए पाखानेकी कोई फिक्र नही करता। गाँवमे कही रास्ते ठीक नही रखे जाते। कही ऊँची मिट्टीका ढेर है, कही गड्ढा हो रहा है। आदमी और पशु दोनोको चलनेमे तकलीफ होती है।

"किसी भी गाँवमे चले जाइये, आपको गदगी मिलेगी। पेशाब तो बडे-बूढे भी चाहे जहाँ करते मिलेंगे। अजनबी दर्शक घूरे और गाँवकी बस्तीमे भेद नही कर सकता। यह आदत—चाहे जितनी पुरानी हो, फिर भी कुटेव ही है और उसे निकाल डालना चाहिए। तीर्थ-क्षेत्रोमे भी खासी गदगी होती है। और, गाँवोकी अपेक्षा ज्यादा होती है, यह कहनेमे भी शायद अत्युक्ति न होगी।

"इसलिए ग्रामसेवकका पहला धर्म ग्रामवासीको स्वच्छता-सफाई की तालीम देनेका है।

"ग्रामसेवकको चाहिए कि गाँववालोको इकट्ठाकर पहले तो उन्हें उनका धर्म समझाये और तत्काल उनमेसे स्वयसेवक मिलें या न मिलें, उसे स्वय सफाईका काम शुरु कर देना चाहिए। उसे गावमेसे फावडा, टोकरी, झाडू आदि चीजे जुटा लेनी चाहिए।

"इसके बाद स्वयसेवक रास्तोकी जाँच करें और जहाँ पाखाना-पेशाब हो वहाँ पहुँच जायँ। पाखानेको फावडेमे अपनी टोकरीमे उठा लें और फिर उन जगहपर मिट्टी डाल दें। जहाँ पेशाब हो, वहाँ भी फावडेसे ऊपरकी गीली मिट्टी टोकरीमे उठा लें और उसपर आसपासकी साफ धूल बिखेर दें। आसपास कूडा हो तो उसे

झाड़ूसे बटोरकर एक किनारे उसकी कुड्ढी लगा दें और पाखानेको ठिकाने लगानेके बाद कूड़ेको उसी टोकरीमे बटोरकर ठिकाने लगा दें।

"यह पाखाना खेतिहरके लिए सोना है। खेतमे डालनेसे उसकी बढिया खाद बनती है और बडी अच्छी पैदावार होती है। अतएव स्वयसेवकोको चाहिए कि किसानको यह चीज समझाकर जो किसान इजाजत दे, उसके खेतमे गाडे।

"कूडा दो तरहका होता है। एक तो खादके लायक, जैसे साग-तरकारीके छिलके, सड़ा अनाज, घास इत्यादि। दूसरा कूडा लकडी, पत्थर, लोहे वगैरहका। इसमे खादके योग्य कूडा खेतमे या जहाँ उसे खादकी शक्लमे इकट्ठा करना हो, वहाँ डालना चाहिए। दूसरा कूडा जहाँ गड्ढे वगैरह भरने हो, वहाँ ले जाकर डालना चाहिए। इससे गाँव साफ रहेगा और नगे पैरो चलनेवाले निश्शक होकर चल सकेंगे। कुछ दिनोकी मेहनतके बाद लोग अवश्य इस चीजको समझेंगे, तब स्वय भी मदद करने लगेंगे और अतमे अपने-आप ही करने लगेंगे।

"यदि कोई खेत न मिल सके तो मल गाडकर उस स्थानपर कोई निशान रख देना चाहिए। इससे रोज डालते जानेमे आसानी होगी और किसानोको समझ आनेपर इस इकट्ठे किये हुए खादका वे उपयोग कर सकेंगे।

"इस पाखानेको बहुत गहरे नही गाडना चाहिए। धरतीके नौ इच तककी परतमे बेशुमार परोपकारी जीव बसते है। उतनी गहराईमे जो कुछ हो, उसकी खाद बना डालना और सारे मैलेको शुद्ध करना उनका काम होता है। सूर्यकी किरणें भी रामदूतकी भाँति भारी सेवा करती हैं।

"पाखानेके लिए चौरस या लम्बा-चौरस बडा गड्ढा होना चाहिए, क्योकि गाडे हुए पाखानेपर फिर पाखाना नही डालना है और तुरन्त खोलना भी नही है। इसलिए पहले दिन जहाँ गाडा गया है, उसके पास ही दूसरा एक चौरस गड्ढा तैयार रखना चाहिए। उसकी निकली हुई मिट्टी एक किनारे लगायी हुई होनी चाहिए। दूसरे दिन आकर पाखाना डालनेके बाद वह मिट्टी इसपर डालकर फैला दे और जगह बराबर चौरस कर दें।

"इसी प्रकार छिलको वगैरहको गाडना चाहिए, लेकिन दूसरी जगह, क्योकि पाखाने और छिलके एक साथ नही गाडे जा सकते। दोनोपर जतुओकी क्रिया एक-सी नही होती।

"महीनेभर इस प्रकार बिना अधिक मेहनतके ही गाँव घूरे सरीखा न रहकर सुन्दर, स्वच्छ हो जायेगा।

"यह कहनेकी आवश्यकता नही रह जाती कि जो चीज पाखाने-पेशाबके लिए लागू है, वही गोबर और पशुके मूत्रके लिए भी है। गाय, भैस वगैरह जानवरोके मूत्रका हम कुछ उपयोग नही करते, इससे वह गदगी बढानेका ही काम करता है। गोबरका पूरा सदुपयोग उसकी खाद बनानेमे ही है। कृषिशास्त्रके जानकारोका

मत है कि गोवरको जला डालनेसे हमारे खेतोका कस (ताकत) कम हो गया है। विना खादके खेतको बिना घीके लड्डू-जैसा रूखा समझना चाहिए।

"रासायनिक खादकी उपयोगिता गोवर-मल-मूत्रकी तुलनामे वहुत कम है। रासायनिक खादके उपयोगसे अक्सर फसल बढ तो जाती है, हरियाली भी बढ जाती है, पर गुणकी हानि होती है। कितने ही वैज्ञानिकोका मत है कि रासायनिक खादसे बीघे पीछे गेहूँ ज्यादा पैदा होगा, चमकीला होगा और दाना भी मोटा वडा होगा। पर प्राकृतिक खादवाले खेतमे जो गेहूँ होगा, वह परिमाणमे भले ही कम हो, पर मिठास और पौष्टिकतामे उससे वहुत अच्छा होगा। इसलिए पशुके गोवर और मूत्रको खादके लिए उपयोग करनेका, तत्सवघी सम्पूर्ण ज्ञान देनेका काम भी ग्रामसेवकका ही होना चाहिए।

"लोक-शिक्षणकी दृष्टिसे अक्षर-ज्ञानकी आवश्यकताको वहुत ही गौण स्थान मिलना चाहिए। या यह कहा जा सकता है कि जीवनके मुख्य अगोके लिए अक्षरोका स्थान ही नही है—कोई जरूरत ही नही। 'मोक्ष' हमारी आत्यतिक आखिरी स्थिति है। कौन इनकार करेगा कि सांसारिक लाभ और पारलौकिक मोक्षके लिए अक्षरकी जरूरत नही है ? करोडोके अक्षर-ज्ञानतक स्वराज्य-प्राप्तिके लिए हमे ठहरना पडे तो स्वराज्य-प्राप्ति लगभग अशक्य-सी हो जाय।

"अक्षर-ज्ञान साघन है, साध्य नही। यह वात जग-जाहिर है कि साघनकी भाँति उसका वहुत उपयोग है। पर काम-घघेमे पडे हुए वडी उम्रके करोडो किसानोके लिए किस ज्ञानकी अधिक आवश्यकता है, इसका विचार करते हुए हम देखते है कि अक्षर-ज्ञानके पहले अनेक चीजें ऐसी हैं कि जिनका ज्ञान उन्हें आज ही मिल जाना चाहिए।

"सव गाँवमे रहनेवाले साथियोका अनुभव है कि वहाँके मामूली रोग बुखार, पेचिश और फोडे होते है, और भी अनेक रोग होते है। इनका निवारण वहुत आसानीसे हो सकता है। स्वर्गीय डॉक्टर देवकी देखरेखमे जिस कामका आरम्भ चम्पारनमे हुआ था, उस काममे इन रोगोका निवारण भी था। स्वयसेवकोंके पास तीन दवाओंके सिवा चौथी दवा नही होती थी। उसके वादका अनुभव भी यही वतलाता है। इन तीन रोगोंका शास्त्रीय उपचार करना किसानोको सिखाना चाहिए और यह सिखाना आसान है।

' अगर गाँवकी सफाई सघ जाय तो वहुतेरे रोग हो ही नहीं। चिकित्सक मात्र जानते हैं कि रोगका सर्वोत्तम इलाज तो उसे न होने देना ही है। वदहजमी न होने दें तो पेचिश वन्द हो जायेगी। गाँवकी हवा साफ रखें तो बुखार न आयेगा। गाँवका पानी साफ रखने और रोज साफ पानीसे नहानेसे फोडे न होंगे। तीनोंमेंसे कोई रोग हो जाय तो उसका अच्छा इलाज उपवास है और उपवासके साथ कटि-स्नान तथा सूर्य-स्नान।

"मैं चारों ओर यह विचार पाता हूँ कि गाँवोंमें अस्पताल होने चाहिए, और नहीं तो कम-से-कम एक डिस्पेंसरी तो होनी ही चाहिए। मैं तो इसकी आवश्यकता बिलकुल नहीं देखता।

"गाँवका दवाखाना गाँवकी शाला होगी और गाँवका पुस्तकालय भी वही होगा। रोग हर गाँवमें होते हैं। वाचनालय हर गाँवमें होना चाहिए, शाला तो होनी ही चाहिए। इन तीनोंके लिए अलग मकानोंकी बात सोची जाय तो जान पडेगा कि सारे गाँवोंकी पूर्तिके लिए करोडों रुपये चाहिए और बहुत समय लग जायगा। इसलिए हमें लोक-शिक्षण और ग्राम-सुधारका विचार करते हुए अपने देशकी इंतिहा दर्जेकी गरीबीका खयाल रखना ही पडेगा।"

(१९३६)

[२]

जल-व्यवस्था

"बहुतेरे गाँवोंमें एक ही तालाब होता है और पोखरा तो प्रायः प्रत्येक गाँवमें होता है, जिसमें पशु पानी पीते हैं, आदमी नहाते-धोते हैं, बर्तन माँजते हैं कपडे धोते हैं और वही पानी कहीं-कहीं पीनेके काममें भी लाते हैं।

"ऐसे पानीमें जहरीले कीड़े पैदा हो जाते हैं और इस पानीके पीनेसे हैजा आदि बीमारियाँ बड़ी जल्दी फैलती हैं।

"पीनेके पानीके तालाबमें बर्तन या कपड़े कभी नहीं धोने चाहिए। इसके दो उपाय हैं। एक तो यह कि सब लोग अपने घर पानी ले जाकर वहीं धोयें। दूसरा यह कि तालाबके पास एक टंकी रखी जाय। उसमें सब अपने हिस्सेका पानी भर दें और गाँववाले इस पानीका उपयोग करें। गाँववालोंमें आपसमें सहयोग और परोपकार-वृत्ति होनेपर ही यह सम्भव है। हर आदमी यों काम करे तो थोड़े खर्चमें टंकी और हौज भराया जा सकता है। कपड़ा धोनेकी जगह पानी गिरनेसे कीचड हो जाता है। इसलिए वह हिस्सा पक्का बना लेना चाहिए। पीनेके पानी भरनेके बर्तनोंको बाहर साफ करके ही तालाबमें डुबाना चाहिए और ऐसी सुविधा कर लेनी चाहिए कि जिससे पानी भरनेवालेके पैर पानीमें न पडें। यह एक स्थितिकी बात हुई। कितने ही गाँवोंमें एकसे अधिक तालाब होते हैं या बनाये जा सकते हैं। वहाँ पीनेका तालाब अलग ही होना चाहिए।

"बहुतेरे गाँवोंमें कुएँ होते हैं। इन कुओंका पानी साफ रहना चाहिए। उसके किनारे जगत होनी चाहिए और कीचड नहीं होना चाहिए। कुएँ बीच-बीचमें झराने चाहिए। यह सब सेवकको स्वयं करके गाँववालोंसे कराना है। यह तालीम सस्ती, सच्ची और आवश्यक है।

"गाँवके रास्ते बिलकुल टेढे-मेढे होते है और देखनेसे जान पडता है मानो धूल फैलाकर बनाये गये है। चौमासेमे इन रास्तोमे इतना कीचड-पानी होता है कि उनमेसे बैलगाडी हाँकना मुश्किल हो जाता है। जाने-आनेमे आदमीको भी बहुत तकलीफ उठानी पडती है। इससे जो तरह-तरहके रोग फैलते है, वे अलग।

"इन रास्तोका क्या किया जाय? लोगोमे सहयोग हो तो बगैर कौडी-पैसेके या थोडे ही खर्चसे इन्हे पक्का बनाकर अपने गाँवकी कीमत बढा सकते है और इस सहकारी कार्यके द्वारा छोटे-बडे मुफ्त सच्ची तालीम पा सकते है।

"आज हमारी प्रवृत्ति केवल कौटुम्बिक जीवन तक सीमित है। हर कुनबेका हर आदमी कुटुम्बका घर जैसे साफ रखता है, वैसे ही हर कुनबेको अपने गाँवके लिए काम करनेको तैयार रहना चाहिए। तभी गाँववाले सुखी रह सकते हैं और स्वावलम्बी हो सकते है। आज तो हर बातके लिए सरकारपर नजर है। सरकार घर साफ कराये, सरकार रास्ते बनाये-सवारे, सरकार कुएँ-तालाब साफ रखे, सरकार लडकोको पढाये, सरकार बाघ-भालूसे बचाये, सरकार हमारे धन-दौलतकी हिफाजत करे। इस भावनाने हमे अपाहिज बना दिया है और यह अपाहिजी बढती ही जा रही है। साथ ही करका बोझ भी बढता जाता है। यदि गाँववाले गाँवकी सफाई, शोभा और रक्षाके लिए अपनेको जिम्मेदार माने तो बहुत-सा सुधार तत्काल और बे-पैसेके हो जाय। इतना ही नही, बल्कि आवागमनकी सुविधा और आरोग्यकी वृद्धिके कारण गाँवकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाय।

"सारे गाँवोके रास्तोको अच्छा और पक्का बनानेके लिए एक ही तरहकी सुविधा नही होती। कही ककड प्राप्त हो सकते है तो कही पत्थर और ईंटोके रोडोसे काम चल सकता है। रास्तो को पक्का करनेमे किस उपायसे काम लेना, यह तजवीजनेका काम स्वयसेवकका है।

"गाँवकी रचनामे भी कोई नियम होना चाहिए। गाँवकी गलियाँ चाहे जैसी टेढी-मेढी, सँकरी-चौडी, ऊबड-खाबड होनेके बजाय सब तरहसे अच्छी होनी चाहिए और हिन्दुस्तानमे जहाँ करोडो आदमी नगे पैर चलनेवाले है, वहाँ रास्ते इतने अधिक साफ होने चाहिए कि उनपर चलते हुए तो क्या, जमीनपर सोनेमे भी किसी तरहकी हिचक आदमीके मनमे न हो। गलियाँ पक्की और पानीके निकासके लिए नालीदार होनी चाहिए। मदिर और मस्जिदे स्वच्छ और जब देखो तब नयी-सी मालूम होनेवाली होनी चाहिए। उनमे जानेवालेको शाति और पवित्रताकी प्रतीति होनी चाहिए। गाँवमे और आसपास उपयोगी और फलदार पेड होने चाहिए। गाँवमे धर्मशाला और रोगियोके इलाजके लिए छोटा-सा उपचारगृह भी होना चाहिए कि हवा, पानी, रास्ते वगैरह खराब न हो। हरएक गाँवमे अपना अन्न और वस्त्र गाँवमे ही पैदा करने या बनानेकी शक्ति होनी चाहिए और चोर, डाकू, शेर, बाघ वगैरहके भयसे बचाव करनेकी शक्ति होनी चाहिए। ऐसे ही

गाँव 'स्वावलम्बी' कहला सकते हैं और यदि सारे गाँव ऐसे हो जायँ, तो हिन्दुस्तान-का दुःख बहुत-कुछ कम हो जाय।

"यह दशा लाना असम्भव तो है ही नही, परन्तु जितना हम समझते होंगे उतना मुश्किल भी नही है। कहते हैं, हिन्दुस्तानमे साढे सात लाख गाँव हैं। इस हिसाब-से एक गाँवकी आबादी ४०० पडती है। मेरा दृढ मत है कि ऐसी छोटी आबादी-वाले गाँवमे अच्छी व्यवस्था करना बहुत आसान है। उसके लिए बडे व्याख्यानो-की या कौंसिलके कायदोकी जरूरत नही होती। सिर्फ एक ही जरूरत है और वह एक हाथकी उँगलियोके पोरोपर गिने जाने भरके शुद्धभावसे काम करनेवाले स्त्री-पुरुषोकी। ये अपने आचरणसे, सेवा-भावसे, प्रत्येक गाँवमे जरूरतके अनुसार फेरफार करा सकते हैं। यह भी नही कि उन्हे रात-दिन इसी काममे लगा रहना पड। अपने निर्वाहका धधा करते हुए भी अपनी सेवा-वृत्तिसे वे गाँवमे महत्त्व-पूर्ण फेरफार करा सकते हैं।

"ऐसे सेवकोको किसी बडी तालीमकी जरूरत नही। बिलकुल अक्षर-ज्ञान न हो तो भी ग्राम-सुधारका काम हो सकता है। इसमे सरकारके बाधक होनेकी बात नही है। उसकी सहायताकी भी कम ही जरूरत है। हर गाँवमे ऐसे स्वयसेवक निकल आवे तो बिना किसी आडम्बरके, बिना बडे आन्दोलनके सारे हिन्दुस्तान-का काम बन जाय और थोडे प्रयत्नसे अकल्पित परिणाम हो सकता है। इसमे धनकी भी आवश्यकता नही। जो कुछ जरूरत है, सिर्फ सदाचारकी अर्थात् धर्मवृत्तिकी।

"मैं अनुभवपूर्वक जानता हूँ कि किसानोकी तरक्कीका यह आसानसे आसान रास्ता है। इसमे एक गाँवको दूसरे गाँवकी राह देखनेकी जरूरत नही है। जिस गाँवमे किसी एक भी स्त्री या पुरुषका लोक-सेवा करनेका शुद्ध विचार हो, वह उसी क्षण काम शुरू कर सकता है और उसमे उसके सारे हिन्दुस्तानकी पूरी-पूरी सेवाका समावेश हो जाता है।'

३५. महान् समर्पण

सेवाग्रामकी ओर

(१९३३–'३६)

'ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु ।'

(ब्रह्म ही सत् है, अत सब-कुछ उसीको समर्पित है)

गाधीजीने देखा कि स्वतत्रता-सग्रामके साथ सपर्क छोडे बिना सत्याग्रह-आश्रम (साबरमती) अपनी रचनात्मक प्रवृत्तियाँ शातिके साथ नही चला सकता। परन्तु ऐसा करना उसके उद्देश्योको ही तिलाजलि देना था। उन्हे आशा थी कि आश्रमवासी सविनय अवज्ञामे भाग लेते रहे तो भी आश्रम चल सकता है और काग्रेस अपने उद्देश्यमे सफल हो तो भी सरकार और काग्रेसके बीच शीघ्र ही सुलह हो जायेगी। परन्तु गाधीजीके द्वारा काग्रेसने सुलहका प्रस्ताव सरकारको भेजा, उसे वाइसरायने जब ठुकरा दिया तब स्पष्ट हो गया कि सरकार शाति नही चाहती। वह तो चाहती थी कि देशकी यह सबसे बडी तथा सबसे अधिक लोकप्रिय सस्था उसके चरणोमे सपूर्ण आत्म-समर्पण कर दे। परन्तु जबतक काग्रेसका अपने वर्तमान नेतृत्वमे विश्वास था, यह असभव था।

इसलिए आदोलनके नेताकी हैसियतसे बापूके लिए सबसे बडे त्यागका समय आ गया। गाधीजीने लिखा

"अब मैं अपनी सबसे प्रिय वस्तुको समर्पण करने जा रहा हूँ जिसके निर्माण मे मैने और मेरे अनेक साथियोंने असीम धीरज और चिन्ताके साथ लगातार अठारह वर्ष परिश्रम किया है। इस सस्थाके एक-एक पशु और पौधेका अपना इतिहास है। वे हमारे परिवारके अग हैं। जो एक वीरान जमीनका टुकडा था, वह आज मानव-परिश्रमसे एक सुन्दर उपवनसे घिरा निवास बन गया है। इस परिवार और प्रवृत्तियोको छोडते हुए हमे कम पीडा नही होगी। आश्रमवासियोंके साथ इस सबधमे मैंने अनेक बार अन्तस्तलकी गहराईमे डूबकर बातचीत की है और सबने सर्व-सम्मतिसे इन प्रवृत्तियोको छोडनेका निश्चय किया है।"

तदनुसार १६ जुलाई १९३३ को गाधीजीने आश्रमके विसर्जनकी घोषणा करते हुए बम्बई-सरकारको लिखा कि वह इसे ग्रहण कर ले और जिस प्रकार चाहे उसका उपयोग करे।

अपनी घोषणामे गाधीजीने लिखा कि आश्रमके विसर्जनका अर्थ यह होगा कि अब प्रत्येक आश्रमवासी स्वय चलता-फिरता आश्रम बन जावेगा और वह

जेलमें या बाहर जहाँ भी कहीं होगा, आश्रमके आदर्शको आगे बढ़ानेके लिए जिम्मेदार होगा।

इसके बाद गांधीजी कुछ वर्षोंतक वर्धा रहे। वहाँ सत्याग्रहाश्रम तथा मगनवाड़ीमें रहकर वे सब प्रवृत्तियोंका सचालन करते रहे। फिर वे सेवाग्राम चले गये। इस गाँवका मूल नाम था 'सेगाँव'। उसकी कथा इस प्रकार है—

१९३६ की लखनऊ-कांग्रेस प० जवाहरलालजी नेहरूकी अध्यक्षतामें हुई। गांधीजी लखनऊ गये जरूर थे, परन्तु उन्होंने अधिवेशनमें भाग नहीं लिया। उनकी दिलचस्पीकी वस्तु थी—खादी-ग्रामोद्योग प्रदर्शनी। इसका उद्‌घाटन उन्होंने किया और उपस्थित जनसमुदायको खादी तथा ग्रामोद्योगोंका महत्त्व समझाया। लौटते हुए वे नागपुरके हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें कुछ देर रुके। वहाँ उन्होंने कहा :

'मैं यहाँ बहुत थोड़े समयके लिए रुक गया हूँ, परन्तु आप जान लें कि मेरा दिल न तो यहाँ है और न वर्धामें। वह तो गाँवोंमें लगा हुआ है। मैं सरदारसे कबसे कह रहा हूँ कि मुझे वर्धाके पास-पड़ोसमें किसी गाँवमें जाकर बसने दीजिये। उन्हें मेरी यह बात नहीं जँच रही है। परन्तु जबतक मैं वहाँ जाकर नहीं बैठ जाऊँगा मेरे दिलको चैन नहीं मिलेगा। भगवान् ने चाहा तो शीघ्र ही मैं वहाँ चला जाऊँगा। गाँवोंका काम करनेवाले सभी कार्यकर्ताओंसे मैं कहता रहता हूँ कि वे गाँवोंमें बस जावें। परन्तु मुझे लगता है कि जबतक मैं खुद जाकर किसी गाँवमें नहीं बस जाता, मेरी बातका सही-सही असर नहीं होगा।"

वर्धा लौटनेपर गांधीजी तुरन्त वर्धाके नजदीक ही सेगाँव गये और अपने ये ही विचार गाँवके लोगोंको समझाते हुए उन्होंने कहा : "मैंने देखा है कि बहुत-से लोग मुझसे और मेरे कार्यक्रमसे डरते हैं। इस डरके पीछे असल बात यह है कि मैंने अस्पृश्यता-निवारणको अपना जीवन-कार्य बना लिया है। मीरा बहन यहाँ आपके बीच रहती थी।* उनसे आपने सुना ही होगा कि मैंने अपने जीवनमें अस्पृश्यताको पूरी तरहसे हटा दिया है। अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, महार चमार मेरे नजदीक सब बराबर हैं। मैं मानता हूँ कि जन्मके कारण ऐसे भेद मानना गलत है, अनैतिक है। इस भेदभावके कारण हमें बहुत-सी मुसीबतें सहनी पड़ी हैं। परन्तु मैं तो आपको यह बताना चाहता हूँ कि अपने ये विचार मैं आपपर नहीं लादना चाहता। मैं तो आपको समझाकर और अपने निजी आचरणसे ये बातें आपके गले उतारनेकी कोशिश करना चाहता हूँ। मैं यहाँ आकर आपके रास्ते और गाँवके आसपासका भाग साफ करके, बीमारोंकी सेवा करके और गाँवके मरे हुए उद्योगोंको पुनर्जीवित करके आपकी सेवा करनेकी कोशिश

---

* मीराबहन गांधीजीसे पहले सेगाँवमें रहने लगी थीं।

करूँगा। अगर इसमें आप मेरे साथ सहयोग करेंगे तो मुझे आनद होगा। परन्तु यदि आप सहयोग न भी करेंगे तब भी आपके बीच सैकडो अन्य लोगोके समान रहकर मैं सन्तोष मान लूंगा।

जब मैं इस प्रकार किसी गाँवमे जाकर बस जाऊँगा तब इससे ग्रामोद्योग-सघकी प्रवृत्तियोको बल मिलेगा और लोगोका ध्यान ग्रामीण उद्योगोकी ओर झुकने लगेगा। इसी प्रकार ग्रामोद्योगोके बारेमे मेरे चिंतनमे यदि कोई दोष होगें तो वे भी सामने आ जावेगे।"

गाधीजीके कई साथियो-मित्रोको उनका यह नया प्रयोग नही जँचा। सारा देश उनके मार्ग-दर्शनका उत्सुक रहता है। अब वे किसी ऐसे गाँवमे चले जावेगें कि जहाँ न तारकी, न डाककी सुविधा है तो लोगोको कितनी असुविधा होगी! परन्तु गाधीजीने इन सबको यह समझाकर शान्त कर दिया कि सेवाग्राम वर्धासे केवल पाँच मील है। वे सबसे सपर्क रख सकेगें।

ता० ३० अप्रैल सन् १९३६ को सुबह गाधीजी मगनवाडीसे सेवाग्रामके लिए पैदल ही रवाना हो गये। साथमे मगनवाडीके चार कार्यकर्ता थे। उनमेसे एकने पूछा

"बापू, क्या यह अधिक अच्छा नही होगा कि एक ही गाँवके अन्दर इस तरह अपने आपको दफना देनेकी अपेक्षा आप हरिजन दौरेकी भाँति सारे देशमे ग्राम-सगठनके लिए घूमते? आपने ही तो कहा था कि 'हरिजन दौरा' सचमुच एक वर-दान सिद्ध हुआ। जनताके दिलमे चुपचाप उसने एक क्रांति पैदा कर दी। ऐसा इस बार नही हो सकता?"

गाधीजीने कहा "नही, इन दो कामोमे कोई समानता नही। हरिजन-कार्यमे सिद्धान्त-व्यवहार मिले हुए थे। इस कार्यमे मैं इन दोनोको नही मिला सकता। सिद्धान्तकी बाते तो मैं इतने वर्षो से करता ही रहा हूँ, परन्तु प्रत्यक्ष व्यावहारिक प्रश्नोको हाथमे लेकर उनको सुलझाये बगैर केवल जबानी बातोसे अधिक मदद नही मिलती। कल ही मैं सिंधी[1] गया था, यह देखनेके लिए कि गजानन[2] (नाईक)का काम कैसे चल रहा है। कोई बहुत अच्छी हालत नही है। फिर भी वह भिडा हुआ है। मुझे लगा कि यदि मैं भी उसके साथ काम करता होता तो मुझे उसकी कठिनाइयोका कुछ परिचय होता। अब तो मैं इसी निश्चयपर पहुँच चुका हूँ कि मेरा असली स्थान तो गाँवमे ही है।"

और सेगाँव जाकर गाधीजी अपने काममे लग गये, यद्यपि अभी उनकी झोपडी तैयार नही हुई थी। धूपसे बचने और उनके बैठने तथा काम करनेके

---

१ वर्धासे १ मील पर एक गाँव।

२ ताब्गुड-विशेषज्ञ।

लिए बाँसके टट्टे और टहनियोंकी मददसे थोडा-सा ओसारा बना लिया गया था। पासमें ही एक कुँआ था, जिसमें स्फटिकके समान निर्मल और ठण्डा जल था। उस धूपमें यह कुछ ठण्डक पहुँचा रहा था।

तीसरे पहर तीन बजे ग्रामोद्योग संघकी वार्षिक बैठक होनेवाली थी। परन्तु गण-संख्या पूरी नही थी, अतः स्थगित बैठक रातमें हुई। अनुपस्थित सदस्योंने अपनी असमर्थताकी सूचनातक नहीं भेजी थी। इसपर गांधीजीने अफसोस प्रकट करते हुए कहा कि "जो अपनी अनुपस्थितिकी सूचनातक भेजना जरूरी नही समझते, वे वास्तवमें सदस्य बननेके पात्र ही नही।"

बैठकमें कुछ सदस्योंने बताया कि उनके मार्गमें बाहरी कठिनाइयाँ हैं। इस-पर गांधीजीने कहा कि "ये प्रायः काल्पनिक होती हैं। लेकिन जहाँ ऐसी कठि-नाइयाँ नहीं है, वहाँ भी हम क्या कर पाये हैं? सिंदी और सेगाँवको ही लीजिये। सिंदीमें गजानन बैठे हैं और सेगाँवमें मीरा बहन। इतनी लगनसे दोनो काम कर रहे हैं कि हमको आपको ईर्ष्या हो। परन्तु किसीको दिखाने लायक कुछ कर पाये? इसका कारण है हमारे सेव्य—मालिक—जनताकी अकर्मण्यता और आलस्य। हम लोगोंसे केवल इतना चाहते हैं कि अपना घर-आँगन साफ रखें। निरोग खाना खावें और काम करनेका तरीका ऐसा बना लें जिससे उनकी आमदनी कुछ बढ जाय। परन्तु उनको ये बातें जँचती ही नही। वे यह विश्वास ही खो बैठे हैं कि उनकी हालत सुधर सकती है। हमारे समाजमें तीन महान् रोग घुस आये हैं—सामाजिक अस्वच्छता, पोषक खुराककी कमी और अकर्मण्यता। सो जहाँ कोई बाहरी कठिनाई नही, वहाँ भी कोई काम नहीं हो पाता। आपके काममें कोई बाधा नही डालेगा। परन्तु उन्हें अपनी भलाईमें भी कोई दिलचस्पी नही है।

"सफाईके ये नये तरीके उन्हें अच्छे नही लगते। जमीनको बस ऊपर-ऊपर खुरच लेंगे। सैकडो वर्षोंसे जिस प्रकार काम करते आये हैं, उसको छोडकर नया तरीका नही सीखेंगे। इस प्रकार काम कठिन जरूर है, परन्तु हमें निराश नहीं होना चाहिए। अपने कार्यमें हमारे अन्दर अटूट श्रद्धा होनी चाहिए। हमें धीरज नही छोडना चाहिए। हम खुद भी तो नौसिखिये हैं। बीमारी भी गहरी है। हमारे अन्दर लगन और धीरज हो तो ये पहाडको भी उठाकर अलग रख सकते हैं। हमारी स्थिति तो उन परिचारिकाओं जैसी है जो जानती हैं कि रोगी असाध्य अवस्थामें पहुँच गया है, फिर भी उनकी सेवाको छोडकर भाग नहीं जाती।

"इस प्रकार गाँवोंके सुधारका तो एकमात्र उपाय यही है कि अटूट श्रद्धाको लेकर उनके बीच जाकर बैठ जाइये और उनके नर्स, परिचारक और सेवक बन जाइये। यह न समझें कि आप उनपर उपकार कर रहे हैं। ऐसे सारे विचारों-को अपने दिमागसे हटा दीजिये। स्वराज्यको भी क्षण भरके लिए भुला दीजिये। सेठ-साहूकार वगैरह वहाँ हैं ही। कदम-कदमपर उनकी वहाँ उपस्थिति भी बाधा

पहुँचा सकती है। उसका भी ख्याल न कीजिये। उनका उपाय करनेवाले दूसरे बहुतसे लोग आ जावेंगे। आप तो यह नम्र सेवा ही करते रहिये, जिसकी आज सबसे बडी जरूरत है और आगे चलकर स्वराज्य मिल जानेपर भी रहने ही वाली है।"

सेगाँव बहुत गन्दा गाँव है। वहाँ पहुँचनेपर एक बार गाधीजी स्वय बीमार हो गये। गाँवमे मलेरिया फैल गया था। गाधीजीको वर्धा ले जाया गया। वहाँ वे ठीक भी हो गये, परन्तु यह उनको बहुत अखरा। वे अभी कमजोर ही थे, फिर भी गाँवमे बीमारोकी सेवामे लग गये। इन्ही दिनो जवाहरलालजी, राजेन्द्रबाबू और सरदार वहाँ पहुँच गये। गाधीजी बीमारोकी सेवामे लगे थे। एकके सिरपर गीली पट्टी रख रहे थे, दूसरेके कटिस्नानकी तैयारी चल रही थी। यह देखकर सरदारने खीझकर कहा—"बापू अगर आपको समय न हो तो हम जाते है।" गाधीजी मुसकराये और बोले "बीमारोको बडी तकलीफ है।" तब जवाहरलाल बोले "बादशाह कैन्यूट समुद्रकी लहरोको आदेश दे रहा था न कि रुक जाओ—खबरदार, आगे न बढना। क्या ऐसा ही आपका यह काम नही है?" गाधीजी बोले "अरे भाई, इसीलिए तो हमने तेरे सिरपर कैन्यूटका ताज रखा है ताकि दूसरोकी अपेक्षा यह काम अधिक अच्छी तरह करे।" "पर बापू क्या यह सब आपको ही करना चाहिए? और कोई नही है?"

"और है कौन? जरा गाँवमे तो जाकर देखो। छह सौ की आबादीमे तीन सौ बिस्तरेपर पडे हैं। इन सबको अस्पतालमे कौन कैसे ले जावे, रखे कहाँ? इसलिए अपना इलाज खुद हमे ही सीखना होगा। यह सब हमारे ही पापोका फल है। मलेरिया, हैजा, वगैरह सब हम ही अपने पापोसे लाये हैं। इन गरीबोको अपना इलाज खुद कर लेना हम अपने उदाहरणसे ही सिखा सकते हैं।"

३६. पंचायतराज

(१९३६-'३७)

'पंच बोले परमेश्वर।'

पचायत-राजमे ग्राम प्रधान रहेगा। इसका प्रतिपादन करते हुए गाधीजी कहते हैं

"जिन्हे शिक्षाका सौभाग्य प्राप्त है, उन्होने गाँवोकी बहुत समयसे उपेक्षा की है, उन्होने अपने लिए शहरी जीवनको चुना है। जो लोग सेवाभावसे गाँवोमे बसे है, वे अपने सामने कठिनाइयोको देखकर पस्त-हिम्मत नही होते। गाँवोमे जानेवाले किसी युवकको कठिनाइयोसे घबराकर कभी अपना रास्ता नही छोडना

चाहिए। धैर्यके साथ प्रयत्न जारी रखा जाय तो मालूम पडेगा कि गाँववाले भी शहरवालोंसे बहुत भिन्न नही है और उनपर ममता दिखाने और ध्यान देनेसे वे साथ भी देंगे। यह निस्सन्देह सच है कि गाँवोमे देशके बडे आदमियोके सम्पर्क-का अवसर नही मिलता। मगर चैतन्य, रामकृष्ण, तुलसीदास, कवीर, नानक, दादू, तुकाराम, तिरुवल्लूवर जैसे सन्तोके ग्रन्थोके रूपमे महान् और श्रेष्ठ जनोका सत्सग तो सवको आज भी वहाँ प्राप्त है। अत नवयुवकोको मेरी सलाह है कि वे (ग्रामसेवाके) अपने प्रयत्नको छोड न दे, वल्कि उसमें लगे रहें और अपनी उपस्थितिसे गाँवोको अधिक प्रिय और रहने योग्य वना दे।

"यदि आदर्श गाँवका मेरा स्वप्न पूरा हो जाय तो भारतके सात लाख गाँवोमेसे हरएक गाँव समृद्ध प्रजातन्त्र वन जायगा। उस प्रजातन्त्रका कोई व्यक्ति अनपढ न रहेगा, कामके अभावमे कोई वेकार न रहेगा, वल्कि किसी-न-किसी कमाऊ धवेमे लगा होगा। हर आदमीको पौष्टिक चीजें खानेको, रहनेको अच्छे हवा-दार मकान, और तन ढँकनेको काफी खादी मिलेगी। इसी प्रकार हरएक देहाती-को सफाई और आरोग्यके नियम मालूम होगे और वह उनका पालन किया करेगा। ऐसे गाँवोकी विभिन्न प्रकारकी और उत्तरोत्तर वढती हुई आवश्यकताएँ होनी चाहिए, जिन्हें वह स्वय पूरा करेगा, अन्यथा उसकी गति रुक जायगी।

"आजादीका अर्थ हिन्दुस्तानके आम लोगोकी आजादी होना चाहिए, उनपर आज हुकूमत करनेवालोकी आजादी नही। आजादी नीचेसे होनी चाहिए। हरएक गाँवमे पचायतका राज होगा। उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी। इसका मतलव यह है कि हरएक गाँवको अपने पाँवपर खडा होना होगा—अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी होंगी, ताकि वह अपना सारा कारोवार खुद चला सके। यहाँ तक कि वह सारी दुनियाके खिलाफ अपनी हिफाजत खुद कर सके। उसे तालीम देकर इस हदतक तैयार करना होगा कि वह वाहरी हमलेके मुकावलेमे अपनी रक्षा करते हुए मर-मिटनेके लायक वन जाय। इस तरह आखिर हमारी वुनियाद व्यक्तिपर होगी। इसका यह मतलव नही कि पडोसियोपर या दुनियापर भरोसा न रखा जाय, या उनकी राजी-खुशीसे दी हुई मदद न ली जाय। खयाल यह है कि सव आजाद होगे और सव एक-दूसरेपर अपना असर डाल सकेंगे। जिस समाजका हर आदमी यह जानता है कि उसे क्या चाहिए और इससे भी वढकर जिसमें यह माना जाता है कि वरावरीकी मेहनत करके भी दूसरोको जो चीज नही मिलती है, वह किसीको खुद भी नही लेनी चाहिए। वह समाज जरूर वहुत ऊँचे दर्जेकी सभ्यतावाला होगा।

"ऐसे समाजकी रचना स्वभावत सत्य और अहिंसापर ही हो सकती है। मेरी राय है कि जवतक ईश्वरपर जीता-जागता विश्वास न हो, सत्य और अहिंसा-पर चलना नामुमकिन है।

"ऐसे समाजमे अनगिनत गाँव होगे। उसका फैलाव एकके ऊपर एकके ऊपर मीनारकी शक्लमे नही, वल्कि लहरोकी तरह एकके वाद एक की शक्लमे होगा। मीनारमे ऊपर की तग चोटीको नीचेके चौडे पायेपर खडा होना पडता है। मेरे वताये समाजमे तो समुद्रकी लहरोकी तरह जिन्दगी एकके वाद एक घेरे-की शक्लमे होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गाँवके खातिर मिटनेको तैयार रहेगा। गाँव अपने इर्द-गिर्दके गाँवोके लिए मिटने-को तैयार होगा। इस तरह आखिर सारा समाज ऐसे लोगोका वन जायगा, जो उद्धत वनकर कभी किसीपर हमला नही करते, वल्कि हमेशा नम्र रहते है, और अपनेमे समुद्रकी उस शानको महसूस करते है, जिसके वे एक जरूरी अग है।

"अगरचे इस तस्वीरको पूरी तरह वनाना या पाना मुमकिन नही है, तो भी इस सही तस्वीरको पाना या इस तरफ पहुँचना हिन्दुस्तानकी जिन्दगीका मकसद होना चाहिए। जिस चीजको हम चाहते है, उसकी सही-सही तस्वीर हमारे सामने होनी चाहिए। तभी हम उससे मिलती-जुलती कोई चीज पानेकी उम्मीद रख सकते है। अगर हिन्दुस्तानके हरएक गाँवमे कभी पचायती-राज कायम हुआ, तो मै अपनी इस तस्वीरकी सचाई सावित कर सकूँगा, जिसमे सवसे पहला और सबसे आखिरी दोनो वरावर होगे या यो कहिये कि न कोई पहला होगा, न कोई आखिरी।

"इस तस्वीरमे हरएक धर्मकी अपनी पूरी और वरावरीकी जगह होगी। हम सव एक ही आलीशान पेडके पत्ते है। इस पेडकी जड हिलायी नही जा सकती, क्योकि वह पातालतक पहुँची हुई है। जवर्दस्तसे जवर्दस्त आँधी भी उसे हिला नही सकती। इस तस्वीरमे उन मशीनोके लिए कोई जगह न होगी, जो इन्सानकी मेहनतकी जगह लेकर चन्द लोगोके हाथोमे सारी ताकत इकट्ठा कर देती है। सुधरे हुए लोगोकी दुनियामे मेहनतकी अपनी अनोखी जगह है। उसमे ऐसी मशीनोकी जरूर गुजाइश होगी, जो हर आदमीको उसके काममे मदद पहुँचायेगी।

"ग्राम-स्वराज्यकी मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातत्र होगा, जिसमे अपनी अहम जरूरतोके लिए गाँव अपने पडोसियोपर भी निर्भर नही करेगा, और फिर भी वहुतेरी दूसरी जरूरतोके लिए—जिनमे दूसरोका सहयोग अनिवार्य होगा—वह परस्पर सहयोगसे काम लेगा। इस तरह हरएक गाँवका पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरतका तमाम अनाज और कपडेके लिए पूरी कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी फाजिल जमीन होनी चाहिए, जिसमे ढोर चर सकें और गाँवके वडो और वच्चोके लिए मनवहलावके साधन और खेलकूदके मैदान वगैरहका वन्दोवस्त हो सके। इसके वाद जो जमीन वचेगी, उसमे वह ऐसी उपयोगी फसलें वोयेगा, जिन्हें वेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके। यो वह गाँजा,

तम्बाकू, अफीम वगैरहकी खेतीसे बचेगा। हरएक गाँवमें गाँवकी अपनी एक नाटक-शाला, पाठशाला और सभा-भवन रहेगा।

"पानीके लिए गाँवका अपना इतजाम होगा—'वाटर वर्क्स' होंगे—जिससे गाँवके सभी लोगोंको शुद्ध पानी मिला करेगा। कुँओं और तालाबोंपर गाँवका पूरा नियन्त्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीमके आखिरी दर्जे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहाँतक हो सकेगा, गाँवके सारे काम सहयोगके आधारपर किये जायँगे। जातपाँत और अस्पृश्यताके जैसे भेद आज हमारे समाजमें पाये जाते हैं, वैसे इस नये ग्राम-समाजमें बिलकुल न रहेंगे। सत्याग्रह और असहयोगके शस्त्रके साथ अहिंसाकी सत्ता ही ग्रामीण समाजका शासक-बल होगी। गाँवकी रक्षाके लिए ग्राम-सैनिकोंका एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौरपर बारी-बारीसे गाँवके चौकी-पहरेका काम करना होगा। इसके लिए गाँवमें ऐसे लोगोंका रजिस्टर रखा जायगा। गाँवका शासन चलानेके लिए हर साल गाँवके पाँच आदमियोंकी एक पचायत चुनी जायगी। इसके लिए एक खास निर्धारित योग्यतावाले गाँवके बालिग स्त्री-पुरुषोंको अधिकार होगा कि वे नियमानुसार अपने पंच चुन लें। इन पंचायतोंको सब प्रकारकी आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे।

"इस ग्राम-स्वराज्यमें आजके प्रचलित अर्थोंमें सजा या दडका कोई रिवाज नहीं रहेगा, इसलिए यह पचायत अपने एक सालके कार्यकालमें स्वयं ही धारा-सभा, न्यायसभा और कारोबारी सभाका सारा काम संयुक्त रूपसे करेगी। आज भी अगर कोई गाँव चाहे तो अपने यहाँ इस तरहका प्रजातन्त्र कायम कर सकता है। उसके इस काममें मौजूदा सरकार भी ज्यादा दस्तदाजी नहीं करेगी, क्योंकि उसका गाँवसे जो भी कारगर संबंध है, वह सिर्फ मालगुजारी वसूल करने तक ही सीमित है। इस ग्राम-शासन में व्यक्तिगत स्वतन्त्रतापर आधार रखनेवाला सम्पूर्ण प्रजातन्त्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकारका निर्माता भी होगा। उसकी सरकार और वह दोनो अहिंसाके नियमके वश होकर चलेंगे। अपने गाँवके साथ वह सारी दुनियाकी शक्तिका मुकाबला कर सकेगा, क्योंकि हरएक देहातीके जीवनका सबसे बड़ा नियम यह होगा कि वह अपनी और अपने गाँवकी इज्जतकी रक्षाके लिए मर मिटे।

"जो चित्र यहाँ उपस्थित किया गया है, उसमें असम्भव जैसी कोई चीज नहीं है। संभव है, ऐसे गाँवको तैयार करनेमें एक आदमीकी पूरी जिन्दगी खतम हो जाय। सच्चे प्रजातन्त्रका और ग्राम-जीवनका कोई भी प्रेमी एक गाँवको लेकर बैठ सकता है और उसीको अपनी सारी दुनिया मानकर उसके काममें गड सकता है। निश्चय ही उसे इसका अच्छा फल मिलेगा। वह गाँवमें बैठते ही एक साथ गाँवके भंगी, कतवैये, चौकीदार, वैद्य और शिक्षकका काम शुरू कर देगा और गाँवका

कोई आदमी उसके पास न फटके तो भी वह सन्तोषके साथ सफाई और कताईके अपने काममे जुटा रहेगा।

"अहिंसाकी रचना कारखानोकी सभ्यताकी बुनियादपर नही हो सकती, लेकिन स्वय-पूर्ण गाँवोकी बुनियादपर उसकी रचना हो सकती है। मेरी कल्पनाकी ग्रामीण अर्थव्यवस्था शोषणका पूरा बहिष्कार करती है और शोषण ही तो हिंसाका सार-तत्त्व है, इसलिए आपको अहिंसक बननेके लिए पहले ग्राम-दृष्टिका विकास करना होगा, अपना मानस ऐसा बनाना पडेगा जो हर सवालपर गाँवोके हितकी दृष्टिसे विचार करे और ऐसी दृष्टि या विकास करनेके लिए आपको चरखेमे श्रद्धा पैदा करनी होगी।

"देहातवालोमे वह कला और कारीगरी आनी चाहिए, जिससे बाहर उनकी पैदा की हुई चीजोकी कीमत की जा सके। जब गाँवोका पूरा-पूरा विकास हो जायगा, तो देहातियोकी बुद्धि और आत्माको सन्तुष्ट करनेवाली कला-कारीगरीके धनी स्त्री-पुरुषोकी गाँवोमे कमी नही रहेगी। गाँवमे कवि होगे, चित्रकार होगे, शिल्पी होगे, भाषाके पडित और शोध करनेवाले लोग भी होगे। थोडेमें जिन्दगीकी ऐसी कोई चीज न होगी जो गाँवमे न मिले। आज हमारे देहात उजडे हुए, कूडे-कचरेके ढेर बने हुए है। कल वे ही सुन्दर बगीचे होगे और ग्रामवासियोंको ठगना या उनका शोषण करना नामुमकिन हो जायगा।

"इस तरहके गाँवोकी पुनर्रचनाका काम आजसे ही शुरु हो जाना चाहिए। गाँवोकी पुनर्रचनाका काम कामचलाऊ नही, बल्कि स्थायी होना चाहिए। उद्योग, हुनर, तन्दुरुस्ती और शिक्षा इन चारोका सुन्दर समन्वय करना चाहिए। नयी तालीममे उद्योग और शिक्षा, तन्दुरुस्ती और हुनरका सुन्दर समन्वय है। इन सबके मेलसे माँके पेटमे आनेके समयसे लेकर बुढापेतकका एक खूबसूरत फूल तैयार होता है। यही 'नयी तालीम' है। इसलिए मैं ग्रामसेवाके टुकडे नही करूँगा, बल्कि यह कोशिश करूँगा कि इन चारोका आपसमे मेल बैठे। इसलिए मैं किसी उद्योग और शिक्षाको अलग नहीं मानूंगा बल्कि उद्योगको शिक्षाका जरिया मानूंगा और इसलिए ऐसी योजनामे नयी तालीमको शामिल करूँगा।"

३७. बुनियादी शिक्षा

(१९३७)

'किं किं न साधयति कल्पलतेव शिक्षा ।'

(यह शिक्षा कल्पतरु ही है, इससे क्या सिद्ध नहीं हो सकता ?)

सन् १९३५ के नये सुधारोंके अनुसार किये गये चुनावोंमें कांग्रेस ग्यारहमेंसे सात प्रान्तोंमें बहुत बड़े बहुमतसे विजयी हुई । अभीतक गांधीजी धारा-सभाओंमें भाग लेनेके खिलाफ थे । परन्तु नये सुधारोंके अनुसार मताधिकार व्यापक हो गया था—बालिग मताधिकारका तीसरा हिस्सा । अतः गांधीजीने चुनावोंमें भाग लेकर धारा-सभाओंमें जानेकी इजाजत दे दी ।

विनोबाने पूछा : "आप तो असहयोगी हैं न ? अब सहयोगके लिए कैसे तैयार हो गये ?" गांधीजीने कहा : "मेरा असहयोग कोई सनातन धर्म थोड़े ही था । वह असहयोग वास्तवमें सहयोगकी हवा पैदा करनेके लिए ही था । वह हो गयी । अब सहयोगके द्वारा देशकी सेवा करनेकी परिस्थिति पैदा हो गयी । इसलिए न केवल हम धारा-सभाओंमें जा सकते हैं, बल्कि वहाँ जाना हमारा धर्म बन गया है और हमें सत्ता भी ग्रहण करनी पड़ेगी ।"

परन्तु सत्ता-ग्रहणके मार्गमें एक बड़ा विघ्न था—गवर्नरका 'वीटो' यानी मंजूरी न देनेका अधिकार । कांग्रेसने सोचा कि ऐसे पदग्रहणसे क्या लाभ, यदि हमारे सेवा-कार्योंमें गवर्नर अपने 'वीटो'-अधिकारद्वारा कदम-कदमपर रोक लगाता रहे ? अतः कांग्रेसने तबतक पदग्रहण करनेसे इनकार कर दिया, जबतक कि सरकार गवर्नरके इस विशेषाधिकारको नहीं हटा देती । फलतः सात प्रान्तोंमें काम रुक गया—ठप हो गया । कांग्रेसने मंत्रिमंडल बनानेसे इनकार कर दिया और दूसरा कोई दल मंत्रिमण्डल बना नहीं सकता था । सुधारोंका नाम लेकर खुद गवर्नर कितने दिन राज कर सकता था ? आखिर कुछ महीनोंकी खींचातानीके बाद सरकारको आश्वासन देना पड़ा कि गवर्नर इन विशेषाधिकारका उपयोग नहीं करेगा । फलतः ग्यारहमेंसे सात प्रान्तोंमें कांग्रेसी सरकारें कायम हो गयीं ।

जैसे ही नये मंत्रिमण्डल बने, गांधीजीके 'हरिजन' का रुख एकदम बदल गया । अभीतक जहाँ उसमें अंग्रेजी-शासनकी आलोचना आती रहती थी, उसके स्थानपर अब नये मंत्रियोंके मार्ग-दर्शनके लिए उसके अंदर रचनात्मक सुझावोंका तांता लग गया ।

इनमें दो सुधार सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थे । एक—संपूर्ण शराबबन्दी और दो—शिक्षा-पद्धतिमें आमूल क्रान्ति । नये सुधारोंमें आबकारी और शिक्षाको

एक ही मन्त्रीके मातहत रखा गया था। सरकारका हेतु शायद यह था कि यदि "आप शिक्षाका प्रचार करना चाहते है, तो अवश्य करें, परन्तु उसके लिए शिक्षा-मंत्री अपनी आय बढावें। शिक्षामे तो आय बढानेकी गुंजाइश थी नही। अत आबकारीकी ही आय बढानी होगी अर्थात् अधिकाधिक लोगोको शराब पिलाकर वह धन कमावे और स्कूल-कॉलेज खोलता रहे।

गाधीजी इसे मजूर करनेके लिए हरगिज तैयार न थे। वे चाहते थे कि "शिक्षा और शराबबन्दी दो स्वतत्र चीजे है। दोनो महत्त्वपूर्ण है। शराबबन्दी भी हो और शिक्षा-प्रचार भी। शिक्षाके लिए शराबबन्दी नही रोकी जा सकती। इसी प्रकार हमे यदि शिक्षाको अनिवार्य करना है, तो उसे अपने पैरोपर खडा करना होगा। दुर्भाग्यकी बात यह है कि यह कल्पना मुझे बडी देरी से—सेवाग्राम आनेपर, ग्रामीणोका प्रत्यक्ष जीवन देखनेपर—सूझी है। अभीतक हमने सिवा इसके और कुछ नही किया है कि बच्चोंके दिमागमे तरह-तरहकी जरूरी और गैरजरूरी जानकारी ठूंसते रहे। उससे उनके सही विकासमे मदद हो रही है या नहीं, इसका हमने ख्याल नही किया। अब यह आगे नही चलना चाहिए। अब हम किसी हाथ-उद्योगके आधारपर उनको शिक्षा देना शुरू करें। हाथ-उद्योग, शिक्षाके साथ-साथ चलनेवाली प्रवृत्ति नही हो, बल्कि बौद्धिक शिक्षाका माध्यम हो।"

"सो तो ठीक। परन्तु स्कूलके खर्चकी पूर्तिवाली शर्त इसके साथ आप क्यों लगाते है?

"यह शर्त नही, उद्योग और बौद्धिक शिक्षण सही तरीकेसे हो रहा है या नही, उसकी यह कसौटी होगा। सात वर्षकी पढाईके बाद जब बच्चा बाहर निकले तो वह अपने परिवारका कमाऊ अग बन जाय। यही तो आज भी गांवोंमे होता है। परिवारकी जीविका कमानेमे वहाँ बच्चे अपने माता-पिताकी मदद करते ही है। वे जानते है कि अगर वे काम नही करेंगे, तो उनके माता-पिता और भाई-बहन क्या खायेंगे? यह विचार पैदा हो जाना ही स्वय अपने-आपमे मूल्यवान् शिक्षण है। इसी कामको राज्य करे। सात वर्षकी उम्रमे वह बच्चेकी पढाई शुरू करे और १४वे वर्षमे उसे समाजका एक कमाऊ सदस्य बनाकर छोड़ दे। इस प्रकार आप दो काम एक साथ कर देते है। बच्चेकी पढाई भी हो जाती है और बेकारीकी जड भी काट देते है। आप उसे कोई-न-कोई गृह उद्योग सिखायेंगे और उस उद्योगके निमित्तसे आप उसे मन, बुद्धि, इन्द्रियों तथा शरीरका उपयोग और कला,—सबका शिक्षण दे देंगे।"

'परन्तु क्या आप सात-सात वर्ष तक उसे पींजन-कातना और बुनना ही सिखाते रहेंगे?'

'मेरा आग्रह ही नही कि कोई भी अमुक उद्योग हो। पर हर पढाई [illegible] तरह [illegible] नही होगी। हर उद्योगसे [illegible] [illegible] और [illegible]

तो होती ही है। इतिहास, भाषा, वगैरहकी पढाईमे आज हम कितने वर्ष लगा देते है! क्या उद्योगोका महत्त्व इनसे किसी प्रकार कम है?"

"फिर एक बात आप याद रखें। एक स्कूलमे केवल एक ही उद्योग लिया जाय, अधिक नही, और दूसरे यह कि एक शिक्षकके पास पचीससे अधिक विद्यार्थी न हो। तीसरे यह याद रखें कि फिलहाल हम शहरोको भुला दें। केवल गाँवोका खयाल करें। वह तो एक महासागर है। गाँवोको जिन उद्योगोकी जरूरत है, उन्हीको ले। उदाहरणार्थ,—बढईगिरी, लुहारी, चमडा-कमाई, जूते बनाना आदि। अगर किसी बच्चेको सिविल या मैकेनिकल इजीनियर बनना है तो बादमे इन विषयोका तकनीकी शिक्षण देनेवाले कॉलिजो या सस्थानोंमे वह जा सकता है।"

"मैं कोई शिक्षा-शास्त्री नही हूँ। इसलिए मुझे एक साधारण आदमी समझकर कृपया मेरे सुझावकी उपेक्षा न करें। अनेक बार बच्चोंके मुखसे भी ज्ञानकी बातें निकल जाती हैं। विशेषज्ञ उसीको सजा-सजाकर वैज्ञानिक रूप दे देते है। इसलिए मेरी बातपर कृपया गभीरतापूर्वक विचार करें और परीक्षण करें।

(१) प्राथमिक शिक्षाकी अवधि सात वर्षकी या इससे कुछ अधिक हो। इसमे, अग्रेजीको छोडकर, वे सब विषय मातृभाषाके माध्यमसे पढाये जायें जो मैट्रिकतक पढाये जाते हैं। इसके अलावा किसी एक उद्योगकी पूरी तालीम विद्यार्थीको दी जाय। ज्ञानके जितने भी आवश्यक अग हैं, उन सबकी जानकारी इस उद्योगके आधारपर विद्यार्थीको देकर उसका सर्वांगीण विकास हो, यह उद्देश्य रहे। कुल मिलाकर इसमे उच्चतर माध्यमिक शालातकका शिक्षण विद्यार्थीको मिल जावे।

(२) यह पढाई अपने सम्पूर्ण रूपमे स्वावलम्बी हो। वास्तवमे स्वावलम्बन इसकी सफलता और गुणवत्ताकी कसौटी मानी जाय।

'स्वावलम्बन' से मेरा मतलब है केवल शिक्षकोका खर्च, अर्थात् इसमे जमीन, मकान और औजारोकी कीमत नही गिनी जाय।

यदि हमे अपने देशके करोड़ो बच्चोको शिक्षित करना है, तो मेरी नम्र रायमे इसके सिवा अन्य कोई मार्ग नही है।"

२२ अक्तूबर, १९३७ को वर्धामे इसी विषयपर विचार करनेके लिए एक महत्त्वपूर्ण परिषद् निमन्त्रित की गयी। स्वर्गीय डॉ० जाकिर हुसैन, राज्योंके मन्त्री तथा अनेक शिक्षा-विशेषज्ञ और अर्थशास्त्री इसमे सम्मिलित हुए। गाधीजी तब बीमारीसे उठे ही थे। वे बहुत कमजोर थे। फिर भी धीमी आवाजमें उन्होंने शिक्षाके सबधमे अपने उपर्युक्त विचार सबके सामने रखे और उनपर अपनी राय देनेकी प्रार्थना की। दो दिनतक सुबह और दोपहरमे तीन-तीन घटे बैठकें होती रही। अतमे परिषद्ने गाधीजीद्वारा पेश की गयी स्थूल-योजना लगभग ज्यो की त्यो स्वीकार कर ली।

योजनाको व्यवस्थित रूप देने तथा उसे आगे वढानेके लिए डॉ० जाकिर हुसैनकी अध्यक्षतामे एक समिति वना दी गयी, जिसमे देशके खास-खास शिक्षा-शास्त्री थे। योजनाका प्रारम्भिक नाम था—"वर्धा शिक्षा-योजना"। वादमे इसे 'वुनियादी-शिक्षा' कहा जाने लगा और इसे अधिक व्यवस्थित रूप दे दिया गया। इसमे अभीतक जो शिक्षा पुस्तकाधारित थी, उसे वदलकर वालका-धारित कर दिया गया। परीक्षाएँ तथा सजा और पुरस्कारको भी हटा दिया गया। सात वर्षसे कम उम्रके वच्चोको किस प्रकारकी शिक्षा दी जाय, इसका भी एक शिक्षा-क्रम वना, उसका नाम पडा—'पूर्व वुनियादी'। वुनियादी शिक्षामे सगीत, सफाई, आरोग्य, वीमारकी सेवा, आदि भी जोड दिये गये और वुनियादी-के वाद उन्ही सिद्धान्तोपर आधृत शिक्षाक्रम 'उत्तर वुनियादी' कहा जाने लगा।

दूसरे महायुद्धसे पहले सारे काग्रेसी प्रान्तोंने इसे स्वीकार कर लिया और स्वतत्रताके वाद केन्द्रीय शासनने भी। परन्तु दुर्भाग्यसे यह स्वीकृति केवल नाम-मात्रकी ही रही। प्राथमिक शालाओका नाम 'वुनियादी शाला' अवश्य हो गया, परन्तु इस शिक्षा-पद्धतिके मर्मको समझकर इसपर अमल शायद ही कही हो रहा हो। शिक्षा मनुष्यके शारीरिक, मानसिक, वौद्धिक और आत्मिक विकास-साधनकी पद्धति है। वह अगर सही है तो शिक्षाके द्वारा मनुष्य सही प्रकारसे अपना विकास कर सकता है और मनुष्यका विकास समाजका विकास है। परन्तु यदि वही पद्धति गलत हो तो न केवल विकास हो पाता, वल्कि वह गलत दिशाएँ पकड लेता है और मनुष्यका पतन ही होता है, जो हम आज प्रत्यक्ष देख रहे ह।

गाधीजीकी दूरदृष्टिने इसे देख लिया था और स्वतत्रता आनेके दस वर्ष पहलेसे देशको इस खतरेसे सावधान कर दिया था। परतु हम अभीतक वत्तीस वर्षके वाद भी इस चीजको नही समझ पाये हैं और कह रहे हैं कि वुनियादी शिक्षा असफल रही। किन्तु यह दोप तो उसके सिर तव मढा जा सकता है, जव किसीने उसे ईमानदारीके साथ आजमाया होता। फिर भी गैरसरकारी रूपमे "हिन्दुस्तानी तालीमी सघ" इस शिक्षा-पद्धतिको आगे वढानेका काम अपने ढँगसे कर रहा है। उसका मासिक मुख-पत्र है—'नयी तालीम'*।

---

*सर्व सेवा सघ द्वारा प्रकाशित, वार्षिक शुल्क रु० ६-००

३८. कांग्रेस गाँवोंकी ओर

(फैजपुर, हरिपुरा, त्रिपुरी)

(१९३६-'३७)

'भारत सात लाख गाँवोंमें बसा है।'
'किसान जगत्‌का तात है।'

—गांधीजी

सन् १९३४ में अ० भा० ग्रामोद्योग-संघकी स्थापनाके बादसे ही गांधीजी अनुभव करने लगे थे कि असली हिन्दुस्तान तीन हजार शहरों और कस्बोंमें नहीं, बल्कि साढ़े सात लाख गाँवोंमें है। गांधीजीकी यह प्रबल इच्छा थी कि कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशन शहरोंके बजाय ग्रामीण क्षेत्रमें होने चाहिए। गाँववालोंको अधिवेशनके लिए शहरोंमें बुलानेके बजाय अधिवेशनको ही गाँवोंमें करनेसे शहरवाले गाँवोंमें जायेंगे—उनके सम्पर्कमें आयेंगे और गाँववाले भी राष्ट्रीय संस्थाके संगठन और नियंत्रणमें हिस्सा बँटा सकेंगे।

फैजपुर-अधिवेशनके लिए बाँसोंकी जो बस्ती बसायी गयी थी उसका नाम लोकमान्यके नामसे 'तिलक नगर' रखा गया था। अधिवेशनका पण्डाल तथा प्रदर्शनीकी रचना आदि शान्ति-निकेतनके प्रसिद्ध कलाकार श्री नंदलाल वसुकी देखभाल और मार्ग-दर्शनमें हुई थी। यह अधिवेशन कांग्रेसके अच्छे सफल अधिवेशनोंमेंसे एक था। कांग्रेसके पृष्ठ-पोषक गांधीजी तो थे ही। वे चाहे कांग्रेसके विधिवत् सदस्य नहीं रहे, परन्तु प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपमें पूरी तरह कांग्रेसके लिए प्रेरणादायक और मार्गदर्शी रहे। फैजपुरमें जो सुन्दर खादी-ग्रामोद्योग-प्रदर्शनी लगी, उसमें गांधीजीकी पूरी दिलचस्पी रही, उन्होंने उसकी व्यवस्थाको बारीकीसे देखा था। अधिवेशनकी व्यवस्थाका सूत्र-संचालन गांधीजीके अनन्य अनुयायी और कुशल संचालक श्री शंकरराव देवद्वारा हुआ था।

इस अधिवेशनके सभापति पं० जवाहरलाल चुने गये थे जो पिछले वर्ष लखनऊ-अधिवेशनके भी सभापति थे। उनकी रुझान समाजवादी कार्यक्रम और सिद्धान्तकी ओर थी। किन्तु पिछले वर्षके अध्यक्षता-कालमें जिन वातावरण और परिस्थितियोंके अनुभव उन्हें होते रहे, इससे उन्होंने स्थितिकी वास्तविकताको समझ लिया था और चारों तरफ वातावरणके बीच जो खाई थी, वह स्वतः पटती जा रही थी। यही कारण था कि सरदार पटेल एक वक्तव्यद्वारा पं० नेहरूके पक्षमें दलील देकर कांग्रेस-अध्यक्षकी उम्मीदवारीसे हट गये थे।

सरदार पटेलने कहा था : "मैंने अपना नाम जो वापस लिया है, उसके मानी यह नहीं कि मैं जवाहरलालजीकी सारी विचारधारासे सहमत हूँ। कांग्रेस-

जन इस वातको मानते है कि कुछ महत्त्वपूर्ण वातोमे हम दोनोमे मतभेद है। उदाहरणार्थ मै ऐसा मानता हूँ कि पूँजीवादमेसे उसके सारे दोप दूर किये जा सकते है। जहाँ काग्रेस स्वतन्त्रता पानेके लिए सत्य और अहिंसाको अनिवार्य समझती है, वहाँ निष्ठावान् और सच्चे काग्रेसियोको इस बातकी समावनामे विश्वास रखना चाहिए कि जो निर्दयतापूर्वक जनताका शोषण कर रहे हैं, उनको प्रेमसे अपनाया जा सकता है। मेरा ऐसा विश्वास है कि जव जनताको अपनी भयकर दुर्दशाका वोघ होता है तो उसको दूर करनेके लिए वह खुद अपना तरीका चुन लेती है। मै तो इस सिद्धान्तको मानता हूँ कि सारी भूमि और सारी सम्पत्ति सभीकी है। किसान होनेके नाते और उसके मसलोमे दिलचस्पी लेते रहनेकी वजह से मै यह जानता हूँ कि दर्द किस जगह है, लेकिन मै जानता हूँ कि जनशक्तिके बिना कुछ भी नही किया जा सकता।

"इसलिए मै प्रतिनिधियोको यह वताता हूँ कि देशमे जो विभिन्न शक्तियाँ काम कर रही है, उनका ठीक दिशामे नियत्रण और निर्देश करने और साथ ही राष्ट्रका प्रतिनिधित्व करनेके लिए जवाहरलालजी सर्वोत्तम व्यक्ति है।"

जवाहरलालजीका वक्तव्य इस वारेमे वहुत ही सामयिक था। उन्होने कहा

"मै विचित्र स्थितिमे हूँ और विवादमे पडना नही चाहता। मै फिर अध्यक्ष चुना जाना नही चाहता था, और मैने यह कहा था कि जिस किसी दूसरे आदमीका चुनाव होगा, मै उसको सहर्ष सहयोग दूंगा।"

समाजवादी मित्रोको, जो उनके अध्यक्ष चुने जानेपर उनसे समाजवादके समर्थन तथा पदग्रहणके विरोधकी अपेक्षा रखते थे, उन्होने अपने वक्तव्य मे कहा

"मेरे लिए यह एक गलत वात होगी कि मै अध्यक्षके चुनावको समाजवादके पक्षका और पद-ग्रहणके विरोधका वोट वना दूं। मेरे अपने दृष्टिकोणको फिर जव भी मौका आयेगा, मै उन्हें समझाऊँगा। लेकिन आखिरी फैसला तो पूरे सोच-विचारके साथ काग्रेस ही करेगी। सवसे पहली चीज तो राजनीतिक आजादी है और उसके लिए हम सव सयुक्त मोर्चा वनाना चाहते हैं।"

इस काग्रेसको सफल वनानेमे विनोवाजीका वहुत वडा हाथ था। काग्रेस चूँकि गाँवमे हुई थी और वर्धासे नजदीक ही थी, अत कार्यकर्ताओको सुसगठित रखकर उनसे सुनियोजित रूपमे काम लेनेमे जहाँ विनोवाका नैतिक मार्गदर्शन हितकारी सिद्ध हुआ, वहाँ प्रदर्शनी, सफाई, अन्य व्यवस्था आदि कार्योमे भी उनके अनुभव और सूझवूझका लाभ अधिवेशनको उपलव्ध हुआ।

हरिपुरा (गुजरात) अधिवेशनमे गाधीजीकी भावनाओको अमलमे लानेका और भी अधिक उत्साहसे प्रयत्न किया गया था। इस अधिवेशनमे ग्रामोद्योगी वस्तुओका ही आमतौरपर प्रचलन रहा, यहाँतक कि स्वागत-समितिने अपना सारा काम हाथ-वने कागजसे चलाया था। प्रतिनिधियो और दर्शकोके

लिए भोजनका प्रबन्ध करनेमें और ग्रामकी शुद्ध खादी खाद्य वस्तुओंद्वारा किया गया था। अधिवेशनके अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बसु थे।

शुभ-संयोगकी ही बात थी कि पंडितजीने अपना उत्तराधिकार एक ऐसे नौजवानको सौंपा था जो उनसे भी कम उम्रके थे। वास्तवमें सुभाषचन्द्र बसु कांग्रेसके अध्यक्षोंमें सबसे कम उम्रवाले अध्यक्ष थे। गांधीजीकी यह विशेषता रही है कि भिन्न विचारवाले लोगोंको भी अपने मधुर अहिंसक प्रेम-व्यवहारसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते और उपयोगी तथा योग्य-पुरुषोंसे महत्त्वपूर्ण कार्य करा लिया करते थे। सुभाषबाबूको कांग्रेस-अध्यक्ष बनानेमें उनका यही हेतु था। राष्ट्रमें जितने प्रगतिशील विचारोंके नौजवान थे, उनको कांग्रेस-संगठनकी ओर खींचने और राष्ट्रीय संगठनको मजबूत बनानेका यह सुनहला अवसर था। इसे वे कैसे हाथ से जाने देते ?

सुभाषबाबूने अधिवेशन आरम्भ होनेसे पूर्व अपनी नीतिका स्पष्टीकरण इन शब्दोंमें किया .

"कांग्रेसके अध्यक्षके रूपमें मेरे कार्यकालमें संघ-योजना और उसकी अराष्ट्रीय अलोकतंत्रीय विशेषताओंका विरोध किया जायगा। यह विरोध शांतिपूर्ण और उचित उपायोंद्वारा, जिनमें आवश्यकता पड़नेपर अहिंसात्मक असहयोग भी शामिल किया जा सकता है, किया जायगा। साथ ही योजनाका सामना करनेके लिए देशके संकल्पको दृढ़तर बनानेका भी प्रयत्न किया जायगा।"

हरिपुरा-कांग्रेसने कई महत्त्वपूर्ण निर्णय किये थे। किसानोंकी स्थिति सुधारने तथा मुख्य रूपसे देशी-राज्योंकी जनता तथा देशी-राज्योंके संगठनोंके बारेमें उसने दिलचस्पी दिखायी थी। देशमें ग्यारहमेंसे आठ प्रान्तोंने स्थानीय शासन सँभाल रखा था और विभिन्न प्रान्तोंमें विभिन्न प्रकारकी परिस्थितियोंके अनुसार काम हो रहा था। वहाँकी खादी-ग्रामोद्योग-प्रदर्शनी उस अधिवेशनका एक प्रमुख आकर्षण रही।

प्रदर्शनीका उद्घाटन करते हुए गांधीजीने इस प्रकारकी प्रदर्शनियोंको शिक्षण शालाओंकी संज्ञा दी; खादी और चरखेपर जोर दिया और जीवन-मजदूरीके बारेमें उन्होंने गुजरात जैसे धनी प्रदेशको कताईकी दर बढ़ाकर इसमें पहल करने-का अनुरोध किया।

हरिपुरा-कांग्रेसने अन्य कामोंके साथ राष्ट्रीय शिक्षाके लिए डॉ० जाकिर हुसेन और आर्यनायकम्की देखरेखमें एक शिक्षा-बोर्ड कायम करने और इस बारेमें अपनी तजवीजें प्रस्तुत करके उन्हें असली रूप देनेका भी निर्णय लिया गया।

इस अधिवेशनमें जहाँ विशेषताएँ और आकर्षण थे, वहाँ गांधीजीके लिए संगीताचार्य नारायण मोरेश्वर खरेका निधन आघात पहुँचानेवाला साबित हुआ। श्री खरेके बारेमें गांधीजीने कहा :

"कृत्रिम आवाजसे सुन्दर सगीत पैदा करनेकी कला तो बहुत लोग हासिल कर सकते हैं, लेकिन शुद्ध जीवनकी एकरसतासे उस सगीतको पैदा करनेकी कला विरले ही प्राप्त करते है। पडित खरे उन विरले व्यक्तियोमेसे थे, जिन्होने सम्पूर्णताके साथ उस कलाको प्राप्त किया है। ऐसा कोई अवसर नही हुआ जब कि उनके जीवनकी शुद्धताके बारेमे मुझे जरा-सा भी सदेह हुआ हो।

"दूसरे पडितजीका मिलना अशक्य समझता हूँ। सगीत और श्रेष्ठ नीतिका मेल कहाँ ढूंढूंगा ?"

काग्रेसका अगला अधिवेशन त्रिपुरीमे होनेवाला था। उसकी तैयारियाँ प्रारम्भ हो गयी।

गाधीजी तथा काग्रेस-कार्य-समितिके नेताओका खयाल था कि सामान्यतया जिस प्रकार प्रतिवर्ष पारस्परिक सद्भाव और सर्वसम्मत विचारोके अनुसार काग्रेस-अध्यक्षका चुनाव होता रहता है, उसी प्रकार इस बार भी हो जायगा और इस बार मौलाना आजादको अध्यक्ष बनाये जानेकी चर्चा चल रही थी। गाधीजी-का विचार था कि त्रिपुरी-काग्रेसके अध्यक्ष मौलाना आजादके होनेसे साम्प्रदायिक समस्याके हल करनेमे मदद मिलेगी। यह इसलिए भी आवश्यक था कि राष्ट्र-की आजादीकी माँग और ब्रिटेनद्वारा उसकी पूर्ति नही होनेके कारण यह उचित और आवश्यक प्रतीत हो रहा था कि काग्रेस-अध्यक्षका पद किसी योग्य मुसलमान काग्रेसीको दिया जाय। मौलाना सन् १९२३ के एक विशेष अधिवेशनमे काग्रेसके अध्यक्ष रह चुके थे। गाधीजीने सुभाषबाबूको मौलाना आजादके मुकाबले दुबारा काग्रेस-अध्यक्ष पदके लिए खडे होनेके लिए प्रोत्साहन नही दिया। इसके बावजूद सुभाषबाबूके नामका प्रस्ताव उनके साथियोने कर दिया और सुभाष-बाबूने खडा होना स्वीकार भी कर लिया। मौलानाकी उम्मीदवारीकी भी निय-मित रूपसे घोषणा की गयी। परन्तु मौलाना आजादने दूसरे दिन बम्बईसे सूचित किया कि काग्रेस-अध्यक्ष पदकी उम्मीदवारीसे वे अपना नाम वापस लेते है। तब गाधीजीके सामने दुविधा खडी हो गयी।

गाधीजीने श्री पट्टाभि सीतारामय्याको तैयार किया कि यदि मौलाना तैयार नही हैं तो उनको यह कांटोका ताज अपने सिरपर लेना चाहिए। काग्रेस-कार्य-समिति-के अधिकाश सदस्योने इस चुनावके लिए अपील निकाली थी। यह चुनाव काग्रेस-के इतिहासमे एक अभूतपूर्व घटना ही बन गया था। चुनाव-परिणामसे लोगोके आश्चर्यका ठिकाना नही था कि गाधीजी और काग्रेस-कार्य-समितिके प्रभाव-शाली सदस्योंके बहुमतका समर्थन होते हुए पट्टाभि सीतारामय्या हार गये। पट्टाभि-की हारको गाधीजीने अपनी 'हार' माना था।

काग्रेसमे पारस्परिक सद्भावना, सगठन और एकताका जो दर्शन सदैव रहता रहा, उसका इसमे अभाव था। चिंताका एक और बडा कारण यह था कि जिन

दिनो यह अधिवेशन चल रहा था, उन्ही दिनो गाधीजी राजकोटमे उपवास कर रहे थे।

सुभाषबाबू अपनी बीमारीके कारण काग्रेसके त्रिपुरी-अधिवेशनसे एम्बूलेंस कारमे गये। एक लम्बी यात्राके बाद झरियाके पास किसी स्थानपर ठहरे, जहाँ एक माह स्वास्थ्य-सुधारमे उन्हें लगा। काग्रेस कार्य-समितिकी घोषणा गाधीजी-की सलाहमे की जाय, इस बारेमें एक प्रस्ताव खुले अधिवेशनमे श्री गोविन्दवल्लभ-पन्तने रखा था, जिसको १६० प्रतिनिधियोका समर्थन था। प्रस्तावमें गाधीजीके नेतृत्वमे विश्वास प्रकट करते हुए यह मत व्यक्त किया गया था कि चूंकि आगामी वर्षमे विकट परिस्थिति उत्पन्न होनेकी सभावना है, और ऐसे सकटके समय केवल महात्मा गाधीजी काग्रेस तथा देशको विजयपथपर ले जा सकते है, यह आवश्यक है कि कार्य-समितिको उनका पूर्ण विश्वास प्राप्त हो और इसीलिए कमेटी अध्यक्षसे अनुरोध करती है कि वे कार्य-समितिका चुनाव गाधीजी की इच्छाके अनुसार करें।

प्रश्न था कि इस प्रस्तावको स्वीकार किया जाय या नही। एक विचार-के लोगोने कहा कि अ० भा० काग्रेस कमेटी इस प्रकारके प्रस्तावपर विचार कर ही नही सकती और अध्यक्षने भी यही निर्णय दिया। परन्तु उन्होने विषय-समितिमे इस विषयको उठानेकी अनुमति देना स्वीकार कर लिया।

आखिर काग्रेस-कार्य-समितिकी घोषणा नहीं हो सकी। न सुभाषबाबूने स्वतत्ररूपमे कार्य-समितिके सदस्योकी घोषणा की, न गाधीजी ही उनको सलाह दे सकते थे। अ० भा० काग्रेस-कमेटीकी बैठक कलकत्तामे हुई और स्थिति यहाँ तक उलझ गयी कि बैठकके पूर्व ही सुभाषबाबूने अध्यक्ष-पदसे त्याग-पत्र दे दिया। राजेन्द्रबाबू काग्रेसके अध्यक्ष चुने गये। सुभाषबाबूने विरोधी रुख अख्तियार किया। उन्होंने अ० भा० काग्रेस-कमेटीके उन निर्णयोके खिलाफ जिनमें प्रान्तीय मत्रिमण्डलो और स्थानीय कमेटियोके मतभेदोको मिल-जुलकर तय करनेकी तजवीजें थी तथा आपसमे विवाद खडे करनेमे रोका गया था, खुला विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। यहाँतक कि शराबबन्दीकी नीतिके खिलाफ बम्बईमे पार-सियोसे मिलकर काग्रेसकी नीतिके विरोधमें वक्तव्य दिया। उन्होने ९ जुलाईको अ० भा० काग्रेस-कमेटीके इन निर्णयोंके खिलाफ 'विरोधी दिवस' मनानेका निश्चय किया। स्वभावत. इसपर काग्रेस-अध्यक्ष राजेन्द्रप्रसाद और काग्रेस-कार्य-समितिको बडा दुःख हुआ और उन्हें अनुशासनात्मक कार्यवाही करनेपर विवश होना पड़ा।

इन सब घटनाओंके बावजूद गाधीजी सुभाषबाबूके प्रति कितना स्नेह रखते थे वह उनके लिखे गये समय-समयके लेखो और प्रकट किये गये उद्गारोंसे मालूम होता है।

३९. गांधीजी और देशी राज्य

(१९३८)

'देशी-राज्योके निवासी दुहरे गुलाम थे।'

ज्यों-ज्यों गाधीजीके नेतृत्वमे राष्ट्रीय आदोलन देशमें सगठित और दृढतर होता गया, त्यों-त्यों देशी राज्योंमें भी सगठन होने लगे थे। देशी राज्योके बारेमें हरिपुरा-काग्रेस (१९३८) ने सर्वप्रथम पूरी दिलचस्पीसे विचार किया, जो कि श्री सुभाषचन्द्र बसु की अध्यक्षतामें हुई थी। देशी-राज्योमे राजनीतिक काम करनेके लिए 'अ० भा० देशी राज्य-प्रजा-परिषद्' की स्थापना हो चुकी थी। राष्ट्र-नेता प० जवाहरलाल नेहरू उसके अध्यक्ष थे। उन्ही दिनो दक्षिण भारतकी प्रमुख रियासत मैसूरमे दमन हुआ था और उसके फलस्वरूप वहांकी जनतामे जनजागृति हुई। इसीसे प्रभावित होकर काग्रेस-महासमितिने १९३७ मे अपने अक्तूबरके कलकत्ता-अधिवेशनमे मैसूरके सबधमे जो प्रस्ताव पास किया था, वह काग्रेसद्वारा सदासे ग्रहण की गयी नीतिसे कही आगे बढ गया था। प्रस्तावमे अपील की गयी थी कि मैसूरकी प्रजा अपने आत्मनिर्णयके अधिकारके लिए रियासती सरकारके विरुद्ध जो सघर्ष कर रही है, उसमे रियासतो और ब्रिटिश भारतकी प्रजाको सहायता करनी चाहिए। यही नही, उत्तर, पूर्वी, दक्षिण और पश्चिम सभी ओर रियासतोमे पिछले दो वर्षोंमे जागृतिकी लहर फैल गयी थी, और काग्रेसके वर्तमान हरिपुरा-अधिवेशनसे पूर्व रियासती प्रजा-कार्यकर्ता-सम्मेलन नवसारीमे हो चुका था। अब महसूस किया जाने लगा था कि काग्रेस कार्य-समितिके प्रस्तावोके मसविदो मे कुछ रद्दोबदल होना चाहिए। फलस्वरूप काग्रेसने इस अधिवेशनमे रियासती नीतिके प्रस्तावके मसविदेमें निम्न वाक्य और जोडकर रियासतोमे भी काग्रेस-कमेटियाँ कायम कर देनेकी गुजाइश पैदा कर दी। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि रियासतोके मामलेमे गाधीजी ही प्रधान सलाहकार थे। काग्रेसने मसविदेमे जोडा

" इसलिए काग्रेस आदेश देती है कि रियासतोकी काग्रेस-समितियाँ कार्य-समितिके निर्देश तथा नियन्त्रणमे रहकर कार्य करें। अभी काग्रेसके नामपर या उसकी तरफसे किसी पार्लियामेण्टरी कार्य या सीधी कार्रवाईमे भाग न लें। रियासतोकी कोई भीतरी लडाई काग्रेसके नामपर नही लडी जानी चाहिए। इसके अलावा जहाँ काग्रेस-समितियोके सगठनका कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है और जहाँ समितियाँ पहलेसे हो, वहाँ उनके कामको जारी रखा जा सकता है।"

गांधीजीने ४ अप्रैल १९३४ को ही एक वक्तव्यमें समाजवाद तथा रियासतों और कांग्रेसके विधानके सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट कर दिये थे। फरवरी १९३८ में हरिपुरा-कांग्रेसका अधिवेशन हुआ और उसमें कांग्रेसने अपने विधानकी पहली धारामें जहाँ 'हिन्दुस्तान' शब्द आया है वहाँ 'हिन्दुस्तानकी जनता' शब्द कर दिये, जिससे रियासतोंकी प्रजा भी उसमें सम्मिलित हो जाती है। हरिपुरा-कांग्रेसमें ५६२ रियासतोंकी प्रजाको विश्वास दिलानेके लिए कि आगे भी कांग्रेस उनकी सहायता करेगी, अ० भा० कांग्रेस-कमेटीकी एक उपसमिति नियुक्त करनेका सुझाव पेश किया, और चाहा कि रियासती प्रजाकी दशा—विशेषकर रियासतोंमें नागरिक स्वाधीनता, वैधानिक उन्नति कृषि-सबधी अवस्था और व्यापारमें राज्यके एकाधिकार आदि विषयोंमें जाँच-पड़ताल करके कांग्रेसके आगामी अधिवेशनमें अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे।

रियासतोंके भीतरी मामलेमें दखल नहीं करनेकी कांग्रेसकी नीतिके पीछे गांधीजीके विचारोंकी ही प्रधानता रही है।

भारतकी ५६२ रियासतोंमें कम-से-कम औंध रियासत तो चाहे वह छोटी ही रही हो, ऐसी निकली जिसने गांधीजीके विचारोंके अनुसार सबसे पहले अंग्रेजोंके जमानेमें ही पूरी तरह जनताको उत्तरदायी शासन प्रदान किया, गांधीजीसे अपनी रियासतके लिए निर्मित विधानको स्वीकृत करवाया और अपने खर्चके लिए कुल तीन लाख आमदनीमेंसे छत्तीस हजार रुपयेके बजटसे काम चला लेनेका साहस किया।

स्वयं गांधीजीने अपने १९ नवम्बर १९३९ के 'हरिजन' में औंधके बारेमें उल्लेख किया है:

"एक तरफ औंधमें शासन-सुधारका काम हो रहा था, तो दूसरी तरफ कई देशी रियासतोंमें दमनचक्र चल रहा था। सत्याग्रह स्थगित कर दिये जानेपर भी राज्यमें प्रजाकीय संगठित संस्थाओंको कानूनी रूप नहीं दिया जा रहा था। जयपुरका सत्याग्रह कांग्रेसके सम्मानित नेता और कोषाध्यक्ष श्री जमनालालजी बजाजके नेतृत्वमें चलाया गया है। मेवाड़ प्रजामण्डलको गैरकानूनी घोषित करके वहाँके नेताओंको जेलमें डाल दिया गया।

हैदराबाद, त्रावणकोर, कोचीन तथा राजपूतानाकी अन्य रियासतें जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेरमें भी वहाँकी जनता नागरिक-अधिकारोंके लिए अपने ढंगसे आन्दोलन कर रही थी।

जयपुर-सत्याग्रहसे श्री जमनालालजीका सम्बन्ध होनेके कारण रियासती भारतकी आँखें विशेष रूपसे उस ओर लगी हुई थीं। गांधीजीने स्वयं जयपुरके बारेमें लिखा था:

'जयपुरका मामला बहुत ही सीधा और राजकोटसे भिन्न है और यदि मुझे

मिली हुई खबर सही है, तो वहाँके अग्रेज प्रधानमत्री इस बातपर तुले हुए है कि उत्तरदायी शासनकी भावनाको लोगोमे फैला देनेका भी कोई आदोलन न चलाने दिया जाय। इसलिए जयपुरमे सविनय-अवज्ञा उत्तरदायी शासनके लिए नही, बल्कि प्रजामण्डल और उसके अध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाजपर लगाये गये प्रतिबन्धको हटानेके लिए की जा रही है। मेरी रायमे वाइसरायका कर्तव्य है कि वे जयपुरके अग्रेज प्रधानमत्रीसे कहें कि पाबन्दी हटा लें। वाइसरायके ऐसा करनेसे किसी हालतमे यह नही समझा जा सकता कि उन्होंने देशी रियासतोके मामलेमे अनावश्यक दस्तदाजी की।"

राजकोट काठियावाडकी एक ऐसी रियासत थी, जिससे गाधीजीका बचपनसे ही पारिवारिक जैसा सबध था।

यो गाधीजी किसी भी देशी राज्यमे सीधा सघर्ष मोल लेनेके सर्वथा खिलाफ थे, क्योकि उनकी मान्यताके अनुसार अग्रेजोसे लडना और देशको विदेशी हुकूमतसे मुक्ति दिलाना मुख्य और प्रथम कर्तव्य था, किन्तु विशेष परिस्थितिके कारण राजकोटके जन-आदोलनको उन्होने अपने हाथमे लिया।

राजकोट प्रजा-परिषद् गैरकानूनी घोषित की जा चुकी थी और सभी प्रमुख कार्यकर्ता जेल भेज दिये गये थे। इस आन्दोलनमे कई महिलाओने भाग लिया था, जिनमे सरदार पटेलकी सुपुत्री श्री मणिबहन तथा मृदुला साराभाई भी जेल गयी थी। अ० भा० देशी राज्य प्रजा-परिषद्के मत्री श्री बलवन्तराय मेहता भी आन्दोलनमे सम्मिलित थे। बम्बईसे भी इस आदोलनमे सत्याग्रहियोके जत्थे आने लगे थे। इसीलिए गाधीजीने इस आदोलनमे दिलचस्पी लेना आरम्भ किया था। उन्होने कहा कि सत्याग्रहमे बाहरकी जनताको नही घसीटना चाहिए। काग्रेस-कार्यसमितिका ध्यान इस आन्दोलनकी ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था। समितिने उत्तरदायी शासनकी प्राप्तिके लिए किये जानेवाले इस आन्दोलनका स्वागत किया। परन्तु उसने रियासतके बाहरके लोगोको आन्दोलनमे भाग नही लेनेका परामर्श दिया, जिससे कि रियासती प्रजाकी परेशानी न बढने पाये।

राजकोट-सत्याग्रहकी तरफ सारे देशका ध्यान आकर्षित हो गया था, क्योकि इसमे गाधीजी और राष्ट्रके, मुख्यत गुजरातके नेताओका सम्बन्ध जुड़ गया था। सत्याग्रहके दौरान राजकोटके ठाकुर साहबने सरदार वल्लभभाई पटेलको बम्बईमे मुलाकातके लिए बुलाया और २६ दिसम्बर १९३९ को सरदार पटेल और ठाकुर साहबके बीच समझौतेकी घोषणा हुई, जिससे प्रजाद्वारा चलाया जानेवाला राजकोटका आन्दोलन समाप्त हो गया।

इस घोषणाके अनुसार दस व्यक्ति समितिमे लेने थे, उनमे सात 'प्रजाजनो' मेसे लिये जानेवाले थे। इनको सरदार वल्लभभाई नामजद कर देंगे, ऐसा समझौता

हुआ था। परन्तु ठाकुर साहबने इस समझौतेको नहीं निभाया। समझौतेके टूटने के परिणामस्वरूप गांधीजीको अत्यधिक दुःख हुआ।

वर्धासे राजकोटके लिए प्रस्थान करनेपर गांधीजीसे जब राजकोटके बारेमें पूछा गया तो उन्होंने कहा :

"मैं केवल शांतिके 'मिशन' पर राजकोट जा रहा हूँ। अतः मैंने सरदार पटेलसे राजकोटमें सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित करनेके लिए कहा है जब कि मैं प्रभुकी कृपासे कष्ट दूर करनेके लिए अपना विनम्र प्रयत्न करता हूँ। जहाँतक मेरे शरीरका संबंध है, मैं बीमार हूँ। इसलिए जनताको चाहिए कि वह कोई प्रदर्शन न करे। आंदोलन स्थगित रखनेकी अवधिमें राजकोटवासियोंको अधिकारियोंकी बात माननी चाहिए। समझौतेकी बातचीत करनेके समय मुझे झंझटसे बचे रहने की जरूरत है। मैं उनसे मूक प्रार्थना करना चाहता हूँ जिनका कि इसमें विश्वास है। हालाँ कि हिन्दुस्तानके नक्शेमें राजकोट एक बिन्दुके समान है,तो भी जिस सिद्धान्त की प्रतिष्ठाके लिए मैं राजकोट जा रहा हूँ वह ऐसा है कि जिसके बगैर समाज छिन्न-भिन्न होनेसे बच नहीं सकता।"

राजकोट पहुँच जानेके बाद गांधीजीने वहाँकी स्थितिपर विचार किया और कहा :

"इस नाजुक मौकेपर तो मैं सिर्फ यही कहना चाहूँगा कि रातभरके जागरण के बाद मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि जिस लड़ाईको स्थगित किया हुआ है उसे फिरसे शुरू न करना हो और जिन अत्याचारोंके बारेमें मैंने बहुत कुछ सुना है और जिनका मुझे अखबारोंको दिये हुए अपने वक्तव्यमें भी उल्लेख करना पड़ा है, उन्हें भी फिरसे शुरू न कराना हो, तो मुझे इस मर्मान्तिक वेदनाका अन्त करनेके लिए कोई कारगर उपाय करना चाहिए और ईश्वरने मुझे यह उपाय बतला दिया।

"यह याद रहे कि राजकोट और उसके शासकोंसे मेरा घनिष्ठ संबंध रहा है ठाकुर साहबको जब मैं अपने लड़केकी तरह मानता हूँ, तब मुझे इस बातका पूरा हक है कि उनके अंतःकरणके सर्वोत्तम अंशको जागृत करनेके लिए मैं आत्म-बलिदान का सहारा लूँ। अगर मेरे उपवासको, जो कि मुझे उम्मीद है, टल जायगा, दबाव डालना समझा जाय, तो मैं सिर्फ यही कह सकता हूँ कि ऐसे नैतिक दबावका सब संबंधित जनोंको स्वागत ही करना चाहिए।"

उन्होंने आगे कहा :

"वचन-भंग मेरी अन्तरात्माको हिला देता है, खासकर जब कि वचनभंग करनेवालेसे मेरा किसी तरहका कोई संबंध हो और इसके लिए अगर मुझे अपनी जान भी दे देनी पड़े, जो कि ७० बरसकी इस उम्रमें कोई बीमा लायक नहीं है, तो एक पवित्र और गंभीर वचनका उचित रीतिसे पालन करानेके लिए मुझे खुशीके साथ उसे उत्सर्ग कर देना चाहिए।"

इस प्रकार गाधीजीने अनशन शुरू कर दिया। उपवास प्रारम्भ हुआ और सारे देशमे हलचल मच गयी। इन्ही दिनो कस्तूरबा स्वय राजकोटमे एक नजरबदी कैदीकी हैसियतमे थी। उपवासके समय भी वे गाधीजीके साथ नही थी। आखिर गाधीजीके कई हितैषियोके प्रयत्नपर वाइसराय लार्ड लिनलिथगोने, जो स्वय गाधीजीके भी मित्र थे, बीचमे पडकर गाधीजीका उपवास तुडवाया।

राजकोटका सघर्ष देशमे लम्बे समयतक हलचल मचाता रहा। गाधीजीने राजकोटके वचन-भगके कारण जो अनशन किया था, वह उनकी दृष्टिसे उन्हे अहिंसा-के पूरी तरह अनुकूल प्रतीत नही हुआ और जो सुविधा उससे प्राप्त हुई थी, उसे उन्होने लौटा दिया। इसमे उन्होने जो वाइसरायको बीचमे डाला, यह भी उन्हें उचित नही लगा। तब समझौता भग हुआ या नही, इस सबधमे सर मारिस ग्वायर से जो भारतके चीफ जस्टिस थे, राय मांगी गयी थी। उन्होने ठाकुरसाहबकी घोषणा-पर अपना जो निर्णय दिया था वह गाधीजी तथा जनताके हकमे ही पडता था। उसपर भी ठाकुर साहब नही टिके और दुबारा वचन-भग किया। गाधीजीकी यह कितनी महानता रही कि उनके मनमे किंचित्‌मात्र भी कही उन्हें कमजोरी या गलती लगती तो वे दुनियाके सामने ढिढोरा पीटकर स्वीकार कर लेते थे। इस सारे वातावरणको जहरीला बनानेमे, देश-भरमे परेशानी पैदा करनेमे, ठाकुर साहबके कुटिल दीवानका हाथ था जिसने अग्रेज रेजिडेंटको भी बदनाम करवानेमे कोई कसर नही रखी थी। उसकी चालबाजियोका ही परिणाम था कि मसला हल नही हो सका और आखिर गाधीजी राजकोट से रवाना हो गये। राजकोटका सघर्ष, उनका उपवास और इस सारे प्रकरणके अतका उनका वक्तव्य इस बातकी ओर पूरी तरह प्रकाश डालता है

"राजकोटके इस १६ दिनके दुखदायी अनुभवसे मै इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि अगर ठाकुर साहब और दीवान यह महसूस करते हो कि उन्हें केवल ऊपरके दबावकी वजहसे ही कुछ देना पड रहा है, तो मैं समझता हूँ कि मेरी अहिंसा निष्फल साबित हुई है। मेरी अहिंसाका तो तकाजा है कि मैं ऐसी भावनाको दूर कर दूँ और इसलिए जब मुझे मौका मिला, तो मैंने दीवानको यह आश्वासन देनेकी कोशिश की कि सार्वभौम सत्तासे इस मामलेमे मदद मांगनेमे मुझे कोई खुशी नही होती। अहिंसाके अलावा मेरे राजकोटसे चले आ रहे ताल्लुकात भी मुझे ऐसा करनेमे रोकते है।

"अगर उन्होंने यह प्रश्न मुझसे पूछा होता तो वाच्यत मुझे कहना पडता कि मुझमे अब भी इतना आवश्यक साहस नही आया है। अहिंसा केवल साहसी मनुष्य-को ही प्राप्त होती है और इसीलिए मै खाली हाथ, अस्वस्थ और निराश लौटा हूँ। राजकोट मेरे लिए एक अमूल्य प्रयोगशाला साबित हुआ है। काठियावाडकी पेचीदा और कष्टप्रद राजनीतिने मेरे धैर्यकी बडी कडी परीक्षा की है।

"मैंने कार्यकर्ताओंसे कहा है कि वे दीवानसे सलाह-मशविरा करें, मुझे और सरदारको भूल जायें और अगर उनकी कम-से-कम मांगें काफी तौरसे पूरी होती हो तो वे उन्हें बगैर हमसे पूछे स्वीकार कर लें। दीवान से मैंने यह कहा है— "मैं हार गया हूँ। आप विजयी हो। प्रजाको जहाँतक हो सके अधिक-से-अधिक देकर खुश रखनेका प्रयत्न कीजिये और मुझे इसकी तारसे सूचना दे दीजिये, जिससे कि मेरे अन्दर उसी आशाका फिरसे सचार हो जाये, जिसे कि फिलहाल क्षणभरके लिए खो बैठा हूँ।"

४०. विनोबा पहले सत्याग्रही

(१९४०-'४१)

क्रिप्स मिशन

'मेरे बाद अहिंसाके सर्वोत्तम प्रतिपादक और उसे समझनेवाले विनोबा ही है।'

—गाधीजी

द्वितीय महायुद्धकी लपटें एशियामे फैल चुकी थी। जापान लडाईमे कूद पडा था और उससे चीन तथा पूर्वी एशियाके लिए भारी खतरा उपस्थित हो गया था। चीनके नेता जनरल चाग काई शेक अपनी पत्नीके साथ भारत आये थे। उनका भी प्रयत्न था कि काग्रेस-नेता और गाधीजी युद्धमे जापानका विरोध करनेके लिए मित्र राष्ट्रोकी सहायतामें सक्रिय योग प्रदान करें। गाधीजी अपनी अहिंसाकी मान्यता-के आधारपर युद्धमे अपने देशको झोकनेके लिए कदापि तैयार नही थे। काग्रेसकी विदेशनीतिके प्रणेता प० जवाहरलाल नेहरू थे, जिनका फासिस्टवाद-विरोधी रुख जग-जाहिर था। वे तानाशाही राज्योंके साथ किसी भी तरहके समझौतेको पसद नही कर सकते थे। काग्रेसके इन विचारोको समझकर तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिनलिथगोने तार देकर गाधीजीको मिलने बुलाया। गाधीजी तुरन्त शिमला पहुँचे। उन्होने लार्ड लिनलिथगोको आश्वासन दिया कि उनकी सहानुभूति इग्लैंड और फ्रासके साथ है, लेकिन अहिंसावादी होनेके नाते वे मित्र-राष्ट्रोका केवल नैतिक समर्थन ही कर सकते हैं। युद्धकी चर्चामे जब इग्लैंडके पार्लियामेंट भवन और वेस्ट मिन्स्टर एबेकी बमबारीद्वारा ध्वसकी आशकाओका जिक्र आया तो गाधीजी व्याकुल हो गये। युद्धके आरभके दिनोंमें वे बहुत ही उद्विग्न थे। ३० सितम्बर, १९३९ के 'हरिजन' मे वे अपनी पीडा इस प्रकार व्यक्त करते हैं

"मैं बहुत ही खिन्न और असहाय हो गया हूँ। मैं अपने मनमे हर समय ईश्वरको उलाहना देता हूँ कि तू ऐसे बीभत्स कृत्य क्यो होने देता है। अपनी अहिंसा मुझे

निर्वल और निर्वीर्य मालूम होने लगती है। लेकिन रोज ईश्वरसे झगडा करनेके बाद मुझे यही जवाब मिलता है कि न ईश्वर निर्वल है और न अहिंसा ही। निर्बलता और नामर्दी तो आदमियोमे है।"

हिंसासे हिंसाके मुकाबलेको गाधीजी निरर्थक समझते थे। उनका अपना रास्ता बिलकुल साफ था। उन्होंने कहा. "मेरा निश्चित प्रयोजन तो कार्य-समिति या सरकार दोनोको अहिंसाके मार्गपर ले जाना होगा चाहे वह मार्ग कितना ही अस्पष्ट क्यो न हो।"

इसी प्रसगमे उन्होने १४ अक्तूबर १९३९ के 'हरिजन' मे अहिंसाके प्रति अपनी दृढ आस्था व्यक्त करते हुए लिखा "मेरी आस्था अकेले मुझीतक सीमित है। देखना है कि इस पथपर मुझ एकाकीका कोई सहयात्री है भी या नही। .... सगी-साथी एक हो या बहुतसे, मै तो जोर देकर यही कहूँगा कि अपनी सीमाओकी रक्षाके लिए भी भारत हिंसाका अवलम्बन न करे। यही उसके लिए श्रेयस्कर है।"

नाजियोंके सैनिकवाद और आतकपूर्ण कार्यवाहियोके विरोधी और मित्र-राष्ट्रोंके प्रति सहानुभूतिशील होते हुए भी गाधीजी इस वातपर जोर देते आ रहे थे कि हिंसाको केवल अहिंसाके द्वारा प्रभावोत्पादक ढँगसे समाप्त किया जा सकता है। वे काग्रेससे भी यही घोषणा करवाना चाहते थे कि देशपर सशस्त्र आक्रमण होनेपर उसका अहिंसात्मक प्रतिरोध किया जायेगा। लेकिन जब इसके बदले काग्रेसने युद्ध-सचालन और देश-रक्षाके निमित्त अस्थायी सरकारमे सम्मिलित होनेकी तत्परता दिखायी, तो गाधीजीने उस नीतिसे अपनेको अलग कर लिया, क्योकि वह हिंसापर आवृत थी और किसी भी प्रकारकी हिंसात्मक नीतिमे गाधीजीका विश्वास नही था।

गाधीजी युद्ध-कालमे, सकटके समयमे, सरकारको परेशान नहीं करना चाहते थे। काग्रेसके अन्य नेता तो मित्र-राष्ट्रोकी स्थितिके प्रति चिन्तित थे। नेताओंमेसे कुछेककी मान्यता थी कि इन सकटपूर्ण घड़ियोमे सरकार सद्भावनाका रुख ग्रहण करेगी और इस हेतुसे उन्होंने युद्धमे सहयोगकी अपनी शर्तोको काफी नरम भी बना दिया था। परन्तु उन्हें निराश होना पडा। अगस्त ४ को ब्रिटिश सरकारकी ओरसे वाइसरायने एक घोषणा की, जिसमे भारतीयोंके नया विधान बनानेके अधिकारको स्वीकार किया गया था, किन्तु साथ ही उसमें यह भी जोड दिया गया था कि जबतक इग्लैंड युद्धमे फँसा है, तबतक विधान तैयार करनेका काम शुरू नही हो सकता। इसके अतिरिक्त घोषणामे कुछ ऐसी बातोका भी उल्लेख था, जिसके अनुसार काग्रेस-लीग समझौतोंके लिए और भी कठिनाइयाँ खडी हो सकती थी। सरकारकी इन चालबाजियोंसे कांग्रेसके जो नेता सरकारसे आशा लगाये बैठे थे, उन्हें बडी निराशा हुई। गांधीजी तो जानते ही थे कि सरकार देशको उसकी मर्जी-के खिलाफ युद्धमे घसीट ले जाना चाहती है। वह न तो भारतीयोंको स्वाधीनता

ही देती है और न उसके लिए पक्का वादा ही करती है। गांधीजीने अपना सरकार-विरोधी अभियान राजनीतिक आधारपर नहीं, शान्तिवादी और युद्ध-विरोधी आधारपर संगठित किया।

गांधीजीने देखा कि लड़ाईकी लपटें दूर-दूरतक फैलती जा रही हैं। ब्रिटेनका दिल भारतके प्रति नरम होनेके बजाय और भी कठोर और सख्त होता जा रहा है। वह इतना निर्मम और निर्दय बनता जा रहा था कि जिसकी कल्पनातक नहीं की जा सकती थी।

कांग्रेसका वामपक्ष और गांधीजीके कुछ सहयोगी भी जन-आन्दोलन शुरू न करनेके पक्षमें थे, लेकिन गांधीजीने चुने हुए लोगोंके द्वारा सत्याग्रह शुरू करनेका फैसला किया। सत्याग्रहियोंके लिए उन्होंने जो मर्यादाएँ बतायीं, उनमें दो बातोंपर विशेष जोर था एक तो वे जनताको उत्तेजित न करें और दूसरे अधिकारियोंको हैरान न करें।

सन् १९४० का वर्ष और अक्तूबर मास। गांधी-जयन्तीके अवसरपर गांधीजीके गत ५५ सालके सार्वजनिक जीवन, उनके त्याग, बलिदान और उपदेशोंका स्मरण किया गया। जनताके सामने सारा इतिहास रखा गया कि किस प्रकार देश धीरे-धीरे सत्याग्रह-संग्रामकी तीसरी मंजिलतक पहुँच गया।

१७ अक्तूबर १९४० को सत्याग्रह-संग्राम प्रारंभ हुआ। उस दिन पहले सत्याग्रही श्री विनोबा भावेने यह प्रतिज्ञा दोहराते हुए सत्याग्रह किया—"जन या धनसे ब्रिटेनके युद्ध-प्रयत्नमें सहायता देना गलत है। युद्धका एकमात्र उपचार युद्ध-मात्रका अहिंसात्मक प्रतिरोधके द्वारा मुकाबला करना है।"

इस सत्याग्रहके दूसरे सत्याग्रही पं० जवाहरलाल नेहरू थे, जो ७ नवम्बरको सत्याग्रह करनेवाले थे। परन्तु इससे पूर्व ही वे गिरफ्तार कर लिये गये। लोगोंका विचार था कि प्रथम सत्याग्रही या तो कांग्रेस-अध्यक्ष होंगे या कोई अन्य प्रभावशाली कांग्रेस-नेता होंगे, लेकिन गांधीजीने यह बात छिपाकर नहीं रखी कि विनोबाके सिवा उनमेंसे एक भी आदमी उस श्रेणीमें नहीं आता था। वाणी-स्वातन्त्र्यकी प्राप्तिके लिए चलाये गये आन्दोलनके हेतु प्रथम सत्याग्रहीके रूपमें विनोबा-जैसे व्यक्तिका चुनाव लोगोंको प्रायः मजाक-सा लग रहा था। एक तो इस सत्याग्रहका उद्देश्य ही सीमित था और दूसरे उसका क्षेत्र भी सीमित। फिर इसमें सिर्फ व्यक्तिगत सविनय-भंग ही था, जिसका सूत्रपात एक ऐसे व्यक्तिद्वारा हो रहा था जिसे कार्य-समितिके कई सदस्यतक नहीं जानते थे। गांधीजीकी पैनी नजर ही देशके चालीस करोड़ भारतीयोंमेंसे इस अद्भुत व्यक्तिको चुनकर उठा लायी थी। गांधीजीने लिखा था : "मेरे बाद अहिंसाके सर्वोत्तम प्रतिपादक और उसे समझनेवाले श्री विनोबा ही हैं। वे मूर्तिमान अहिंसा हैं।··· उनमें मेरी अपेक्षा काम करनेकी दृढ़ता अधिक है। ··युद्धके प्रति उनका विरोध विशुद्ध अहिंसासे उत्पन्न

हुआ है। उनमे एक आश्चर्यजनक गुण यह है कि वे बडे मृदुभाषी हैं, खासकर जब कि कही जानेवाली बातें बडी कटु हो। वे रचनात्मक कार्यक्रममे इतने व्यस्त रहे कि राजनीतिके रगमचपर कभी लोगोंके सामने आये ही नही। वे शोहरतके खिलाफ थे और हमेशा उससे बचते रहे।" गाधीजीकी दृष्टिमे वे "प्रिय, आदरणीय और आदर्शवादी मित्र, आदरणीय सहयोगी और आदर्श सत्याग्रही थे।"

विनोबाकी गिरफ्तारीके बाद सत्याग्रह करनेकी दूसरी बारी प० जवाहरलाल-जीकी थी। उन्हें सत्याग्रह करनेसे पूर्व ही गिरफ्तार करके चार साल कैदकी सजा भी सुना दी गयी।

नवम्बरके मध्यमे आन्दोलनका दूसरा चरण शुरू हुआ। तबतक सरदार पटेल तथा कई प्रमुख काग्रेस-नेता गिरफ्तार किये जा चुके थे। इसका नाम गाधीजी ने 'प्रतिनिधि सत्याग्रह' रखा था। इसमे भाग लेनेके लिए काग्रेसकी कार्य-समिति, महासमिति और केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौंसिलोंके काग्रेसी सदस्योंमेसे सत्याग्रहियो-का चुनाव किया गया था। साल समाप्त होते-होते चार सौ काग्रेसी विधायक जेलोमे थे।

जनवरी १९४१ मे व्यक्तिगत सत्याग्रहने तीसरे चरणमे प्रवेश किया। इस बार सत्याग्रहियोकी सूचियाँ स्थानीय काग्रेस-कमेटियाँ बनाती थी। गाधीजी उन्हें स्वीकृति देते थे। अप्रैल १९४१ मे जब आन्दोलनका चौथा चरण प्रारम्भ हुआ तो उसमे साधारण काग्रेस-जनोको भी भाग लेनेकी अनुमति दे दी गयी।

१५ मई १९४१ तक सरकारी सूचनाओंके अनुसार पच्चीस हजारसे अधिक सत्याग्रही जेलोमे सजा काट रहे थे। आन्दोलन इतना अनूठा और शान्त था कि देशमे एकाध स्थानको छोडकर न तो कही कोई उत्तेजनाकी कोई घटना घटी और न कही वातावरणमें ही कोई तनाव नजर आया। उस समय गाधीजीने कहा था : "जन आन्दोलनका न तो कोई औचित्य है, और न वातावरण ही, यह तो सरकारको जान-बूझकर परेशान करना होगा और साथ ही अहिंसाका भग भी।"

जो लोग उग्र भावनाओ और जोश-खरोशके हिमायती थे, वे कहते थे कि व्यक्तिगत सत्याग्रहका युद्धपर क्या प्रभाव पडनेवाला है। गाधीजीका उत्तर था कि सत्याग्रहका उद्देश्य युद्ध-प्रयत्नोमे बाधा पहुँचाना कदापि नहीं है। फिर भी तत्कालीन ब्रिटिश-सरकारके भारतमत्री श्री एमरीने इस व्यक्तिगत सत्याग्रहका उपेक्षापूर्ण शब्दोमे मजाक उडाया था।

यह वही समय था, जब पर्ल बन्दरगाहपर जापानी आक्रमण प्रारम्भ हो गया था और सरकारको यह आशा होने लगी थी कि युद्ध-प्रयत्नोका कम-से-कम अब तो भारतके जिम्मेदार लोग पूरा समर्थन करेंगे और मदद देंगे। उनकी इस आशाके पीछे जापानके युद्धमे प्रवेश करनेपर उसका भारतके द्वारपर आ खडा हो जाने और उसमे प्रवेश कर लेनेकी आशका थी। सभवत इन्ही विचारोंसे सरकारने

अकस्मात् कांग्रेसके उन सभी राजनैतिक बंदियोंकी रिहाईका फैसला कर लिया, जो व्यक्तिगत सत्याग्रहमे भाग लेकर जेलमे पडे थे या उन्हें नजरबन्द कर लिया गया था। गाधीजीने इस समय जापानियोंके इस नारेकी कि "एशिया सिर्फ एशिया-वासियोंके लिए है" निन्दा की थी। उन्होंने कहा था कि "ब्रिटिश राजको किसी दूसरे परदेशी शासनमे बदलनेके लिए मैं जरा भी तैयार नही हूँ। जिस दुश्मनको मैं नही जानता, उससे तो वही दुश्मन अच्छा जिसे मैं कम-से-कम जानता तो हूँ।" चीनके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेके लिए उन्होंने उस समय जापानी मालके बहिष्कारका भी समर्थन किया था। परन्तु राजनीतिक बंदियोंकी रिहाईका गाधीजीपर कोई खास असर नही हुआ। उन्हें न तो प्रसन्नता हुई, न सरकारके लिए प्रशसाका ही भाव आया।

युद्ध-जात परिस्थितिने ब्रिटिश-सरकारको भी भारतके बारेमे अपने रुखमे पुनर्विचार करनेको प्रेरित किया। उस समय ब्रिटिश प्रधानमत्री श्री चर्चिल थे, जो भारतके हितमे सदैव प्रतिकूलताके लिए प्रसिद्ध थे। भारतीय स्वाधीनताके वे कट्टर विरोधी माने जाते थे। किन्तु परिस्थितियोंने उन्हें भारतीय समस्यापर विचार करनेको मजबूर कर दिया। उन्होंने हाउस आव् कामन्सको सूचना दी कि उनके मत्रिमण्डलने भारतके बारेमें एक सर्वसम्मत निर्णय लिया है, और सर स्टैफर्ड क्रिप्स उसके बारेमे भारतीय नेताओंसे चर्चा करनेके लिए भारत जायेंगे।

२२ मार्च १९४२ को स्टैफर्ड क्रिप्स भारतकी राजधानी नयी दिल्ली पहुँचे। इससे पूर्व भी वे भारत आ चुके थे। वे भारतीयोंकी स्वतंत्रताकी अभिलाषासे अन-भिज्ञ नही थे, भारतके प्रति उनकी सहानुभूति थी, वे भारतीय राजनीतिसे भी सुपरिचित थे। ब्रिटिश-सरकारके जिन प्रस्तावोंको लेकर वे भारत आये थे, वे मोटे रूपमे इस प्रकार थे .

युद्ध समाप्त होते ही प्रान्तीय कौंसिलोंका चुनाव और कौंसिलोंके निम्न सदनो द्वारा विधान-निर्मात्री परिषद्का चुनाव होगा। परिषद्मे रियासतोंके प्रतिनिधि राजाओंद्वारा नामजद होंगे। यह परिषद् 'भारतीय सघ'-सविधान बनायेगी, जिसमे यदि भारतीय सघ चाहे तो उसे ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलसे अलग होनेका भी अधिकार होगा।

परन्तु इसमे ब्रिटिश-सरकारने एक पेंच भी रख दिया था और वह यह कि यदि भारतीय सघमे कोई प्रान्त नये विधानको स्वीकार नही करना चाहे तो उसे तत्कालीन चालू वैधानिक स्थितिको कायम रखनेका पूरा अधिकार होगा।

ब्रिटिश-सरकारके इन सुझावोंको भारतीय नेताओंने एकदम निराशाजनक और निस्सार समझा। अवश्य ही ऊपरसे दीखनेमे ये सुझाव ब्रिटिश-सरकारकी उदारताके द्योतक प्रतीत हो रहे थे, परन्तु एक तो रियासती जनताकी सर्वथा उपेक्षा

करके नरेशोको एकाधिकार दे दिये गये, तथा प्रान्तोको अलग रहनेके अधिकार देकर देशको कई भागोमे बाँट देनेकी इसमे कुचाल थी।

गाधीजीने क्रिप्ससे कहा "यदि आपके यही प्रस्ताव थे तो आपने यहाँ आनेका कष्ट क्यो उठाया ? यदि भारतके सम्बन्धमे आपकी यही योजना है तो मै आपको सलाह दूंगा कि आप अगले ही हवाई जहाजसे ब्रिटेन लौट जायें।"

जवाहरलालजीने क्रिप्स-मिशनके बारेमे ऐसे ही उद्गार प्रकट किये थे। उन्होंने कहा कि "जब मैने उन प्रस्तावोको पहली बार पढा तो मेरा दिल बुरी तरह पैठ-सा गया . ."

देशके विचारशील लोगोको लगने लगा कि श्री जिन्नाकी पाकिस्तानकी माँग, जो एक कल्पना मात्र समझी जाती रही थी, इन प्रस्तावो तथा देशके वातावरणसे एक राजनीतिक सभावनामे बदल रही है।

काग्रेसी नेता क्रिप्स-योजनाके सवैधानिक पक्षसे सहमत नही हो सके, यद्यपि उन्होने भारतकी रक्षा-सम्बन्धी तात्कालिक समस्याओ और सुझावोपर स्टैफर्ड क्रिप्स और वाइसरायसे कई मुलाकातें की।

योजनाको भारतीय नेताओद्वारा स्वीकार नही किये जानेसे सर क्रिप्स असन्तुष्ट हुए और असफलताका सारा दोष उन्होंने गाधीजीके सिर मढ दिया। इग्लैड जाकर भी उन्होंने भारतविरोधी वक्तव्य दिये।

४१. गो-सेवा और जमनालालजी

(१९४१)

समस्त ससारके दुधारू पशुओकी सख्याका चौथाई हिस्सा अकेले भारतमे है। परन्तु दूधकी दृष्टिसे हम अत्यत दरिद्र है।

हिन्दू आमतौरपर 'गोरक्षा' की बात बहुत करते है, परन्तु 'गोसेवा' की उतनी ही उपेक्षा करते है।

एक प्रश्नकर्ताके उत्तरमे गोरक्षाके बारेमे अपने विचार प्रकट करते हुए गाधीजीने सूत्ररूपमें कहा

"गोरक्षाकी भावना मानव-जातिके लिए हिन्दू-धर्मकी एक बडी भेंट है। लेकिन मेरे ये उद्गार गोरक्षाकी मेरी विशिष्ट कल्पनाके अनुसार ही लिये जायें। गोसेवाके विषयका मैने खूब अध्ययन किया है। जितनी गोशालाएँ मैने देखी है, उतनी शायद ही और किसीने देखी हो।

"जो लोग गोवध करते है, वे अज्ञानी है। उन्हे मार डालनेसे उनका अज्ञान दूर नही होगा। उनका अज्ञान मिटानेके लिए सहानुभूति और प्रेमके साथ मित्र

प्रकारका प्रयत्न करनेकी जरूरत है। आर्थिक दृष्टिसे भी गायोंकी कीमत बढाये बिना काम नही चलेगा। गायको जिन्हे चिंता है, उन्हें क्या करना चाहिए?—

१ गायके दूधके उपयोगपर जोर देना और दूसरी तरहका दूध बन्द करना।[1]

२ गायोंके मरे हुए शरीरके सब हिस्से काममें लायें, वे बेकार न जायँ, इस तरहकी कोशिश करना और उसका प्रचार करना।[2]

३. गायकी नस्ल सुधारनेके प्रयत्न करना।[3]

४. गायोंको ज्यादा दूध देनेवाली बनाना, इत्यादि।

'यदि मुझ कोई पूछे कि हिन्दू-धर्मका बड-से-बडा बाह्य स्वरूप क्या है, तो मैं बताऊँगा 'गोरक्षा'। मुझे वर्षोंसे दीख रहा है कि हम इस धर्मको भूल गये हैं। दुनियामे ऐसा कोई देश नही देखा, जहाँ गायके वंशकी हिन्दुस्तान-जैसी लावारिस हालत हो।

"हमारे पिंजरापोलोंकी हालत देखिये। व्यवस्थापकोंकी उदारताके लिए मेरे दिलमे आदर है। मगर उनके प्रबन्धके बारेमे मेरे दिलमे बहुत कम आदर है। मैं नही मानता कि पिंजरापोल गाय या उसके वंशकी रक्षा करते हैं। पिंजरापोल केवल लावारिस जानवरोंको रखने और उन्हें सुखसे मरने देनेके स्थान नही होने चाहिए। पिंजरापोलोंमें मैं आदर्श गाय-बैल देखनेकी आशा रखता हूँ।

---

१ गांधीजीने अपने आश्रमपर केवल गायें ही रखीं। वहाँ गायके ही घीका प्रयोग किया जाता था। आचार्य विनोबाका भी यही आग्रह था। जबतक गायका दूध इतना मिलने नहीं लगा कि उसका घी बनाया जा सके तो उनके आश्रम में घी की जगह अलसी का तेल ही रोटी पर चुपड़ा जाता था।

२ इस बातका प्रयोग भी गांधीजीने वर्धामें गोसेवा चर्मालय खोलकर प्रत्यक्ष करके दिखा दिया। एक ऋग्वेदी ब्राह्मण कार्यकर्ता—श्री वालुंजकरने मरे हुए पशुका चमड़ा उधेड़कर उसके शरीरके प्रत्येक अंगका किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है यह सब सीखकर सारे काम बापूजीके मार्गदर्शनमें शुरू किये और बताया कि गोपालन आर्थिक दृष्टिसे किस प्रकार सफल हो सकता है।

३ नस्ल-सुधारके प्रयोगमें दो बातें आती हैं—अच्छा काफी दूध देनेवाली गाय और जिनकी प्रजा खेतीके लिए बलवान् बछड़े दे सके ऐसे साँड ढूंढ-ढूंढकर इनके संयोगसे गायकी एक नयी [illegible] नस्ल तैयार करना जो दूध भी अधिक दे सके और बलवान् बछड़े भी। धीरजके साथ लम्बे समयतक प्रयोग करनेसे ही इसमें सफलता मिल सकती है।

यह नस्ल-सुधारका काम भी गांधीजीकी गोपुरी गोशालामें सफलतापूर्वक किया गया। दो-[illegible] सेर दूध देनेवाली गाय (गौलाऊ) की सन्तान छह-छह सेर दूध देने लग गयी थी।

"मेरा यह दृढ विश्वास है कि हिन्दुओंका पहला काम अपना ही घर साफ करनेका है। मुझमे शक्ति हो, मुझे समय मिले तो मैं गोरक्षा-मण्डलियोंको पिंजरा-पोलोको सुधारनेमे, पशु-पालन-शास्त्रका ज्ञान जनताको देनेमे, निर्दय हिन्दुओंको अपने जानवरोपर दया करना सिखानेमे और गरीव-से-गरीव बालक और रोगीके पास शुद्ध दूध पहुँचानेमे लगाऊँ। सबसे पहले मैं हिन्दुओसे इन गोरक्षा-मण्डलियोंकी व्यवस्था और प्रत्यक्ष गो-सेवाका भगीरथ कार्य कराऊँ।

"इतना करूँ तभी मुझे अपने मुसलमान भाइयोसे गोवध वन्द करनेके लिए कहनेका हक मिलेगा। इस तरह हमारा धर्म साफ दिखाई देता है। फिर भी जो काम हमे अन्तमे करना है, वह हम पहले करने लग गये है।

"गोरक्षा मुझे मनुष्यके सारे विकासक्रममे सबसे अलौकिक वस्तु मालूम हुई है। 'गाय' का अर्थ मैं मनुष्यसे नीचेकी सारी गूंगी जीवसृष्टि करता हूँ। इसमे गायके वहाने इस तत्त्वद्वारा मनुष्यको सपूर्ण चेतन-सृष्टिके साथ आत्मीयता अनुभव करानेका प्रयत्न है। मुझे तो यह भी स्पष्ट दीखता है कि गायको ही यह देवभाव क्यो प्रदान किया गया होगा। इसलिए कि हिन्दुस्तानमे गाय ही मनुष्यका सबसे सच्चा साथी और सबसे बडा आधार है। गाय ही हिन्दुस्तानकी एक कामधेनु थी। वह सिर्फ दूध ही नही देती, वल्कि हमारी सारी खेतीका आधार-स्तम्भ है। यह तो दया-धर्मकी मूर्तिमती कविता है।

"अब गोरक्षाके प्रश्नपर, हम केवल आर्थिक दृष्टिसे ही विचार करे। गायके दूधके इस अभावने मुझे फिर जाग्रत किया। हिन्दुस्तान-जैसे मुल्कमे, जहाँ जीव-दयाका धर्म पालनेवाले असख्य मनुष्य बसते है और जहाँ गायको माताके समान माननेवाले करोड़ो धर्मात्मा हिन्दू रहते है, वहाँ गायका यह बुरा हाल? वही गायके दूधका अभाव? इसमे दोष किसीका है तो वह हिन्दुओंका है। वह दोष भी जानबूझकर नही, अज्ञानके कारण है।

"हम पिंजरापोलको दूध-भवन बनाकर अच्छे-से-अच्छे पशु पालें और दूध-मक्खन सस्ते भाव वेचें, तो हमारे ढोर सुखी हो, गरीबो और वालकोको शुद्ध और सस्ता दूध-घी मिले और अन्तमे हर गोशाला स्वावलम्वी या लगभग स्वावलम्वी वन जाय। कोई ऐसी शका करेगा कि यह तो व्यापार हुआ। तो उससे मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि धर्म और व्यवहार, दोनो हमेशा विरोधी चीजें नही है। व्यवहार धर्मका विरोधी दीखे तो वह त्याज्य है। इसी प्रकार धर्मकी कसौटी भी तभी होती है, जब वह व्यवहारमे पूरा उतरे। हाँ, धर्ममे मामूली कार्यकुशलतासे अधिककी जरूरत होती है, क्योंकि विवेक, विचार वगैरह गुणोके विना धर्मका पालन असम्भव है। मेरे विचारसे गोरक्षाका प्रश्न स्वराज्यके प्रश्नमे छोटा नहीं है। कई बातोंमे मैं इसे स्वराज्यके प्रश्नसे भी वडा मानता हूँ।

"चम्पारनमे एक जगह गोरक्षाके बारेमे अपने विचार सुनाते हुए मैंने कहा था

कि 'जिसे गोरक्षा करनी हो, वह यह बात भूल जाय कि हमें मुसलमानों या ईसाइयों-से गोरक्षा करानी है'।

"मेरे मनमें गोरक्षा कोई सीमित चीज नहीं है। मेरा मनोरथ तो इतना बड़ा है कि सारी पृथ्वीके लोग गायकी रक्षा करने लगें। मगर इसके लिए मुझे पहले अपना ही घर अच्छी तरह साफ करना चाहिए।

"एक पागल-सा आदमी लाहौरमें मुझसे मिलने आया था। गायने दूध देना बन्द कर दिया कि हिन्दू तुरन्त उसे बेच देते हैं—इसका उपाय इसने मुझे बताया। उसने कहा कि ऐसी गायको बेचनेकी जरूरत नहीं। गायसे बैलका काम क्यों न लिया जाय? उसके पास बहुत-सी गायें हैं। वह उन गायोंको मोटी ताजी करके गाड़ी और हलमें जोतता भी है। फिर वे फलती हैं और गोवंश भी बढ़ाती हैं। मैं मानता हूँ कि यह विचारने लायक बात है। कोई इस तरह भी गायकी रक्षा करता हो, तो उसकी निन्दा नहीं होनी चाहिए।

"गायकी रक्षाका अर्थ गाय नामके पशुकी रक्षा नहीं, बल्कि प्राणीमात्र की, जीवमात्रकी रक्षा है। प्राणीमात्रमें मनुष्य तो आ ही जाते हैं, इसलिए गायकी रक्षाके लिए मुसलमान या अंग्रेजोंको मारना अधर्म है। मैं सनातन हिन्दू-धर्मको माननेका दावा करता हूँ और वह धर्म मुझे सिखाता है कि गायको बचानेके लिए मैं अंग्रेज या मुसलमानको नहीं मार सकता। गोरक्षाके मानी प्राणीमात्रकी रक्षा है।

"मैं एक गोशालामें गया। वहाँ गोशालाके बारेमें सारी जानकारी मेरे सामने रखी गयी। मैंने उसमें देखा कि मरे हुए जानवर जैसे-के-तैसे दे दिये जाते हैं। उनके चमड़ेकी कीमत नहीं ली जाती। जैसे-जैसे मैं गहरे पानीमें उतरता जाता हूँ, वैसे-वैसे देखता हूँ कि मरी हुई गायोंके चमड़े वगैरहका उपयोग गोशालाओंमें न करनेसे हमलोग गोहत्याको प्रोत्साहन देते हैं और गोरक्षा करनेकी अपनी शक्तिको घटाते हैं। गो-सेवकोंका एक बड़ा काम तो यह है कि वे मरे हुए जानवरोंके चमड़े-का व्यापार न करनेके सम्बन्धमें फैले हुए वहमको दूर करें। एक मरा हुआ जानवर लगभग एक जिंदा गायको बचाता है। इसके अर्थशास्त्रका मैं अध्ययन कर रहा हूँ। परन्तु अभीतकका अधूरा अध्ययन भी इतना तो साबित कर देता है कि अगर इस चमड़ेका उपयोग हम ठीक ढंगसे नहीं करते तो प्रत्येक मरे हुए जानवरके कम-से-कम दस रुपये हम जरूर खो देते हैं।"

अपनी मृत्युसे पहले श्री जमनालाल बजाजने गो-सेवाको अपना जीवन-कार्य बना लिया था और इसमें वे बहुत शान्ति और सुखका अनुभव करते थे। वे अपनी गायोंके पास ही रहते और स्वयं अपने हाथों उनकी सेवा करते थे। वे एक अत्यन्त व्यवहारकुशल पुरुष थे। प्रत्येक पारमार्थिक कार्यमें यह दृष्टि लगाकर उसे उन्होंने सफलताकी दिशा देनेका प्रयत्न किया। गो-सेवाके बारेमें भी उनकी

अपनी यह धारणा थी कि यदि पाँच वर्षतक इस काममे लगे रहे तो यह प्रवृत्ति [illegible] तरफ काफी असर हो सकती है।

विनोबाकी तरह जमनालालजी भी मानते थे कि प्रत्येक गो-सेवकको गायके ही दूध-घीका सेवन करना चाहिए। जो अगर गायके दूध-घीका सेवन नही करेगा, तो उसकी बात कौन सुनेगा? गाधीजीने जमनालालजीकी मृत्युपर, जो १९४२ की १० फरवरीको हुई, कहा: "दुःख होना तो स्वाभाविक है, क्योकि वही मेरे लिए तो कामधेनु थे। त्यागकी दृष्टिमे उनका अतिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। देशके पशुधनकी रक्षाका काम उन्होने अपने लिए चुना था, और गायको उसका प्रतीक माना था। इस काममे वे इतनी एकाग्रता और लगनके साथ जुट गये कि जिसकी कोई मिसाल नही। उनका सबसे बडा काम गो-सेवाका था। उन्होने इसे तीव्र गतिसे चलाना चाहा, और इतनी तीव्रतासे चलाया कि खुद ही चल बसे! अगर हमें गायको जिन्दा रखना है, तो हमे भी उसकी सेवामे अपने प्राण खोने होगे। उसी तीव्रतासे काम करना होगा, जिस तीव्रतासे जमनालालजीने किया। अगर हम गायको बचा पाये तो हम भी बच जायेंगे।"

जमनालालजीके गो-सेवाके कार्यको हाथमे लेनेका असर वर्धा और उसके आसपासके गाँवोपर काफी अच्छा पडा। गो-सेवा-सघकी स्थापना ता० ९ जनवरी '४२ को हुई और गायके दूधको बढानेकी दृष्टिसे गाय पालनेवाले किसानोको विशेष सहायता दी जाने लगी। यह सहायता उन्ही किसानोको दी जाती थी, जो केवल गाय ही रखते थे। यह नियम इसलिए रखा गया कि जिससे गायके दूधमे मिलावट न हो। वर्धामे गायके दूधका प्रचार इतना बढ गया कि वर्धाके स्टेशनपर दूधके अलावा चाय तथा मिठाइयाँ भी गायके ही दूधकी मिलने लग गयी।

स्व० श्री जमनालालजीके बाद उनकी धर्मपत्नी श्रीमती जानकीदेवी गो-सेवाके कामको उसी लगनसे कर रही है।

४२. भारत छोड़ो

(१९४२)

'करो या मरो!' —गाधीजी

क्रिप्स-मिशनके वापस लौटनेके बाद सपूर्ण वातावरणमे अविश्वास फैल गया था। अग्रेजी हुकूमतकी सदाशयताके प्रति रहा-सहा विश्वास भी समाप्त हो गया। उसके स्थानपर सारे देशमे गहरी निराशा छा गयी। उधर क्रिप्सकी असफलतासे सरकारको भी यह निश्चय हो गया कि गाधीजी और काग्रेस-नेता इस सकटकालमे सरकारकी मदद नही करना चाहते, जब कि जापान भी तेजीसे

भारतकी ओर बढ रहा है। अविश्वासके इस वातावरणमे पारस्परिक तनाव बढता ही रहा।

१४ जुलाई १९४२ को कांग्रेस-कार्यसमितिकी बैठक वर्धामे हुई। इसमे घोषित किया गया कि भारतसे ब्रिटिश-राज्यका तुरन्त अंत होना चाहिए। समितिने माँग की कि भारत स्वतन्त्रताका अर्थात् बराबरीका दर्जा मिलनेपर ही देशकी सुरक्षा आदि कामोमे भी उत्साहपूर्वक हिस्सा ले सकता है। कार्य-समितिने अतमे इन माँगको पुरजोर शब्दोमे रखा कि यदि ब्रिटिश-राज्यको भारतसे तुरन्त हटा लेनेकी इन माँगको स्वीकार नही किया गया, तो महात्मा गाधीके नेतृत्वमे सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन शुरू कर दिया जायगा और यह कि इन फैसलेको मूर्त रूप देने तथा अंतिम निर्णय लेनेके लिए बम्बईमे ७ अगस्त १९४२ को महासमितिकी बैठक बुलायी जाय।

कांग्रेस-कार्यसमितिके उक्त प्रस्तावके बाद वातावरण और भी तनावपूर्ण बन गया। अगस्त ७ को बम्बईमे जब कांग्रेस-महासमितिका अधिवेशन शुरू हुआ तब उत्तेजना शिखरपर थी। देशके कोने-कोनेसे केवल महासमितिके सदस्य ही नही, बल्कि ब्रिटिश भारतके तथा देशी रियासतोके भी सैकडो कार्यकर्ता इस महासमितिके अधिवेशनमे बम्बई पहुँचे थे। उत्सुकता, उत्तेजना और हलचलको देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो यह अखिल भारत कांग्रेस-महासमितिकी बैठक नही, कांग्रेसका खुला अधिवेशन ही है। उपस्थिति लगभग बीस हजार थी। इस बार महात्माजीने देशी नरेशो और वहाँकी जन-प्रतिनिधि संस्थाओके नेताओ और जनतासे भी अपील की थी कि देशकी आजादीके इस महायज्ञमें किसीको भी पीछे नही रहना है। कांग्रेसका इतिहास-प्रसिद्ध "भारत छोडो" प्रस्ताव काफी बडा है। उसका अंतिम भाग इस प्रकार है -

"इस अंतिम क्षणमे विश्व-स्वातन्त्र्यका ध्यान रखते हुए, अ० भा० कांग्रेस कमेटी ब्रिटेन और मित्र-राष्ट्रोसे फिर अपील करना चाहती है। परन्तु वह यह भी अनुभव करती है कि उसे अब राष्ट्रको, एक ऐसी साम्राज्यवादी सरकारके विरुद्ध अपनी इच्छा प्रदर्शित करनेसे रोकनेका कोई अधिकार नहीं है, जो उनपर आधिपत्य जमाये हुए है, और जो उसे अपने तथा मानव-समाजके हितका ध्यान रखते हुए काम करनेसे रोकती है। अत यह कमेटी भारतकी स्वाधीनताके अटल अधिकारका समर्थन करनेके उद्देश्यसे अहिंसात्मक तरीकेसे, और देशव्यापी पैमाने-पर, विशाल सघर्ष चालू करनेकी स्वीकृति देनेका निश्चय करती है, जिससे देशमे गत २२ वर्षोके शान्तिपूर्ण सग्राममे सचित की गयी समस्त अहिंसात्मक शक्तिका उपयोग हो सके। यह सग्राम गाधीजीके नेतृत्वमे होगा। यह कमेटी उनसे प्रार्थना करती है कि वे प्रस्तावित कार्यवाहियोमे राष्ट्रका नेतृत्व करें।"

प्रस्ताव प० जवाहरलालने पेश किया और सरदार पटेलने उसका समर्थन

गाधीजीने जनता हिन्दुस्तानीसे कहा कि "वह अपनेको आजाद समझे। ऐसे दिनोंपर स्वभावत उनके मार्ग-दर्शनके लिए कोई नेता बाहर नही रहेंगे। इसलिए जनताको ही अपना नेता बनकर अपनी जिम्मेदारीको समझकर अपना कार्यक्रम बनाकर युद्धको चलाना होगा।" गाधीजीने समाचार-पत्रो, नरेशो, विद्यार्थियो, अध्यापको, सरकारी कर्मचारियो और अन्य सभी लोगोको यही सदेश दिया

"मै इस लडाईमे आपका नेतृत्व करनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता हूँ, सेनापति अथवा नियत्रकके रूपमे नही, बल्कि आपके तुच्छ सेवकके रूपमे और जो कोई सर्वाधिक सेवा करेगा वही 'मुख्य सेवक' माना जायगा। मै तो आपका मुख्य सेवक हूं।

"आप लोगोको जो भी मुसीबते और कष्ट झेलने पडेगे, मै उनमे आपका हाथ बँटाना चाहता हूं।" गाधीजीने पूछा, "आखिर आज भारतकी आजादीकी माँग करके, काग्रेसने कौन-सा अपराध किया है ?

"मैने काग्रेसको बाजीपर लगा दिया है, वह करेगी या मरेगी। अबकी जो

लड़ाई छिड़ेगी, वह तो सामूहिक लड़ाई होगी। हमारी योजनामें गुप्त कुछ भी नहीं, हमारी तो खुली लड़ाई है।'' कांग्रेसको कुचल डालना सरकारी अफसरोंके लिए नामुमकिन है। हम एक सल्तनतका मुकाबला करने जा रहे हैं। हमारी लड़ाई बिलकुल सीधी लड़ाई होगी। इस बारेमें आप किसी भ्रममें न रहें। दिलमें कोई उलझन न रखें। लुक-छिपकर कोई काम न करें। जो लुक-छिपकर कोई काम करते हैं, उन्हें पछताना पड़ता है।'

"भारत छोड़ो" प्रस्तावने देशके वातावरणको एकदम गरम कर दिया। वाइसराय तो जुलाईके वर्धा-प्रस्ताव से ही चौकन्ना हो गये थे। तभीसे उन्हें यह आशंका हो गयी थी कि सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन शुरू हो जानेपर देशका सामान्य शासन ठप्प होनेके साथ-साथ सारे युद्ध-प्रयत्नोंके खतरेमें पड़ जानेकी आशंका है। इसलिए उन्होंने कड़ाईसे काम लेनेका निर्णय ले लिया था। फिर उन्हें ब्रिटिश-मंत्रिमण्डलके समर्थनका पूरा-पूरा और पक्का विश्वास था।

गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, सरदार आदि कांग्रेसकी कार्य-समितिके सदस्योंको ९ अगस्त १९४२ को बड़े सबेरे ही गिरफ्तार कर लिया गया था। इन गिरफ्तारियोंकी देशमें बड़ी जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। खास तौरसे बंगाल, बिहार, संयुक्तप्रान्त और बम्बईमें जनताने ब्रिटिश हुकूमतके खिलाफ बगावतका झंडा खड़ा कर दिया। डाकघर, थाने, अदालतें, रेलवे-स्टेशन आदि ब्रिटिश राज्यसे सम्बन्धित सभी दफ्तरोंको जलाया जाने लगा। रेलकी पटरियाँ उखाड़ दी गयीं और डिब्बोंको तोड़ा-फोड़ा गया। तार और टेलीफोनके तार काट दिये गये। महासमितिके समक्ष किये गये अपने अंतिम भाषणमें गांधीजीने शुरू की जानेवाली लड़ाईमें लोगोंको अहिंसक रहनेके लिए काफी जोर दिया था, किन्तु सरकारके घनघोर दमनने जनताको इतना क्षुब्ध कर दिया कि वह अपना धैर्य गँवा बैठी। कई स्थानोंपर जनताने अंग्रेजी शासनको ठप्प करके अपनी सरकारें कायम कर छोटे-छोटे टापू बना लिए थे और हुण्डियोंसे लेन-देन शुरू कर दिया था।

गांधीजी बिड़ला-भवनमें ठहरे थे। वे वहीं गिरफ्तार कर लिये गये थे। उन्हें पूनाके आगाखाँ महलमें ले जाकर बंद कर दिया गया।

गांधीजीके आगाखाँ महल (पूना) में बन्द हो जानेके एक सप्ताहके अन्दर ही १५ अगस्त १९४२ को उनके निजी सचिव पुत्रवत् लाडले साथी महादेवभाईका देहान्त हो गया! गांधीजीको इससे कितना बड़ा धक्का लगा होगा, यह कल्पनाके बाहरकी बात है।

गांधीजीके साथ ही देशके सभी बड़े नेता जो बम्बईमें मिल गये, उन्हें बम्बईमें और शेषको अपने प्रान्तमें पहुँचनेपर नजरबन्द कर दिया गया। सारे देशमें विद्रोहकी ज्वाला फैल गयी। न केवल ब्रिटिश भारतमें, प्रत्युत देशी रियासतोंमें भी यह आन्दोलन व्यापक रूपमें चल निकला।

इधर ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकारने देशमे फैली हिंसक कार्यवाहियोके लिए काग्रेस और गाधीजीको दोषी ठहराया। उन्हे बदनाम करनेके उद्देश्यसे सरकार विश्वभरमे धुआंधार प्रचार करने लगी। इसके विरोधमे गाधीजीने पहले बम्बईके गवर्नरको और बादमे वाइसरायको भी पत्र लिखा, किन्तु सरकारने अपने तौर-तरीकोमे कोई परिवर्तन नही किया। फलत गाधीजीने सन् '४३ के फरवरी मासमे विरोध और प्रायश्चित्त-स्वरूप २१ दिनका उपवास शुरू कर दिया।

यह उपवास बापूने बहुत आत्म-शोधनके बाद किया। बापूकी गिरफ्तारीके बाद देशमे काफी तोड-फोड तथा गुप्त रूपसे काम हुए। बापूके कुछ अच्छे अनुयायी भी उनके समर्थक बन गये थे। बापूकी गिरफ्तारी इतनी एकाएक हुई कि उन्होने तत्कालीन वाइसरायसे सख्त शिकायत की कि यदि मुझे मिलनेका अवसर दे दिया जाता तो यह सब ऊधम नही होने पाता। जो कुछ हुआ, उसकी जिम्मेदारी सरकार-पर ही आती थी, फिर भी बापूने अपनेको भी, अपने कुछ साथियोको भी, इसका जिम्मेदार माना और अपनी आत्माकी शाति तथा सन्तोष और अपने अनुयायियोके सही पथ-प्रदर्शन के निमित्त यह उपवास करना ही अपना कर्तव्य-धर्म माना।

उपवासके दरम्यान एक कार्यकर्तासे बात करते हुए बापूने कहा "हमारी शोभा अहिंसाके मार्गपर चलनेमे ही है। हमारे सामने चार, चार सौ या चार हजार आदमियोकी बात नही, चालीस करोड आदमियोकी है। मैने तो सीधा रास्ता दिखाया है।

"मैने अहिंसाका जो मार्ग बताया है, उसपर लोग न चल सकें तो अपने रास्ते चले, पर मेरा नाम इस्तेमाल न करे। मै तो जो था वही हूँ, सरकार भले वह न पहचाने, मगर ईश्वर तो पहचानता है। मेरा मन्त्र 'श्री राम' नही, 'हे राम' है। वह मेरा साक्षी है। मै जानता हूँ कि वह मुझे पहचानेगा।

"यह समझ लो कि यह उपवास किसीके खिलाफ नही है, मै न्याय मांगता हूँ। सरकार किसी निष्पक्ष आदमीको सबूतके साथ मेरे पास भेजे। वह मुझे समझा सके या मै उसे समझा सकूँ तो मुझे उपवास नही करना है। बाहर जाकर मुझे यदि लगे कि इतने सालोमे कुछ भी काम नही हुआ और न होगा, तो मुझे उपवास करके मरना पड़ेगा।

"कोई ऐसा न माने कि बाहर जो चल रहा है, वह सब मुझे पसन्द है। मै यह भी नही कह सकता कि वह अहिंसाकी ढालमे हो रहा है।

"छिपकर काम करना मेरी इच्छाके विरुद्ध है। मुझे तो यह अच्छा लग ही नही सकता। मैने हमेशा छिपी नीतिकी निन्दा की है।

"जब हम पकडे गये तब जवाहरलालने मुझसे गाडीमे पूछा—'अहिंसामे गुप्त नीतिको स्थान है?' मैने कहा—'नही'। मैने पकडे जानेपर कहा था—'पकडे जानेपर मेरी सरदारी पूरी हुई, अब जिसे जो ठीक लगे सो करे। इतना जरूर है

कि अहिंसाकी चहारदीवारीमे रहकर जो लोग बाहर हैं, वे अपनी मतिके अनुसार चलते रहें। मैं समझता हूँ कि तोड-फोडका तरीका हमारे लिए नही है। अहिंसाके नामपर यह सब चले तो ठीक नही।"

बापूका यह उपवास २१ दिनतक चला। उपवास शान्तिके साथ सम्पन्न हुआ।

उसके बाद बापू मलेरियासे बहुत पीडित हुए, तब सरकारने अन्तमे उन्हें ६ मई १९४४ को आगाखाँ महलसे रिहा कर दिया।

रिहाईकी खबर सुनकर सुशीला बहन (नैयर) के मुँहसे निकला—'तीन महीनेकी देर हो गयी। अगर तीन महीना पहले बापूको मलेरिया हो जाता और हम छूट जाते तो शायद आज 'बा' जिन्दा होती।' बापूने कहा था—'यह बिलकुल सम्भव था।' आगाखाँ महल छोडनेमे पहले बापूने 'महादेवभाई' और 'बा' की समाधिपर फूल चढाये। प्रार्थना हुई और उनके बाद सबने कैदी-ढँगसे सन्तरियोको अंतिम बार सलाम किया।

४३. दो अतुल बलिदान : करुण वियोग

(महादेवभाई और बा)

(१९४२–१९४४)

आगाखाँ महलमे बापूकी अमर थाती

'महादेव क्या गया, मेरा पुत्र ही चला गया !'
'बा मुझमें समा गयी थी !' —गाधीजी

बापूकी अंतिम जेल-यात्राने दो अतुल बलिदान ले लिये। एक तो गिरफ्तारीके तुरन्त बाद एक सप्ताहके अन्दर ही १५ अगस्तको उनके सचिव श्री महादेवभाई देसाईका और दूसरा २२ फरवरी १९४४ को पूज्य 'बा' का। दोनो उनके जीवन-साथी और असाधारण शक्तिशाली थे।

श्री महादेवभाई सन् १९१७ मे बापूके साथ हुए, तबसे लेकर बीमारी, जेल या बापूके ही दिये किसी कामके निमित्तसे भले ही वे कभी उनसे दूर रहे हो, अन्यथा वे सदा छायाकी तरह बापूके साथ रहे। ऐसे सचिवका उदाहरण ससारके इतिहासमे मिलना दुर्लभ है। उनका व्यक्तित्व मधुर, आकर्षक और तेजसे युक्त था। अध्ययनशीलता सेवा, जिम्मेदारी, कार्यकुशलता, साथियोके प्रति प्रेम और बापूके प्रति भक्ति, इन सारे गुणोका अद्भुत सम्मेलन उनमे था।

वे स्वय इतने अच्छे लेखक थे और बापूके साथ इतने तन्मय हो गये थे कि 'यग इडिया' या 'हरिजन' पढते समय पाठक जबतक नीचे हस्ताक्षर नही देखता, तबतक अनेक बार यह खयाल नही हो पाता था कि लेख स्वय बापूका है या महादेवभाई का।

उनकी मृत्युपर बापूने बडे करुणाभरे शब्दोमे लिखा

"वह इस विचारका जप करते-करते चला गया कि मै बापूके बाद क्या कर सकता हूँ। बापूसे पहले चला जाऊँ तो अच्छा। मगर उसे तो कहना चाहिए था कि 'नही, मुझे तो जिन्दा रहना है और बापूका काम करना है।' यह दृढ सकल्प उसे मरनेसे रोक भी लेता। मेरे विचारमे महादेवके चरित्रकी सबसे बडी खूबी थी—मौका पडनेपर अपनेको भूलकर शून्यवत् बन जानेकी उसकी शक्ति। जमनालाल, मगनलाल और महादेव इनमेसे हरएक अपने-अपने क्षेत्रमे अनूठे थे। मेरा खयाल है कि उनकी जगह दूसरे नही ले सकते। मगर मै कहता हूँ कि इन तीनोमेसे महादेव मुझमे पूरी तरह खो गया था। मै कह सकता हूँ कि मुझसे अलग उसकी कोई हस्ती ही नही रह गयी थी।

"महादेवकी एक बडी खूबी यह भी थी कि जो काम उसे सौंपा जाता था, उसे करनेके लिए वह सदा तैयार रहता और बडे उत्साहके साथ करता था। इसी तरह वह एक अच्छा लेखक, अच्छा रसोइया और अच्छा कुली भी बन सकता था। महादेव एक गुणी और प्रतिभावान् व्यक्ति था। उसे अनेक काम प्रिय थे और इनमे चरखेका स्थान सर्वोपरि था। वह कलाकार तो था ही।

"वह अनेक सिद्धियोका धनी था। उसके अक्षर बहुत ही सुन्दर थे। मोती ही होते थे। वह भारतीय भाषाओका बडा प्रेमी था। उसके इस गुणका हम सबको अनुकरण करना चाहिए।"

पूज्य बाके बारेमे बापूने लिखा है .

"वे कई बार जेल जा चुकी थी, फिर भी इस बार उनको अच्छा नही लगता था। मेरी इस गिरफ्तारीसे उनको इतने जोरका धक्का लगा कि उनकी अपनी गिरफ्तारी के बाद उन्हें दस्तकी शिकायत हो गयी। सुशीलाको भी उनके साथ ही गिरफ्तार किया गया था। उसने इलाज न किया होता तो इस जेल (आगाखाँ महल) मे आनेसे पहले ही उनकी देह छूट गयी होती। वे यहाँ आ गयी तो मेरी हाजिरीसे उन्हें आश्वासन मिला और उनकी दस्तकी शिकायत दूर हो गयी। लेकिन मन जो खट्टा हुआ सो बना ही रहा। इस प्रकार कष्ट सहते-सहते उसमे उनका देहपात हुआ।

"बाका जबर्दस्त गुण सहज अपनी इच्छासे मुझमे समा जानेका था। मै नही जानता था कि यह गुण उनमे छिपा हुआ है। मेरे शुरू-शुरूके अनुभवके अनुसार तो वे हठीली थी। मेरे दबाव डालनेपर भी वे अपना चाहा ही करती थी। इसके कारण हमारे बीच थोडे समयकी या लम्बी कडवाहट भी रहती। लेकिन जैसे-जैसे

मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे वा खिलती गयी और पुख्ता विचारोके साथ मुझमे—यानी मेरे काममे—समाती गयी । शायद हिन्दुस्तानकी भूमिको यह गुण अधिक-से-अधिक प्रिय है । वामे यह गुण पराकाष्ठाको पहुँच गया था । इसका कारण हमारा ब्रह्मचर्य था । मेरी अपेक्षा वाके लिए वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक सिद्ध हुआ । मेरे साथ रहनेमे वाके लिए मेरे काममे शरीक होनेके सिवा या उससे भिन्न और कुछ रह ही नही गया था । वे अलग रह ही नही सकती थी । अलग रहनेमे उन्हें कोई दिक्कत न होती । लेकिन उन्होंने मित्र बननेपर भी स्त्री और पत्नीके नाते मेरे काममे समा जानेमे ही अपना धर्म माना । इसमे भी वाने मेरी निजी सेवाको अनिवार्य स्थान दिया । इसलिए मरते दमतक उन्होंने मेरी सुविधाकी देखरेखका काम नही छोडा ।"

२२ फरवरी, १९४४ की सन्ध्याको आगाखाँ महलमे वाका अवसान हुआ । २३ फरवरीको उनका अंतिम सस्कार किया गया । सस्कार पूरा हो जानेके बाद बापूजी और दूसरे लोग महलमे वापस आये ।

बापू गहरी वेदना अनुभव कर रहे थे । वे महात्मा थे, ज्ञानी थे, फिर भी अत-मे मनुष्य ही थे । जीवनके अनेक उतार-चढाव और सुख-दु खमे भाग लेनेवाली 'वा' का वियोग बापूको दु खद लगे विना कसे रह सकता था ?

रातको पलग पर लेटे-लेटे बापू वेदनापूर्ण स्वरमे कहने लगे "'वा'के विना मैं अपने जीवनकी कल्पना ही नही कर सकता । मैं चाहता अवश्य था कि 'वा' मेरी गोदमे ही चली जाय, जिससे मुझे इस वातकी चिन्ता न रहे कि मेरे बाद उसका क्या होगा । लेकिन वा मेरे जीवनका अभिन्न अग वन गयी थी । उसके चले जानेसे मेरे जीवनमे जो खालीपन पैदा हो गया है, वह कभी भर नही सकेगा ।"

कुछ क्षण रुककर बापू फिर वोले · "ईश्वरने मेरी भी कैसी परीक्षा ली ! मैंने तुम्हें 'वा'को 'पेनिसिलीन' का इजेक्शन देनेकी अनुमति दे दी होती, तो भी 'वा'जाने-वाली तो थी ही। लेकिन अनुमति देनेसे ईश्वरके प्रति मेरी श्रद्धामे कमी आ जाती। उधर देवदासको समझाकर मैं आया और पेनिसिलीन न देनेका विचार पक्का हुआ और इधर 'वा' जानेकी तैयारी करने लगी—यह भी एक सयोग ही कहा जायगा न ? और 'वा'ने मेरी ही गोदमे शरीर छोडा, इससे मेरे आनन्दका पार नही रहा ।"

एक वार बापू कहने लगे · "'वा' मेरे हाथोमे ही गयी, इसका एक ओर मुझे सतोष है, तो दूसरी ओर वासठसे अधिक वर्षोकी अपनी जीवन-सगिनीको खोकर मैं जैसे स्तब्ध हो गया हूँ ।"

चार-छह दिन बाद 'वा'की बात निकलनेपर बापूने कहा . "'वा' की मृत्यु भव्य थी । मुझे इससे अपार आनन्द होता है । 'वा' के जानेका दु ख मेरे स्वार्थके कारण है । वासठ वर्ष साथ रहनेके बाद 'वा'से अलग होना मुझे दु ख देता है । अधिक-से-अधिक प्रयत्न करनेपर भी 'वा'के स्मरणोको मैं मनसे दूर नही कर पाता।"

कुछ दिन बाद 'बा' को याद करते हुए बापू कहने लगे "'बा' का जाना एक कल्पना-जैसा लगता है। उनके लिए मै तैयार तो था ही। लेकिन जब वह सचमुच चली गयी, तब मुझे कल्पनासे भिन्न एक नया अनुभव हुआ। अब मुझे लगता है कि 'बा' के बिना मैं अपना जीवन ठीकसे नही चला सकता।"

एक बार 'बा' की बात निकलने पर बापू बोले "'बा' मुझमे पूरी तरह समा गयी थी। अपने पतिकी गोदमे इस तरह प्राण छोडनेवाली दूसरी कौन स्त्री है? अंतिम समय 'बा' ने मुझे बुलाया। उस समय मुझे पता नही था कि 'बा' जा रही है। मैं उसे छोडकर घूमने नही गया, यह भी भगवान्का ही काम था।"

'बा' के अवसानके एक माह बाद सध्याके समय घूमते-घूमते बापू कहने लगे "'बा' के जानेमे मुझे जो आघात लगा, वह अभीतक मिटा नही है। बुद्धि कहती है कि 'बा' के लिए इससे अच्छी मृत्यु हो ही नही सकती थी। मेरे मनमे हमेशा यह डर बना रहता था कि मेरे पीछे 'बा' रह जायगी, तो अच्छा नही होगा। मेरे हाथोमे ही वह चली जाय तो मुझे अच्छा लगेगा, क्योकि 'बा' मुझमे पूरी तरह समा गयी थी। मैं शोकमे डूबा रहता हूँ, ऐसी बात भी नही है। यह भी नही कि मैं 'बा' का ही सारे समय विचार किया करता हूँ। परन्तु वास्तवमे मेरी क्या स्थिति है, इसका मैं शब्दोमे वर्णन नही कर सकता।"

४४. खण्डित भारत

(१९४४-'४५)

आगकी लपटोमें एकला चलो रे!

—गुरुदेव

१

सन् १९४४ मे जेलसे रिहाईसे लेकर १९४८ मे मृत्युके समयतक विभाजनके दुखात दृश्य गाधीजीको कचोटते रहे। उन्होने बहुत चाहा कि भारत 'अखण्ड' रहे, पर वह खण्डित होकर ही रहा। उन्होंने श्री जिनासे, जो मुस्लिम-लीगके नेता थे, यहाँतक मान लिया कि सारे भारतको स्वतत्र हो जाने दो, हम सब मिलकर पहले अग्रेजी साम्राज्यको खतम करें, फिर भले ही स्वतन्त्र भारतके अन्दर एक अलग राज्य—पाकिस्तान—रहे। पर जिना साहब तुल गये कि पहले पाकिस्तान-को अलग बन जाने दो। इस शर्तको आप मान लें, तो हम दोनो मिलकर अग्रेजोसे छूट जानेके लिए कह देंगे। जिना भारतको हिन्दू-राष्ट्र और अपने चाहे पाकिस्तान-को मुस्लिम-राष्ट्र मानते थे। वे काग्रेसको हिन्दुओका प्रतिनिधि और मुस्लिम लीगको मुसलमानोका प्रतिनिधि कहा करते थे और गाधीजीके इस दावेको नही मानते थे कि वे समग्र भारतके प्रतिनिधि है।

गांधीजी अन्ततक 'अखण्ड भारत' की मांग करते रहे। परन्तु आगे जाकर जब प० जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेलने यह महसूस किया कि आये दिनके दंगो, उत्पात, मार-काट और इन साम्प्रदायिक उपद्रवोंसे देशकी भीतरी स्थिति भी नहीं सँभाली जा सकती, उधर इस फूटका फायदा उठाकर ब्रिटिश-सरकार मुसलमानोकी पीठ ठोकती रही, तब उन्होंने मजबूर होकर 'पाकिस्तान' अलग बनानेकी मांग मजूर कर ली।

यो गांधीजी और जिनाके बीचकी दीवार थी, दो राष्ट्रोका सिद्धान्त। गांधीजीने जिना साहबसे कहा था "क्या हम दो राष्ट्रोंके प्रश्न-सम्बन्धी मतभेदके बारेमे एकमत नही हो सकते? और फिर इस समस्याको आत्म-निर्णयके आधारपर हल नहीं कर सकते?"

जिनाने कहा "नही! नही!! नहीं!!!"

वे चाहते थे कि अलग होनेके प्रश्नका निपटारा केवल मुसलमानोंके बहुमतसे किया जाय। स्पष्ट है कि जिनाके इस सुझावको गांधीजी नही मान सकते थे।

इस बीच भारतके वाइसराय लार्ड वेवल इग्लैण्ड गये, जहाँ वे दो माहके लगभग ठहरे थे। उन्होंने वापस आते ही मौलाना आजाद और जवाहरलालजी आदि काग्रेस-नेताओंको जेलसे रिहा कर दिया। कुछ ही दिनोंमे शिमलामे देशके राजनीतिज्ञोंका एक सम्मेलन बुलाया गया। किन्तु जिना साहबकी जिदके कारण वह सफल नही हो सका।

वेवल-योजनामे ऐसा विधान था कि वाइसरायकी कौंसिलमे मुसलमानो तथा सवर्ण हिन्दुओका समान अनुपात हो। कांग्रेसको इसपर आपत्ति थी, किन्तु वह यह भी चाहती थी कि समझौतेके लिए इसे मान लेनेमे हर्ज नही है। उसने इस सुझावको मान्य कर लिया, जब कि श्री जिनाने यह आग्रह रखा कि वाइसराय-कौंसिलके तमाम मुसलमान सदस्योंको मुसलमान होनेके नाते वे नामजद करें।

मुस्लिम-भारतका प्रतिनिधि होनेके जिनाके दावेको न तो वाइसराय वेवल ही स्वीकार कर सकते थे, और न गांधीजी ही, जो कि उन दिनो शिमलामे ही थे। शिमला-सम्मेलन असफल रहा। भारत तथा इंग्लैण्डके अधिकारी जिनाके सहयोगके बिना कोई कार्रवाई करनेको तैयार नहीं हुए।

इसी बीच यूरोपमें चलनेवाला युद्ध समाप्त हो गया। इग्लैण्डके चुनावोंमे मजदूर-दलने अनुदार-दलको हरा दिया था और चर्चिलके स्थानपर मजदूर दलीय नेता एटली प्रधानमत्री बन गये थे। इधर पूर्वमे जापानने भी आत्म-समर्पण कर दिया था।

इग्लैण्डके नये चुनावोंके फलस्वरूप भारतमे नये सुधारोकी आशाका उदय होने लगा था। ब्रिटिश-सरकारने पदासीन होते ही घोषणा की कि वह "भारतमे शीघ्र स्वशासनकी स्थापना कराना चाहती है।" १९ सितम्बर १९४५को

एटलीने लन्दनसे और वाइसराय वेवलने नयी दिल्लीसे सरकारके इन निश्चयोकी घोषणा की।

इसी बीच मार्च १९४६ मे 'कैबिनेट-मिशन' भारत आया। उसने यहाँके लोगोको ब्रिटिश-भारतकी सरकारकी सद्भावना और तत्परताका विश्वास दिलानेमे कोई प्रयत्न बाकी नही छोडा। मिशनके तीन मन्त्रियोमे लार्ड पैथिक लारेंस और सर स्टैफर्ड क्रिप्ससे गाधीजी बहुत अच्छी तरह परिचित थे। मिशनने गाधीजीसे कई बार औपचारिक और अनौपचारिक दोनो ही तरहसे सलाह-मशविरा किया। मुख्य प्रश्न भारतकी एकता अथवा विभाजनसे ही सम्बन्धित था। काग्रेस विभाजनके पक्षमे नही थी। परिणाम यह हुआ कि काग्रेस और लीग किसी एक रायपर नही आ सकी। तब १६ मईको कैबिनेट-मिशनने अपनी समझौता-योजना प्रस्तुत की।

इस योजनाकी श्री जिनाने पहले तो आलोचना की, पर बादमे मुस्लिम-लीगने कैबिनेट-मिशनकी यह योजना स्वीकार कर ली और फिर कुछ दिनो बाद उसे वापस ले लिया और सविधान-परिषद्के बहिष्कारका निर्णय किया। साथ ही पाकिस्तान बनानेके लिए सीधी कार्रवाईकी घोषणा कर दी। जिना साहबने कहा कि "अब मुसलमानोने वैधानिक उपायोको छोड दिया है। हमने पिस्तौल तैयार कर ली है और हम उसका इस्तेमाल करना भी जानते है।"

जब देशमे तनाव बढ रहा था, तब केन्द्रमे मजबूत और ताकतवर सरकारका होना बहुत जरूरी था। वाइसराय लार्ड वेवलने प० जवाहरलाल नेहरूको केन्द्रमे अन्तरिम सरकार बनानेके लिए आमन्त्रित किया। नेहरूजीने जिना साहबको भी अतरिम सरकारमे सम्मिलित करना चाहा। पर उन्होने इसका विरोध किया और भर्त्सना की कि "सवर्ण हिन्दुओकी फासिस्ट काग्रेस और उसके पिट्ठू अग्रेजी सगीनोकी मददसे मुसलमानो और अन्य अल्पसख्यकोपर हावी होकर उन्हें दबाना और उनपर हुकूमत करना चाहते है।"

१६ अगस्त १९४६ को मुस्लिम-लीगने जो "सीधी कार्रवाई-दिवस" मनाया, उससे एकके बाद एक बारूदकी ऐसी ढेरियाँ सुलगती गयी कि देशके कोने-कोनेमे ज्वाला भभक पडी और उससे अपार धन-जनकी हानि हुई।

सीधी कार्रवाईके दिन कलकत्तामे भयकर खूँरेजी मच गयी। बगालकी मुस्लिम-लीगी सरकारने अपनी निष्पक्षताका परिचय नही दिया। दगोकी आग बगालके गाँवोतक फैल गयी और मुस्लिम बहुमत-प्रधान जिला नोआखालीमे तो ऐसे नृशस काण्ड हुए, जिनका स्मरण करके भी दिल काँप उठता है। हिन्दुओके घरोको आग लगा दिया जाना, फसलोको लूटकर तहस-नहस कर देना, [illegible], हजारोकी सख्यामे औरतोको उठा ले जाना और [illegible] गाधीजीका दिल थर्रा उठा। [illegible] और वे नोआखालीकी आगमे कूद पडे।

२

गांधीजी उन दिनो दिल्लीमे थे। नोआखालीमे स्त्रियोंपर किये गये अत्याचारोंके समाचारोंने उन्हें अत्यधिक व्यथित कर दिया। सारा कार्यक्रम रद्द करके वे वहाँ जानेको तैयार हुए। मित्रोंने उन्हें रोकना चाहा। उनका स्वास्थ्य ठीक नही था। महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मसलोपर परामर्शके लिए दिल्लीमे उनकी आवश्यकता थी, परन्तु गांधीजीने किसीकी नही सुनी। उन्होंने कहा "मैं नही जानता कि वहाँ जाकर क्या कर पाऊँगा, परन्तु वहाँ गये वगैर मुझे शान्ति नही मिलेगी।"

दगोंसे कलकत्तेकी क्षत-विक्षत दशा देखकर बापूकी छाती बैठने लगी थी। पूर्वी बगालमे भय, घृणा और हिंसाका बोलवाला था। उन्होंने अपने एक वक्तव्यमें कहा "मैं सचाईका पता नही लगा सकता। पारस्परिक अविश्वासकी कोई सीमा नही है। पुराने रिश्ते और दोस्तियाँ सब खत्म हो गयी। साठ वर्षतक मेरे जीवनके आधार बने रहनेवाले सत्य और अहिंसाकी जैसे आज समाप्ति हो गयी! सत्य और अहिंसासे अधिक अपनी परीक्षाके लिए मैं श्रीरामपुर जा रहा हूँ।"

गांधीजीने अपने साथियोको, जो कि उनके साथ गये थे, गाँवोमे बिखेर दिया। अपने साथ प्रो० निर्मलकुमार वसु, परशुराम तथा मनु गांधीको रखा।

उन्होंने कहा कि वे अपना खाना स्वय पकायेंगे और अपनी मालिश स्वय करेंगे। मित्रोंने सलाह दी कि मुसलमानोसे सुरक्षाके लिए पुलिस उनके साथ रहनी चाहिए और चिकित्सा तथा स्वास्थ्यकी दृष्टिसे डा० सुशीला नैयर भी उनके साथ रहे। लेकिन गांधीजीने मना किया। उन्होंने कहा "डा० सुशीला, प्यारेलाल, सुचेता कृपालानी, आभा और कनु सब एक-एक गाँवमे बैठ जायँ और अपने प्रेमके उदाहरणसे वहाँकी हिंसाको निर्मूल करें।" प्यारेलाल मलेरियाके शिकार हो गये थे, उन्होंने गाँवसे गांधीजीको लिखकर पूछा कि क्या उनकी देखभालके लिए वे अपनी बहन डा० सुशीलाको बुला लें? गांधीजीने लिखा "जो गाँवोमे जा रहे है, उन्हें इस इरादेसे जाना चाहिए कि जीवित रहेंगे या मर जायेंगे। अगर वे बीमार पडते है, तो उन्हे वही अच्छा होना है या वही मरना है। तभी जानेका कुछ अर्थ होगा। व्यवहारमे इसका मतलब यह होता है कि उन्हे गाँवके उपचारो या प्रकृतिके पचतत्त्वोसे सतुष्ट रहना चाहिए। डा० सुशीलाके पास देखभालके लिए अपना गाँव है। उसकी सेवा अभी हमारे दलके सदस्योंके लिए नही है। वह पूर्वी बगालके ग्रामवासियोंके लिए पहलेसे ही गिरवी रखी जा चुकी है।"

नोआखालीकी यात्रामे गांधीजी उनचास गाँवोंमे घूमे। गाँवमे पहुँचकर वे किसी ग्रामीणकी झोपडीमे और मुख्यत. किसी मुसलमानके यहाँ जाते और कहते कि वह उनको और उनके साथियोको अपने यहाँ ठहरा लें। दुत्कारे जानेपर वे आगे-

की झोपडीमे कोशिश करते। वे स्थानीय फलो तथा सब्जियोपर, और मिल जाता तो बकरीके दूधपर निर्वाह करते। ७ नवबर १९४६ से २ मार्च १९४७ तक उनका यही जीवन-क्रम रहा। इस समय वे सतहत्तर वर्षके हो चुके थे।

रास्ता चलनेमे बापूको कठिनाई होती थी। उनके पाँवोमे बिवाइयाँ फट गयी। परन्तु वे चप्पल बहुत कम पहनते थे। नोआखालीका झगडा उनके कथनानुसार इसलिए पैदा हुआ था कि वे लोगोका अहिंसाके द्वारा इलाज करनेमे सफल नही हुए थे। इसलिए यह उनकी प्रायश्चित्त-यात्रा थी और प्रायश्चित्त करनेवाला यात्री जूते नही पहनता।

विरोधी लोग कभी-कभी रास्तेमे काँचके टुकडे, काँटे और मैला बिखेर देते। गाधीजी सबको बचाकर चलनेका प्रयास करते। कितनी ही जगह दलदलपर बने बाँसो और खपच्चियोसे बने कमजोर पुलोको पार करके उन्हें जाना पडता। एक स्थानपर पाँव फिसल जानेके कारण वे दलदलमे गिरते-गिरते बचे। इस उम्रमे इस प्रकारकी यात्राके लिए भी वे अभ्यस्त हो गये थे। नोआखाली-यात्रामे दर्दनाक घटनाओका एक जाल बिछा हुआ दृष्टिगोचर होता था।

कई सभाओमे गाधीजीको ऐसे लोग मिले, जिन्होने कई लोगोकी हत्याएँ की थी। गाधीजीने उन्हें समझानेकी चेष्टाएँ की और उन्हे माफ कर दिया। उनकी शिष्या अमतुस्सलामने इस यात्रामे एक मुसलमान गाँवमे प्रायश्चित्तस्वरूप पचीस दिनका उपवास करके गाँववालोका दिल फेर दिया।

गाधीजी गाँव-गाँव घूमते रहे। यात्रामे गाधीजीने लोगोको प्रभावित किया, मुसलमानोमे सहानुभूति जागृत की और हिन्दुओमे साहस। स्त्रियोमे आत्मविश्वास-के भाव जागृत हुए।

२ मार्चको गाधीजी नोआखालीसे बिहारके लिए रवाना हो गये। उन्होने फिर किसी दिन आनेका वादा किया। वापस आनेका वादा इसलिए कि उनका मिशन अभी पूरा नही हुआ था।

नोआखालीके हिन्दुओपर होनेवाले अत्याचारका बदला बिहारने मुसलमानोके साथ वही करके दिया। गाधीजीको इससे असह्य वेदना हुई। उन्होने नोआखाली जाते हुए कलकत्तासे ही बिहारके नाम एक सदेश भेजा "मेरे स्वप्नोके बिहारने मुझे झूठा साबित कर दिया है। ऐसा न हो कि जिस बिहारने काग्रेसकी प्रतिष्ठा बढानेमे इतना काम किया है, वही सबसे पहले उसकी कब्र खोदनेवाला बन जाय।" इसके प्रायश्चित्तस्वरूप गाधीजीने घोषणा की कि वे कम-से-कम भोजन करेंगे और यदि पथभ्रष्ट बिहारी लोग नया अध्याय न शुरू करेंगे, तो यह आमरण उपवास बन जायगा।

गाधीजीके बिहार पहुँचनेके पूर्व एक बार स्वय नेहरूजी बिहारका दौरा कर आये थे। वहांकी सरकारके प्रयत्नसे बिहारमे शान्ति स्थापित हो चुकी थी।

जैसा भेद न रहेगा। सब एक जैसे सुखसे रहेंगे और मिल-जुलकर अपने घरका, समाजका और देशका काम चलायेंगे। इसलिए जरूरी था कि सत्ता और धन-सम्पत्तिको एक जगह एकत्र न होने दिया जाय। ऐसे विधि-विधान बने, जिनसे सब अपनी मेहनतका फल न्यायपूर्वक पा सकें। इसके लिए शासनमे जनतन्त्रका तरीका अपनाया गया और अर्थ-व्यवस्थामे समाजवादका आदर्श तय किया गया। गाधीजीने इन दोनो विषयोपर बहुत-कुछ कहा और लिखा है तथा अतमे अपनी वसीयतके तौर पर वे कुछ सुझाव या हिदायतें हमारे लिए लिख गये हैं।

अर्थ-व्यवस्थामे धनी लोगोको गाधीजी अपनी धन-सम्पत्तिका मालिक नही, बल्कि थाती—चौकीदार माननेके लिए कहते रहे। गाधीजीसे पूछा गया कि राज-नीतिक दृष्टिसे हम वैधानिक नियमोमे बँध रहे हैं, तो फिर आर्थिक क्षेत्रमे हम सर-क्षकोकी दयापर क्यो रहें? क्यो न पूंजीपतियोपर भी कानूनका बधन हो?

उत्तरमे गाधीजीने कहा: "मैने ऐसा नही कहा कि आगे जाकर वैधानिक अकुश नही होगा। आखिर कानूनसे उनका भी कमीशन या वेतन बँधेगा। सिर्फ इतना ही है कि मै उनका हनन नही करना चाहता। उनकी शक्तिका उपयोग कर लेना चाहता हूँ। रूसमे पूंजीपतियोका सर्वनाश किया गया और उनसे कहा गया, आपको यहाँ रहना है तो किसान बन जाओ। मगर मै कहता हूँ कि तुम्हे किसान बननें की जरूरत नही। तुम्हारे हृदयका परिवर्तन हो जाय तो मेरे लिए बस है।"

आगे गाधीजी कहते हैं—"मान लो कि कोई पूंजीपति टेढा निकले। वह कहने लगे कि 'जाओ, मै कुछ नही छोडता' तो मैं कहूँगा कि 'तुम्हे छोडना पडेगा—कानूनसे मजबूर होकर छोडना पडेगा।' आखिर पूंजीपति अल्पमतमे हैं। उन्हें बहुमतके सामने झुकना ही है। पूंजीपतियोसे मैं पूंजी छीनना तो नही चाहता—उसका समाजके लिए उपयोग चाहता हूँ।

'राष्ट्रकी सारी सम्पत्तिपर राष्ट्रका हक है और उसीके हितार्थ उनका उपयोग होना आवश्यक है'—इस सिद्धान्तका प्रतिपादन मैने तब किया था, जब कि जमीदारो और राजाओकी सम्पत्तिके सम्बन्धमे समाजवादी सिद्धान्त देशके सामने आया था। समाजवादी इन सुविधा-प्राप्त वर्गोंको खत्म कर देना चाहते हैं, जब कि मैं यह चाहता हूँ कि वे (जमीदार और राजा-महाराजा) अपने लाभ और सम्पत्तिके बावजूद उन लोगोंके समकक्ष बन जायें, जो मेहनत करके रोटी कमाते हैं। मज-दूरोको भी महसूस कराना होगा कि मजदूरका काम करनेकी शक्तिपर जितना अधिकार है, मालदार आदमीका अपनी सम्पत्तिपर उससे भी कम है।

"यदि लोग स्वेच्छासे ट्रस्टियोंकी तरह व्यवहार करने लगें, तो नि:सन्देह मुझे बड़ी खुशी होगी। लेकिन वे यदि ऐसा न करें, तो मेरा खयाल है कि हमें राज्यके द्वारा कम-से-कम हिंसाका आश्रय लेकर उनसे उनकी सम्पत्ति ले लेनी पड़ेगी।

"मैं कहता हूँ कि हम सब एक तरहसे चोर हैं। यदि मैं ऐसी कोई वस्तु लेता हूँ,

पास इतनी सपत्तिका होना, जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताएं पूरी कर सकें।

"आर्थिक समानताकी जड धनियोका ट्रस्टीपन है। इस आदर्शके अनुसार धनिकको अपने पडोसीसे एक कौडी भी ज्यादा रखनेका अधिकार नही है।"

आर्थिक विषमता मिटानेकी दृष्टिसे गाधीजीने रोज पसीनेकी कमाई खानेपर जोर दिया था। ८ घण्टे मेहनत करनेसे जो मिले, उसीपर सबको सतोष माननेकी सलाह वे दिया करते थे, फिर वह चाहे गरीब हो, चाहे अमीर। इससे न तो किसीके पास अधिक धन-सग्रह हो सकता है, न व्यर्थ ही धनके कारण ईर्ष्या-द्वेष या कलह।

आर्थिक समानताके प्रसगमे शरीर-श्रमको उत्पत्तिका मूल स्रोत बताते हुए गाधीजीने कहा है . "इससे अधिक उच्च और अधिक राष्ट्रीय कोई बात मेरे दिमागमे नही आ रही है कि हम सब प्रतिदिन एक घटा वही काम करें, जो गरीब आदमीको करना पडता है और इस तरह हम गरीबोके साथ और उसके जरिये सारी मनुष्य-जातिके साथ तादात्म्य सिद्ध करें।

बाइबिलके, "रोज अपना पसीना बहाकर रोटी कमाओ"—सूत्रको गाधीजीने यज्ञका स्वरूप बताया। उन्होने इस बातपर जोर दिया कि "अगर सब लोग अपनी रोटी कमाने जितना ही श्रम करे, तो भी इस जगत्‌मे सबके लिए पर्याप्त अन्न होगा और सबको काफी फुरसत भी मिलेगी। फुरसतके समय अपने शरीर अथवा बुद्धि द्वारा किये गये कामका लाभ गाधीजीके विचारोके अनुसार जनसाधारणके भलेके लिए किया जानेवाला 'प्रेमका श्रम' होगा। उनके विचारसे इस हालतमे न तो दुनियामे अमीर और गरीब होगे और न कोई स्पृश्य और अस्पृश्य।

"जो लोग भूखो मर रहे है और बेकार है, उनके सामने तो परमेश्वर, योग्य काम और उसकी मजदूरीसे मिलनेवाले अन्नके रूपमे ही प्रकट हो सकता है। गरीबोके लिए तो रोटी ही अध्यात्म है। भूखसे पीडित लाखो-करोडो लोगोपर किसी और चीजका प्रभाव पड नही सकता। कोई दूसरी बात उनके हृदयको छू ही नही सकती। आमतौरपर धनवान्, केवल धनवान् ही क्यो, बल्कि ज्यादातर लोग इस बातका विशेष विचार नही करते कि वे किस तरह पैसा कमाते है। अहिंसक उपायका प्रयोग करते हुए यह विश्वास तो होना ही चाहिए कि कोई आदमी कितना ही पतित क्यो न हो, यदि उसका इलाज कुशलतापूर्वक और सहानुभूतिके साथ किया जाय तो उसे सुधारा जा सकता है।

"यदि समाजका हरएक सदस्य अपनी शक्तियोका उपयोग वैयक्तिक स्वार्थ साधनेके लिए नही, बल्कि सबके कल्याणके लिए करे तो क्या इससे समाजकी सु-समृद्धिमे वृद्धि नही होगी?

"पूंजीपतियोद्वारा पूंजीके दुरुपयोगकी बात लोगोके ध्यानमे आयी, तब समाज-वादका जन्म हुआ, यह खयाल गलत है। जैसा कि मैंने प्रतिपादित किया है, समाज-

४६. विषका प्याला

(१९४९)

राणा भेजा जहर-पियाला !

—मीरा

इस बीच मार्च १९४७ मे लार्ड माउण्टबेटन वेवलके स्थानपर भारतके वाइसराय बनकर दिल्ली आ गये थे। वाइसरायने तार देकर गाधीजीको मिलने बुलाया था। गाधीजी विहार-यात्राका कार्यक्रम छोडकर उनसे दिल्ली जाकर मिल आये थे। माउण्टबेटनने श्री जिनासे भी बात की। उन्होने बँटवारेकी अपनी उसी पुरानी रटको दुहराया।

साम्प्रदायिकताकी भीषण और रोमाचकारी आगको रोकनेके लिए गाधीजीने इन्ही दिनो दो बार—कलकत्तामे और फिर दिल्लीके विडला-हाउसमे—अनशन प्रारम्भ किये थे।

जब गाधीजी वाइसरायसे मिलने विहारसे दिल्ली गये, तो विहार लौटनेसे पूर्व गाधीजी और श्री जिनाका एक सयुक्त वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमे भारतीय जनतासे अपील की गयी थी कि वह साम्प्रदायिक दगो और तोड-फोडके कामोंमे भाग नही ले और हिन्दू-मुसलमान सब प्रेमपूर्वक रहे। उन्होने इस वक्तव्यमे दगो, तोड-फोड और लूटपाटकी निन्दा की और बताया कि राजनीतिक-उद्देश्योंके लिए हिसाका आश्रय अनुचित है। परन्तु पजाब, उत्तर पश्चिम सीमान्त-प्रदेश तथा सिन्धके लीगी कार्यकर्ता इसके विपरीत आचरण करते रहे।

नये वाइसरायने अपनी चतुराईसे भारतकी राजनीतिक स्थितिको भली प्रकार समझ लिया था। वे भारतके प्राय सभी प्रमुख दलोंके प्रतिनिधियो और नेताओंसे मिल चुके थे। मुख्यत गाधीजी, जिना साहब तथा काग्रेसके अधिकृत नेताओंके रुखसे भलीभाँति अवगत हो चुके थे।

उनके ध्यानमे यह बात भी आ गयी थी कि गाधीजी देशके विभाजनके लिए कतई तैयार नही है, चाहे सरकार गठन करनेका काम जिना साहबको ही सौंप दिया जाय। परन्तु जिना साहब विभाजनके सिवा किसी बातके लिए तैयार ही नहीं थे। उधर काग्रेसके नेताओने और काग्रेस-कार्यसमितिने राष्ट्रके विभिन्न क्षेत्रोमे होने-वाले दगो—लूटपाट और रोमाचकारी घटनाओं—को देखते हुए विवश होकर विभाजनकी माँगको मजूर कर लिया था।

काग्रेस-महासमितिने जब भारत-विभाजनकी इस योजनापर विचार किया, तब गाधीजीने विभाजनसे होनेवाले परिणामो और बुराइयोंको समझाते हुए अपनी सम्मति स्पष्ट बतायी। फिर भी काग्रेस-कार्यसमितिके पक्षमे निर्णय कराने

लिए जोर लगाया। सभवत अपनी भावनाओं और विचारोकी कुर्बानीके मूल्य पर भी वे काग्रेस-सगठनमें फूट नहीं पडने देना चाहते थे।

१५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतत्र हो गया। लाहौरमें ली गयी स्वतत्रताकी प्रतिज्ञा पूरी हुई। परन्तु लाहौर ही भारतमें नहीं रहा। भारत स्वतत्र तो हो गया, परन्तु गाधीजीको खण्डित भारतका विषका प्याला पीना पडा और सरहदी गाधीको सदाके लिए भारतसे बहिष्कृत रहना पडा। और देशके इस तरह विभाजनमें कितना बडा नरमेघ हुआ, कितने निर्दोषोको अपनी जानसे हाथ धोना पडा, क्या-क्या पाशविकताएँ हुईं इसकी कल्पना दिलको दहला देती है। विभाजनने लाखोको अपना घर-बार, खेती, जायदाद छोडकर राहके भिखारी बनकर बाहर निकलना पडा। ससारमें आजतक इतनी बडी आबादीको इधर से उधर और उधरसे इधर नहीं जाना पडा था।

गाधीजीने कहा था, "मैं १५ अगस्तके समारोहमें भाग नहीं ले सकता।" उनका कहना था कि "३२ वर्षके कामका शर्मनाक अन्त हो रहा है।" उन्होंने देशमें होनेवाले उपद्रवोके बारेमें कहा कि "मैंने इस विश्वासमें अपनेको धोखा दिया कि जनता अहिंसाके साथ बँधी हुई है।"

कलकत्ताकी हालत पुन विगड गयी थी। साम्प्रदायिक उपद्रव चरम सीमा-पर पहुँच गये थे। अधिकाश मुस्लिम अफसरो एवं पुलिस-अधिकारियोंके पाकिस्तान चले जानेके कारण हिन्दू-उपद्रवकारियोकी बन आयी थी।

१३ अगस्तको गाधीजीने बगालके भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री सुहरावर्दीको साथ लेकर, बेलेघाटामें एक मुसलमान मजदूरके मकानमें रहकर कार्य शुरू किया। यह मुहल्ला उन दिनो असुरक्षित और खतरेसे भरा बताया जाता था। गाधीजीके पहुँचनेके बाद ही कुछ हिन्दू युवक उनके शान्ति-प्रयत्नोके खिलाफ प्रदर्शन करनेको आ धमके। गाधीजीने उन्हें शान्ति-प्रयत्नोका अभिप्राय समझाया और बताया कि भाई-भाईकी लडाईको रोकना किसलिए आवश्यक है और यह भी बताया कि हिंसा और तोड-फोडसे तो किसीका लाभ न होगा, उलटे हिन्दुओंका ही नुकसान होगा। उनकी मधुर प्रेमभरी वाणीसे युवकोका रोष ठडा हो गया। गाधीजीके शान्ति-प्रयासोसे कलकत्तेकी हालतमे रातो-रात परिवर्तन हो गया। दगे रुक गये, आजादीकी अगवानीका दिन १४ अगस्त दोनो कौमोने संयुक्त रूपसे साथ मिलकर मनाया। हिन्दू और मुसलमान निर्भय होकर सड़कोपर निकल आये। परस्पर गले मिले और आजादीका उत्सव मनाने लगे।

इन्हीं दिनो पंजाबके भीषण साम्प्रदायिक दंगोकी खबरोंसे सारे देशमें आतक फैल गया। इन खबरोंने गाधीजीको पुन: धक्का पहुँचा। वे बडे चिन्तित और व्यथित हो गये। वे पजाब जानेकी तैयारी करने लगे और जवाहरलालजीकी सूचनाकी प्रतीक्षा करने लगे। कलकत्तामें गाधीजीके शान्ति-प्रयत्नोंसे शान्तिका

वातावरण बन गया था। उनकी १८ अगस्तकी एक आमसभामे ५ लाख व्यक्तियोकी उपस्थिति और शान्तिपूर्वक सभाका हो जाना शान्तिका एक ज्वलन्त उदाहरण थी। परन्तु पजावसे आनेवाले समाचारो और वहाँकी लोमहर्षक घटनाओने यहाँ भी वातावरणमे गर्मी पैदा कर दी। एकाएक ३१ अगस्तकी रातको वेलेघाटामे गाधीजीके निवास-स्थानपर आकर कुछ लोगोने उन्हे घेर लिया और खिडकियोके काँच फोड डाले, लाठी और ईंटोका प्रहार किया। सयोगसे गाधीजीको कोई चोट नही आयी। उपद्रव शुरू होते ही कलकत्तेकी भीतरी बस्तियो और गलियोमे घूमकर गाधीजीने शान्ति-सैनिकोका सगठनकर लोगोको शान्तिके लिए काम करनेका अनुरोध किया।

इन शान्ति-प्रयत्नोके साथ ही गाधीजीने पहली सितम्बरसे कलकत्तामे अनशन शुरू कर दिया। 'जबतक कलकत्तामे शान्ति स्थापित नही होगी, तबतक गाधीजी अपना उपवास नही तोडेंगे'—इस घोषणाने सारे कलकत्तेको हिला दिया। मुसलमानो और हिन्दुओका जोश ठडा हो गया। वे लज्जाके मारे झुक गये। उपद्रवकारियोने आगे होकर गैर-कानूनी हथियारोके कई ट्रक अधिकारियोके पास जाकर जमा करा दिये। वे गाधीजीकी मौतका कलक अपनेपर लेनेकी हिम्मत नही कर सके थे। दोनो कौमोके नेताओने आपसमे शान्ति बनाये रखनेकी प्रतिज्ञा की और गाधीजीसे प्रार्थना की कि वे अनशन समाप्त कर दे। गाधीजीने इस शर्तपर अपना अनशन तोडा कि फिर शान्ति भग हुई तो वे आमरण अनशन कर देंगे। कलकत्ताके इस उपवासने जादूका काम किया। 'लदन टाइम्स' के सम्वाददाताने उस समय कहा था कि 'जो काम सेनाके कई डिविजनोसे नही हो पाता, उसे एक उपवासने कर दिखाया।' उसके बाद कलकत्ता और बगालमे कोई गडबडी नही हुई।

सचमुच यह कितनी आश्चर्यजनक बात थी कि पजाबमे जहाँ एक लाख सैनिकोकी फौज दगोको दबाने और शान्ति कायम करनेके प्रयत्नोमे व्यस्त थी, वहाँ कुछ भी कामयाबी नही मिल रही थी और गाधीजीने अपने शान्ति-प्रयासमे लाखो लोगोका दिल बदल दिया था। स्वय माउण्टबेटनने कहा था कि जो चीज गाधीजीने केवल आत्मिक बलसे प्राप्त कर ली है, उसे चार फौजी डिवीजन भी बल-प्रयोगसे हासिल नही कर सकते थे।

कलकत्ता और बगालमे वातावरण अब शान्त था। गाधीजी इन दिनो अत्यधिक दुर्बल और कमजोर हो चुके थे। उन्हें अपने शान्ति-मिशनका काम चालू रखना था। इसी हालतमे वे अपनी पजाब-यात्राके लिए चल पडे।

इस तरह कहना होगा कि कायदे-आजम जिनाने धमकियो और उपद्रवोके बलपर पाकिस्तान ले लिया और गाधीजीका अखण्ड भारतका स्वप्न नष्ट-भ्रष्ट हो गया। वे हलाहल पीकर रह गये।

४७. शराब और नशा-निषेध

(१९४७)

'बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ।'

(बुद्धिनाश विनाश है ।)—गीता

कांग्रेसने आरम्भसे ही शराबबन्दीकी ओर ध्यान दिया है । उसने अपने एक प्रस्तावद्वारा सरकारका ध्यान दिलाया था ।

गांधीजीने बहुत पहलेसे ही शराबबन्दीको अपने कार्यक्रमका खास अंग बनाया था । वे प्रारम्भसे ही इसपर पूरा जोर देते थे । असहयोग आन्दोलनके समयमे ही शराबकी दूकानोंपर धरना देनेका उनका कार्यक्रम था । गांधीजी शराबको देशके विकासके लिए बहुत बडा रोडा और नैतिक दृष्टिसे भयंकर पाप मानते थे । वे कहते थे कि राष्ट्रकी आजादीके बाद राष्ट्रसेवकोंका प्राथमिक कर्तव्य है, शराब-बन्दी । प्रान्तोंमे जब स्थानीय सरकारें बनी थी तभी कांग्रेसने तीन वर्षमे शराबबंदी कर देनेका अपना कार्यक्रम बनाया था । गांधीजीने मन्त्रिमण्डलोंको चेतावनी देते हुए इस बारेमे उनको इस कर्तव्यके बारेमे सावधान किया था । वे लिखते हैं

"कांग्रेसी-प्रान्तोंमे मद्यनिषेधका काम उस तरह नही हो रहा है, जैसा कि सोचा गया था । इसमे मन्त्रियोंका शायद कोई कसूर नही है, क्योंकि इसके लिए लोकमत उतना जोरदार नही है, न कांग्रेसमत ही प्रबल है । कांग्रेसजन इस बातको महसूस करते हुए नही मालूम पडते है कि मद्यनिषेधसे लाखों आदमियोंको नयी जिन्दगी हासिल होगी, इससे उन्हें ठोस रूपमे नया नैतिक और भौतिक बल प्राप्त होगा । इस बातको वे महसूस नहीं करते कि मद्य-निषेधसे कांग्रेसको ऐसी प्रतिष्ठा और इज्जत मिलेगी, जैसी और किसी कामसे शायद ही मिले । वे यह नही देखते कि मद्य-निषेधके कानून तोडनेवालोंपर मुकदमे चलाना और जनसाधारणके साथ हिल-मिल जाना इस बातके दृढ निश्चयका द्योतक होगा कि शराबखोरीकी आमदनीसे सरकार कोई वास्ता नही रखना चाहती । और तो और, राजाजी जैसे मद्य-निषेधके पक्के हिमायतीने भी इतना साहस नही किया कि शराबसे होनेवाली आमदनी शराबखोरीकी बुराई दूर करनेमे ही लगाते । मेरे खयालमे इस विषयमे वे जरूरतसे ज्यादा सावधान साबित हुए हैं । कांग्रेसजनोंने यह सीखा है कि आजादी हासिल करनेके लिए कोई भी कीमत चुकाना महँगा नही है, लेकिन अगर हम शराब और नशेबाजीके शिकार बने रहे, तो हमारी आजादी, खाली गुलामोंकी आजादी होगी। तमाम सूबोंमे पूर्ण मद्य-निषेध करनेके लिए कोई भी कीमत क्या बहुत ज्यादा है ?

'इतनेपर भी हम देखते हैं कि मन्त्री लोग मद्य-निषेधके कार्यक्रम पूरे बनियापनकी भावना लेकर बना रहे है। उनसे होनेवाले घाटेका उन्हें ध्यान

रहता है। मुझे ताज्जुब होता है कि अगर सभी शराबी और अफीमची एकाएक शराब और अफीमका परित्याग कर दें, तो वे क्या करेंगे? शायद यह जवाब दिया जाय कि उस हालतमे कुछ-न-कुछ प्रबन्ध तो वे करेंगे ही। तब अभीसे और खुद ही वे ऐसा प्रबध क्यो नही कर डालते? अच्छाई तो निस्सन्देह किसी कामको स्वेच्छा-पूर्वक करनेमे ही है, मजबूरन करनेमे नही। यह याद रखना चाहिए कि बिहारके भूकम्पमे सालाना आमदनीसे ज्यादा नुकसान हो जानेपर भी बिहारकी सरकारका काम रुक नही गया था। जब अकाल और बाढोसे लोगोका नाश होकर सरकारी आमदनीमे कमी पडती है, तब हिन्दुस्तानभरकी सरकारे क्या करती है? मैं तो यही मानता हूँ कि काग्रेसी सरकारें आमदनीकी खातिर मद्य-निषेधके काममे देरी करके अपनी प्रतिज्ञाका शब्दोमे चाहे भग न कर रही हो, पर उसका जो भाव था उसका जरूर भग कर रही है।

"नये कर लगाकर सरकारें आमदनी बढा सकती है और उसके लिए उन्हें ईमानदारीके साथ कोशिश भी करनी चाहिए। शराबखोरी शहरोमे बहुत ज्यादा है। अत इन इलाकोमे वे नया कर लगा सकती है। मद्य-निषेधसे उन लोगोको प्रत्यक्ष मदद मिलती है, जिनके कारखाने होते है और उनमे मजदूर काम करते है। ऐसे लोग यानी कारखानोके मालिक निश्चय ही आमदनीकी उस कमीको पूरा कर सकते है। अहमदाबादमे कुछ ही महीने मद्य-निषेधका जो काम हुआ, उससे मालिक-मजदूर दोनोको आर्थिक लाभ हुआ है। इसलिए कोई वजह नहीं कि इस बहुमूल्य सेवाके लिए मालिकोसे क्यो न कुछ वसूल किया जाय? इसी तरह आमदनीके और भी अनेक साधन आसानीसे ढूंढे जा सकते है।

"मैंने तो यह सुझानेमे भी कोई पशोपेश नही किया कि जहाँ अतिरिक्त आयकी कोई असली सूरत न हो, वहाँ भारत-सरकारसे सहायता या कम-से-कम बिना ब्याज कर्ज लेनेकी माँग की जाय।

"कार्य-समितिने पूर्ण मद्य-निषेधके लिए तीन सालका जो समय रखा, उसकी यही वजह थी। वह वक्त तेजीके साथ बीता जा रहा है। हिन्दुस्तानको अगर निश्चित समयके अन्दर इस बुराईसे मुक्त होना है, तो रुपयेकी कमी या आमदनीमे घाटा होनेके भयसे इसमे कोई देरी नही होना चाहिए और अगर इस कार्यक्रमको पूरे उत्साहके साथ चलाया जाय, तो इसमे कोई सन्देह नही कि दूसरे सूबे और रजवाडे भी इसका अनुसरण करेंगे।"

शराबबदीके सबधमे मत्रियोंके कर्तव्यके बारेमे गाधीजीने लिखा था .

"काग्रेसी सरकारोके पीछे लोकमत है। काग्रेस-कार्य-समितिने बहुत सोच-विचारके बाद शराबबदीके सबधमे अपना फर्मान निकाला है। उसपर अमल करने-का तरीका स्वाभाविक तौरपर मत्रिमडलपर छोड दिया गया है। इसलिए मत्री साहसपूर्वक पूरी सफलताकी आशामे अपने कार्यक्रमको अमलमें लानेका प्रयत्न

कर रहे हैं। उनकी स्थिति बहुत कठिन है। किसी-न-किसी दिन उन्हें बम्बईका सवाल हाथमें लेना ही था। शराबबन्दीकी नीतिसे निहित स्वार्थोंको सीधी हानि पहुँचनेका डर है इसलिए उनकी तरफसे सरकारका विरोध तो होगा ही। उन्हें इनका डटके सामना करना पड़ेगा।

"बम्बईके जायदाद-मालिक एक करोड़ रुपये अतिरिक्त करके रूपमें इसलिए नहीं देंगे कि वे पारसी या मुसलमान हैं बल्कि इसलिए कि वे जायदादके मालिक हैं। यह कहना सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि करदाता स्वयं शराब न पीता हुआ शराबियोंको बचानेके लिए कर देगा। वास्तवमें वह तो अपने बच्चोंकी शिक्षाके लिए कर देगा, जो कि अबतक उस शिक्षाके लिए शराबियोंसे लिया जाता था। अतिरिक्त कर शराबको रोकनेवाला होगा, मगर धनी लोगोंने गरीबोंके प्रति जो अन्याय किया है, उसके अनुपातसे यह बहुत थोड़ा होगा। गरीबोंकी कोई श्रेणी नहीं। जाति और धर्मके भेदके विचारको छोड़कर उन्होंने पददलितोंकी अपनी एक श्रेणी बना ली है।

"मंत्रियोंका कर्तव्य स्पष्ट है। उन्हें अपने कार्यक्रमपर अबाधित रूपसे अमल करते चले जाना चाहिए। मद्य-निषेध एक सबसे बड़ा नैतिक सुधार है। पहलेकी सरकारोंने भी इसका जबानी समर्थन किया था, मगर गैरजिम्मेदार होनेके कारण न उनमें साहस था और न उनपर अमल करनेके लिए प्रेरणा ही थी। वे उस आमदनीको छोड़नेके लिए तैयार नहीं थे जिसे कि वे बिना किसी प्रयासके प्राप्त कर सकते थे। इस कलंकित जरियेकी जाँच करनेके लिए वे ठहर नहीं सकते थे।"[१]

प्रार्थना-प्रवचनमें एक दिन गांधीजीने अपना दुःख प्रकट करते हुए सब लोगोंके लिए शराबबन्दी को इस प्रकार आवश्यक बताया :

"अभी एक भाई लिखते हैं कि मैंने हरिजनोंको शराबके बारेमें लिखा था। मैंने तो हरिजनोंके लिए ही नहीं, सबके लिए लिखा था। वे लिखते हैं कि क्या हरिजनोंको शराब छोड़ देनी चाहिए? और फिर फौजी पड़े हैं, धनी लोग पड़े हैं, उनको क्या शराब छोड़नेकी जरूरत नहीं है? सच्ची बात यह है कि यह प्रश्न पूछने लायक नहीं है। धनिक न छोड़ें, फौजी न छोड़ें तो क्या दूसरे भी न छोड़ें? कानून भी न हो कि शराब न पीयें, तो वह धर्म थोड़े हो जाता है? दूसरे पाप करें तो क्या हम भी पाप करें? ऐसा हो नहीं सकता। वे पूछते हैं तो मैं कहूँगा कि इस तरहसे जो शराब पीते हैं, उनको तो शराब छोड़नी ही चाहिए। हरिजनों को, मजदूरोंको समझ नहीं रहती। वे तो शराब पीकर अपना दर्द दूर करना चाहते हैं। वे अपनी कंगाली भी इसीसे भुलाना चाहते हैं। इस तरहसे उनके ऐसा करनेका कुछ सबब हो सकता है। लेकिन धनिकोंको, फौजियोंको शराब पीनेकी क्या जरूरत है? मैं धनिकोंको क्या समझा सकता हूँ? फौजी कहेगा कि शराबके बिना काम कैसे चल सकता है? लेकिन मैं तो फौजको जानता ही नहीं हूँ। मेरे दोस्त भी पड़े हैं जो शराब नहीं पीते हैं। हमारे यहाँ सब पीते हों, ऐसा भी नहीं है। फौजी भी

…व पीते हो, सो भी नही है। अंग्रेजोमे भी ऐसे लोग पडे है जो शराब नही पीते। ऐसा थोडे ही है कि मैं चाहता हूँ कि हरिजन ही शराब छोडे ? मैं तो कहता हूँ कि सबको शराब छोडनी चाहिए। कानूनकी बात तो सबके वास्ते है। कानून थोडे कहता है कि धनिक पी सकते है, और हरिजन नही ?"

देशके आजाद हो जानेके बाद तो गाधीजीने शराबबन्दीपर काफी जोर दिया और कहा कि देशके स्वतंत्र हो जानेके बाद भी देशमे शराब चलती है तो यह देशके लिए शर्मनाक कलक है। उन्होने इस बारेमे ये सुझाव दिये

"इस सुधारके लिए आज सबसे अच्छा मौका है। आज देशमे पचायतका राज है। हिन्दुस्तानके दोनो हिस्सोके साथ-साथ देशी राजा भी इस सुधारके लिए तैयार है। दोनो हिस्सोमे भुखमरी फैली हुई है। न खानेको अनाज मिलता है, न पहननेको कपडा। जब लोग भुखमरी और नगेपनके किनारे खडे हो तब शराब, अफीम वगैरहके बारेमे सोचा भी नही जा सकता। शराब और अफीम पीनेवाले लोग पैसा तो बरबाद करते ही है, साथ ही अपने आपपर काबू भी खो देते हैं। नशेके असरमे आदमी न करने लायक काम भी कर बैठता है। इसलिए हर तरहसे विचारते हुए नशीली चीजोका खाना और पीना बद होना ही चाहिए।

"हम सिर्फ कानून पास करके ही इस बुराईको खतम नही कर सकते। नशा करनेवाले चाहे जहाँसे नशीली चीजें लाकर जरूर ही खायेंगे-पियेंगे। इनके बनाने-वाले और बेचनेवाले काला बाजार बद करनेके लिए एकदम तैयार नही होंगे।

"इसलिए नीचे की तमाम बातें एक साथ की जानी चाहिए ·

१ जरूरी कानून बनाया जाय।
२ लोगोको नशेकी बुराई समझायी जाय।
३ शराबकी दूकानोपर ही सरकारको खाने-पीनेकी निर्दोष चीजोंकी दूकानें कायम करनी चाहिए और वहाँ किताबो, अखबारो और खेलोंके रूपमे मनबहलावके निर्दोष साधन रखने चाहिए।
४ शराब, अफीम वगैरह बेचनेसे जो आमदनी हो, वह सब लोगोंको नशीली चीजें न बरतनेकी बात समझानेमे खर्च की जानी चाहिए।
५ नशीली चीजोकी बिक्रीसे होनेवाली आमदनीको राष्ट्रके बच्चोंकी शिक्षामे या जनताको फायदा पहुँचानेवाले दूसरे कार्योंमें खर्च करना पाप है। सरकारको ऐसी आमदनी राष्ट्र-निर्माणके कामोंमें खर्च करनेका लालच छोडना चाहिए।

"अनुभव यह बताता है कि नशीली चीजोंका खानपान छोडनेवालोंको जो फायदा होता है, उसे सारी प्रजाका फायदा समझना चाहिए। अगर हम इन बुराइयोंको जडसे खतम कर दें तो हमे राष्ट्रकी आमदनी बढानेके दूसरे बहुतसे रास्ते और साधन आसानीसे मिल जायेंगे।"

४८. बापूके सपनेका स्वराज्य

(१९४८)

(आखिरी वसीयत)

हमारे यहाँ भारतमें आज जो हुकूमत चल रही है, उसे 'लोकतन्त्र' ही कहते हैं, परन्तु इस तन्त्रके कई प्रकार विश्वके विभिन्न देशोंमें पाये जाते हैं। हमने कुछ इंग्लैंडकी और कुछ अमरीकाकी तन्त्र-प्रणालीका आधार लेकर अपना जनतन्त्र-संविधान बनाया है। इसे 'संसदीय जनतन्त्र' कहते हैं परन्तु गांधीजी अपने कुछ स्वतन्त्र विचार भी रखते थे। 'हिन्द स्वराज्य' में उन्होंने उसकी रूप-रेखा दी है। समय-समयपर उन्होंने अपनी यात्राओं तथा लेखों-भाषणोंमें भी इसपर काफी प्रकाश डाला है। उनका वह तन्त्र, 'सर्वोदय' कहलाता है। इसकी व्याख्या विनोबाने की है "शोषणरहित शासनमुक्त अहिंसक समाज।' गांधीजी अपनी मृत्युके पूर्व अपनी वसीयतके तौरपर अपने स्वराज्यकी एक रूप-रेखा भी तैयार कर गये थे। इस सम्बन्धमें गांधीजी लिखते हैं:

'मेरे सपनोंका स्वराज्य तो गरीबोंका स्वराज्य होगा। जीवनकी जिन आवश्यकताओंका उपभोग राजा और अमीर लोग करते हैं वही उन्हें भी सुलभ होनी चाहिए इसमें फर्कके लिए स्थान नहीं हो सकता।

'मुझे इस बातमें बिलकुल सन्देह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तबतक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा, जबतक गरीबोंको ये सारी सुविधाएँ देनेकी पूरी व्यवस्था नहीं हो जाती।

'मेरे सपनोंके स्वराज्यमें जाति या धर्मके भेदोंका कोई स्थान नहीं हो सकता। उसपर शिक्षितों या धनवानोंका एकाधिपत्य नहीं होगा। वह स्वराज्य सबके लिए, सबके कल्याणके लिए होगा। सबकी गिनतीमें किसान तो आते ही हैं, किन्तु लूले, लँगड़े, अंधे और भूखसे मरनेवाले लाखों-करोड़ों मेहनतकश मजदूर भी अवश्य आते हैं।

"अगर स्वराज्यका अर्थ हमें सभ्य बनाना और हमारी सभ्यताको अधिक दृष्टिसे शुद्ध तथा मजबूत बनाना न हो तो वह किसी कीमतका नहीं होगा। हमारी सभ्यताका मूल तत्त्व ही यह है कि हम अपने सब कामोंमें, फिर वे निजी हों या सार्वजनिक, नीतिके पालनको सर्वोच्च स्थान देते हैं।

"पूर्ण स्वराज्यकी मेरी कल्पना दूसरे देशोंसे कोई नाता न रखनेवाली स्वतन्त्रता नहीं, बल्कि स्वस्थ और गम्भीर किस्मकी स्वतन्त्रता है। मेरा राष्ट्रप्रेम उग्र तो है, पर वह वर्जनशील नहीं है। उसमें किसी दूसरे राष्ट्र या व्यक्तिको नुकसान

पहुँचानेकी भावना नहीं है। कानूनी सिद्धान्त असलमे नैतिक सिद्धान्त ही है। अपनी सम्पत्तिका उपयोग इस तरह करो कि पडोसीकी सम्पत्तिको कोई हानि नही पहुँचे। यह कानूनी सिद्धान्त एक सनातन सत्यको प्रकट करता है और उसमे मेरा पूरा विश्वास है।

"अहिंसापर आवृत स्वराज्यमे लोगोको अपने अधिकारोका ज्ञान न हो तो कोई बात नही, लेकिन उन्हें अपने कर्तव्योका ज्ञान अवश्य होना चाहिए। हरएक कर्तव्यके साथ उसकी तौलका अधिकार जुडा हुआ होता ही है। और सच्चे अधिकार तो वे ही है, जो अपने कर्तव्योका योग्य पालन करके प्राप्त किये गये हो।

"अधिकारोका सच्चा स्रोत कर्तव्य है। अगर हम सब अपने कर्तव्योका पालन करें, तो अधिकारोको खोजने बहुत दूर नही जाना पडेगा। अगर अपने कर्तव्योका पालन किये बिना हम अधिकारोके पीछे दौडते है, तो वे मृगजलके समान हमसे दूर भागते हैं। हम जितना ज्यादा उनका पीछा करते है, उतने ही ज्यादा वे हमसे दूर भागते हैं।

"मेरी दृष्टिमे राजनीतिक सत्ता अपने आपमे साध्य नही है। वह जीवनके प्रत्येक विभागमे लोगोंके लिए अपनी हालत सुधार सकनेका एक साधन है। राजनीतिक सत्ताका अर्थ है, राष्ट्रीय प्रतिनिधियो द्वारा राष्ट्रीय जीवनका नियमन करनेकी शक्ति। अगर राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाता है कि वह स्वयं अपना नियमन कर ले, तो फिर किसी प्रतिनिधित्वकी आवश्यकता नहीं रह जाती। उस समय ज्ञानपूर्ण अराजकताकी स्थिति हो जाती है। ऐसी स्थितिमें हरएक अपना राजा होता है। वह ऐसे ढंगसे अपनेपर शासन करता है कि अपने पडोसियो-के लिए वह कभी बाधक नही बनता। इसलिए आदर्श व्यवस्थामे कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होती, क्योकि कोई राज्य नही होता। परन्तु जीवनमे आदर्शकी पूरी सिद्धि कभी नही होती। इसीलिए थोरो ने कहा है कि 'जो सबसे कम शासन करे, वही उत्तम सरकार है'।

"मेरा विश्वास है कि सच्चा लोकतन्त्र केवल अहिंसाका ही फल हो सकता है। विश्वसंघकी रचना केवल अहिंसाकी बुनियादपर ही खडी की जा सकती है और ऐसा करनेके लिए हिंसाका पूरी तरह त्याग करना होगा।

"समाजकी मेरी कल्पना यह है कि हम सब समान पैदा हुए हैं अर्थात् हम समान अवसर प्राप्त करनेका हक है। हां, सबकी योग्यता एक-सी नहीं है। यह कुदरती तौरपर असंभव है।

"बुद्धिशाली लोग अधिक कमायेंगे और वे इस कामके लिए अपनी बुद्धिका उपयोग करेंगे।

"जैसे पिताके तमाम कमाऊ बेटोंकी कमाई परिवारके ही खजानेमें जाती है, ठीक वैसे ही उसकी अधिकाश कमाई राज्यकी भलाईमें काम आनी चाहिए।

"मुझे लगता है कि असलमें देखा जाय तो क्या यूरोप और क्या भारत दोनोका एक ही रोग है इसलिए शायद दोनोंके लिए इलाज भी एक ही काम दे सकेगा। यदि सब प्रकारके आडंबरको दूर कर दें तो कहा जायगा कि यूरोपकी जनताकी लूट हिंसाके ही बलपर टिकी हुई है।

"स्वराज्यका अर्थ है, सरकारके नियंत्रणसे स्वतंत्र रहनेका सतत प्रयत्न। फिर वह सरकार विदेशी हो या राष्ट्रीय। अगर जीवन की हर बातकी व्यवस्था और नियमनके लिए सरकारकी ओर ताकते रहें, तब तो स्वराज्य-सरकार-की शामत ही आ जायगी।

"मैं अधिकसे अधिक लोगोंके अधिकसे अधिक हितवाले सिद्धान्तको नही मानता। उसे नग्न रूपमें देखे तो उसका अर्थ यह होता है कि ५१ फीसदी लोगोंके माने गये हितके खातिर ४९ फीसदी लोगोंके हितोंका बलिदान कर दिया जाय। यह सिद्धान्त निर्दय है, और मानव-समाजकी इससे बड़ी हानि हुई है। सब लोगोका अधिकसे अधिक हित करना ही एक सच्चा, गौरवपूर्ण और मानवोचित सिद्धान्त है। और यह सिद्धान्त तभी अमलमें आ सकता है, जब कि मनुष्य अपना स्वार्थ पूरी तरह छोडनेको तैयार हो जाय।"

"राज्य केन्द्रित और संगठित रूपमें हिंसाका प्रतीक है। व्यक्तिके आत्मा होती है, किन्तु चूंकि राज्य एक आत्मा-रहित जड मशीन होता है, इसलिए उससे हिंसा कभी छुड़वायी नही जा सकती। उसका अस्तित्व ही हिंसापर निर्भर है।

"बहुमतके नियमका एक हदतक ही उपयोग है, अर्थात् मनुष्यको तफसीलकी बातोंमे ही बहुमतके सामने झुकना चाहिए। लेकिन बहुमतके चाहे जैसे निर्णयोंके लिए अपनेको अनुकूल बनानेका अर्थ गुलामी होगा। लोकतंत्रके मानी ऐसा राज्य नही, जिसमें लोग भेड़ोंकी तरह व्यवहार करें। लोकतंत्रमें व्यक्तिके मत और कार्यकी स्वतन्त्रताकी सावधानीसे रक्षा की जाती है।

"देशका बँटवारा होते हुए भी, राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा तैयार किये गये साधनोंके जरिए, हिन्दुस्तानको आजादी मिलनेके कारण मौजूदा स्वरूपवाली कांग्रेसका काम अब खत्म हुआ। यानी प्रचारके वाहन और धारासभाकी प्रवृत्ति चलानेवाले तंत्रके नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गयी है। शहरों और कस्बोंसे भिन्न उसके सात लाख गाँवोकी दृष्टिसे हिन्दुस्तानका सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है। लोकशाहीके ध्येयकी तरफ हिन्दुस्तानकी प्रगतिके दरमियान फौजी सत्तापर मुल्की सत्ताको प्रधानता देनेकी लडाई अनि-वार्य है। कांग्रेसको हमें राजनीतिक पार्टियो और साम्प्रदायिक संस्थाओंके साथ की गदी होडसे बचाना चाहिए। इन और ऐसे ही दूसरे कारणोंसे अखिल भारत कांग्रेस-कमेटी नीचे दिये हुए नियमोंके मुताबिक अपनी मौजूदा संस्थाको तोडने

और 'लोक-सेवक-सघ'के रूपमे प्रकट होनेका निश्चय करे। जरूरतके मुताबिक इन नियमोंमे फेरफार करनेका इस सघ को अधिकार रहेगा।

"गाँववाले या गाँववालो-जैसी मनोवृत्तिवाले पाँच बालिग मर्दों या औरतोकी बनी हुई एक पचायत एक इकाई बनेगी।

"पास-पासकी ऐसी हर दो पचायतोकी, उन्हींमेसे चुने हुए एक नेताकी रह-नुमाईमे, एक काम करनेवाली पार्टी बनेगी।

"जब ऐसी १०० पचायतें बन जायँ, तब पहले दर्जेके पचास नेता अपनेमे-से दूसरे दर्जेका एक नेता चुनें और इस तरह पहले दर्जेके नेता दूसरे दर्जेके नेताके तत्त्वावधानमे काम करे। दो सौ पचायतोके ऐसे जोड कायम करना तबतक जारी रखा जाय, जबतक कि वे पूरे हिन्दुस्तानको न ढँक लें। बादमे कायम की गयी पचायतोका हरएक समूह पहलेकी तरह दूसरे दर्जेका नेता चुनता जाय। दूसरे दर्जेके नेता सारे हिन्दुस्तानके लिए सम्मिलित रीतिसे काम करें और अपने-अपने प्रदेशोंमे अलग-अलग काम करे। जब जरूरत महसूस हो तब दूसरे दर्जेके नेता अपनेमेसे एक मुखिया चुनें, जो चुननेवाले चाहे तबतक सब समूहोको व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करें।

"प्रान्तो या जिलोकी अतिम रचना अभी तय न होनेसे सेवकोके इस समूहको प्रान्तीय या जिला-समितियोमे बाँटनेकी कोशिश नही की गयी, और किसी भी वक्त बनाये हुए ऐसे समूहको सारे हिन्दुस्तानमे काम करनेका अधिकार रहेगा। सेवकोके इस समुदायको अधिकार या सत्ता अपने उन स्वामियोसे यानी सारे हिन्दुस्तानकी प्रजासे मिलती है, जिसकी उन्होंने अपनी इच्छासे और होशियारीसे सेवा की।

१. हरएक सेवक अपने हाथो कते हुए सूतकी या चरखा-सघ द्वारा प्रमाणित खादी हमेशा पहननेवाला होना चाहिए। अगर वह हिन्दू है तो उसे अपनेमेसे और अपने परिवारमेसे हर किस्मकी छुआछूत दूर करनी चाहिए और जाति-योके बीच एकताके, सब धर्मोंके प्रति समभावके, और जाति, धर्म या स्त्री-पुरुषके किस भेदभावके बिना सबके लिए समान अवसर और दर्जेके आदर्शमे विश्वास रखनेवाला होना चाहिए।
२ अपने क्षेत्रमे उसे हरएक गाँववालेके निजी ससर्गमे रहना चाहिए।
३. गाँववालोमेसे वह कार्यकर्ता चुनेगा और उन्हें तालीम देगा। इन सबका वह रजिस्टर रखेगा।
४ वह अपने रोजानाके कामका लेखा रखेगा।
५. वह गाँवोको इस तरह सगठित करेगा कि वे अपनी खेती और गृह-उद्योगो-द्वारा स्वय-पूर्ण और स्वावलम्बी बनें।
६. गाँववालोको वह सफाई और तन्दुरुस्तीकी तालीम देगा और उनकी बीमारी और रोगोको रोकनेके लिए सारे उपाय काममे लायेगा।

७ हिन्दुस्तानी तालीमी संघकी नीतिके मुताबिक नयी तालीमके आधारपर गाँववालोंकी पैदा होनेसे मरनेतक सारी शिक्षाका प्रबन्ध करेगा।

८ जिनके नाम मतदाताओंकी सरकारी सूचीमें न आ पाये हों, उनके नाम वह उसमें दर्ज करायेगा।

९. जिन्होंने मत देनेके अधिकारके लिए जरूरी योग्यता अभी हासिल न की हो, उन्हें उसे हासिल करनेके लिए वह प्रोत्साहन देगा।

१० ऊपर बताये हुए और समय-समयपर बढाये हुए मकसद पूरे करनेके लिए, योग्य फर्ज अदा करनेकी दृष्टिसे संघके द्वारा तैयार किये गये नियमोंके मुताबिक वह खुद तालीम लेगा और योग्य बनेगा।

"संघ नीचेकी स्वाधीन संस्थाओंको मान्यता देगा:

१. अखिल भारत चरखा-संघ,
२ अखिल भारत ग्रामोद्योग संघ,
३ हिन्दुस्तानी तालीमी संघ,
४ हरिजन सेवक संघ,
५ गोसेवा संघ।

"संघ अपना मकसद पूरा करनेके लिए गाँववालोंसे और दूसरोंसे चंदा लेगा। गरीब लोगोंका पैसा इकट्ठा करनेपर खास जोर दिया जायगा।"

जाहिर है कि यह वसीयत अभीतक राह देख रही है कि कब इसपर अमल होगा।

४९. हे राम !

(१९४८)

'अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम्'

(मरना हो तो अनायास, जीना हो तो बिना दीनताके।)

ता० २८ जनवरी

राजकुमारी: आजकी प्रार्थना-सभामें भी कोई शोर-गुल तो नहीं हुआ था?

गांधीजी: नहीं, परन्तु इस सवालका मतलब यह तो नहीं कि तुम मेरे लिए चिन्ता कर रही हो? अगर मुझे किसी पागल आदमीकी गोलीसे मरना है तो मेरे दिलमें भगवान् हो और मुँहपर मुस्कराहट। और तुम मुझे वचन दो कि अगर कहीं ऐसा हुआ तो तुम्हारी आँखोंसे एक भी आँसू नहीं टपकेगा।

ता० २९ जनवरी

पूरा दिन-भर वे इतना काम करते रहे कि शामको बहुत थक गये थे। उनका सिर घूम रहा था। फिर भी "लोक सेवक संघ" के रूपमे कांग्रेसके नया विधान (अपनी वसीयत) की ओर इशारा करते हुए बोले "मुझे इसे तो आज पूरा कर ही लेना चाहिए।"

सोनेके लिए वे सवा नौ बजे उठे। बहुत चिंतित थे। उठे और मनुसे—

'है बहारे बाग दुनिया चंद रोज
देख लो इसका तमाशा चन्द रोज!'

कहते हुए बिस्तरपर लेट गये।

ता० ३० जनवरी, शुक्रवार

नित्यके समान सुबहकी प्रार्थनाके लिए साढे तीन बजे उठे। उसके बाद काममे लग गये। फिर थोडा सो गये। आठ बजे नित्यकी मालिशके लिए तैयार हो गये। प्यारेलालजीके कमरेसे गुजरते हुए कांग्रेसके लिए बनाया नया विधान उन्हे देते हुए कहा, "इसे देख जाओ। मैंने यह लिखा तब दिमागपर बहुत तनाव था। इसमे कहीं कोई बात छूट गयी हो तो इसे ठीक कर लेना।" मालिशसे लौटे तब प्यारेलालजी-से पूछा कि "उसे देख लिया?" फिर मद्रासकी अन्न-समस्यापर एक नोट तैयार करनेके लिए कहते हुए बोले, "अन्न-मंत्रालय बडा चिंतित है। परन्तु मैं कहता हूँ, मद्रास जैसे प्रान्तको ऐसी चिन्ता नही करनी चाहिए। प्रकृतिकी कृपासे वहाँ नारियल और ताडके पेड है, मूंगफली और केले भी खूब होते हैं और भी कितनी ही चीजें पैदा हो सकती है। लोगोंको सिर्फ अपने साधनोंका उपयोग करनेकी कला सीख लेनी है।"

इसके बाद गांधीजी स्नान-घरमे चले गये और वहांसे तरोताजा होकर निकले। भोजन किया, बंगला-भाषाका पाठ याद किया। तबतक प्यारेलालजी वह विधान ठीक करके ले आये। उनको ध्यानसे देखा। इस प्रकार [illegible] उन्होंने यथावत् किये।

दोपहरकी निद्राके बाद कुछ मुलाकाती आये। [illegible] थे। उन्होंने बापूसे कहा "आप वर्धा जा सकते हैं।" बापू [illegible] कुछ समयके लिए ही जा रहा हूँ। हाँ, [illegible] और कोई अकल्पित बात हो गयी, तो नही कह सकता।"

इसके बाद उन्होंने बिशनसे कहा : "बिशन, मेरी महत्त्वपूर्ण चिट्ठियाँ ले आ। मुझे उनके जवाब आज ही दे देने चाहिए। शायद कल मैं रहूँ ही नहीं।"

इसके बाद कुछ सिंधी शरणार्थी आये। उनकी कहानी सुनकर बापू दुखी हुए।

चार बजे शामको सरदार आये। उनसे पूरे एक घण्टा बातचीत होती रही। सरदार और जवाहरलालजीके बीच कुछ मतभेद थे। गांधीजीको इसकी बड़ी चिन्ता थी। वे चाहते थे कि दोनो मिलकर काम करें। प्रार्थनाके बाद जवाहरलालजी और मौलाना अबुलकलाम आजाद इसी सबधमे बातचीत करनेके लिए आनेवाले थे। सरदारसे बात करनेमें देर हो गयी। बापू प्रार्थनाके लिए उठे और प्रार्थनाके स्थानतक पहुँच भी नही पाये थे कि बीचमे ही श्रोताओकी खड़ी भीड़मेसे एक युवक आसपासके लोगोको कुहनीसे अलग करता हुआ बापूके सामने आया, झुका, और प्रणामकी मुद्रामे उसके जुड़े हुए हाथोंमे छिपे पिस्तौलसे ताड-ताडकी तीन आवाजें आयी और बापू 'हे राम' कहते हुए लडखडाकर ढुलक गये।

युवक वही पकड लिया गया। वह हिन्दू ही था और ऐसे विचारका माननेवाला था जो समझता था कि गाधीजी हिन्दू-समाजको बहुत हानि पहुँचा रहे हैं।

रेडियोका चालू कार्यक्रम एकाएक बन्द हो गया और क्षणभरमे बापूके खूनके समाचार दसो दिशाओमे फैल गया! ससार सन्न रह गया। समाचार सुननेवालोको अपने कानोपर विश्वास नहीं हो रहा था वे कि क्या सुन रहे है। देश शोकमे डूब गया। राष्ट्रोंने अपने झण्डे झुका दिये। परन्तु कहीं-कहीं मिठाइयाँ भी बाँटी गयी।

कुछेक क्षणोंके बाद रेडियोपर प्रधानमंत्री जवाहरलालजीकी शोकसे परिपूर्ण और काँपती हुई आवाज सुनायी दी :

"हमारे जीवनको प्रभावित करनेवाला प्रकाश-पुज बुझ गया। नहीं, मैं भूल रहा हूँ; क्योंकि इस देशको अबतक जो इतना प्रकाश दे रहा था, वह तेज साधारण नहीं था। वह तो हजार सालके बादतक भी इस देशको उसी प्रकार प्रकाशित करता रहेगा और ससार इसे देखेगा, क्योंकि वह जीते-जागते सत्यकी ही ज्योति थी।"

ससारके कोने-कोनेसे शोक-सदेश हजारोकी सख्यामे दिल्ली पहुँचने लगे। अहिंसाके उस अवतारका शव सजाकर तोपगाडीपर रखा गया। एक विशाल यात्रा निकली, जैसी दिल्लीने कभी देखी नही थी। स्मशान भूमिपर गयी और सम्पूर्ण सैनिक सम्मानके साथ वह अहिंसाकी मूर्ति अग्नि-ज्वालाको समर्पित हो गयी।

गगनगिरा गूँजने लगी :

आइन्स्टीनने कहा : "अगली पुश्तोको विश्वास भी नहीं होगा कि ऐसा भी कोई पुरुष हाड-मांसके रूपमे इस पृथ्वीपर रहा होगा।"

पर्ल बकने कहा : "यह तो दूसरा ईसा क्रूसपर चढ़ा दिया गया।"

"मेरे गुरुदेव, मेरे नेता, मेरे पिताकी आत्मा शांतिमें नहीं बैठे। पिताजी, आप शांतिमें न बैठें। हमें अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रखिये। हम आपके उत्तराधिकारी कहलाते हैं, आपके बेटे-बेटियाँ हैं, आपके सपनोंके नरदान हैं, भारतके भाग्य-विधाता हैं। हमें अपने वचन पूरा करनेको कह दें। नहीं, आप शान्तिमें न बैठें।'

हमारी अधीर विकल वेदना और क्या पुकारेगी ?

बस, अब यहीं हमारी लेखनी रुक जाती है। हमारी आँखोंमें गोलियोंके लाल घाव, उनसे बिखरे लाल-लाल रक्तकण छा रहे हैं और हमारे कानोंमें 'हे राम' की गूंज।।

'हे राम!'

५०. मांगल्यका पुनर्जन्म

आदिकी मनोवस्थाके दर्शन होते हैं। उनमें प्रसंग-प्रसंग पर उनकी हार्दिक भावना, वेदना और मर्मान्तक पीडाकी झलक दिखाई भी देती है।

अन्तमें फिर महान् वेदना-काल आता है जो अन्तके "हे राम" तक चलता है और एक हिन्दू उन्हें इस वेदनासे छुटकारा दिला देता है।

देश आजाद तो हुआ, पर खण्ड-खण्ड होकर! गांधीका स्वप्न "अखण्ड-भारत" टूट गया! हिन्दू-मुस्लिम दंगोंने उनकी सहृदय सद्भावी, निश्छल सर्वोदयी भारतकी आकांक्षासे परिपूरित आत्माके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। कायदे-आजम जिन्ना धमकी-धमकीमें ही पाकिस्तान बना गये! गांधीने सारे जीवनकी एकमात्र मौलिक आकांक्षा "अखण्ड भारत" अधूरी छोड़कर, अपनी आँखोंके सामने चूर-चूर होते देखकर, आँखें मूंद ली। इस वेदनाकी कोई सीमा नहीं, उसे जानने, कहने और सुननेकी किसीके पास शक्ति नहीं।—जिसने हमको इन्सान बनाया, हैवान होकर हमने मिटाया! नोआखालीकी उनकी पद-यात्रा, साम्प्रदायिक द्वेषकी धधकती ज्वालामें अपनेको जीता झोंककर भी एकताकी साध मनमें लिये मर जानेवाले उस वेदना-मूर्ति गांधीका करुणामय चित्र आँखोंके सामनेसे हटता ही नहीं।

सत्याग्रहके आरम्भमें दक्षिण अफ्रीकामें जो प्रसव-वेदना हुई वह अन्तमें अनन्त-गुना बढ़कर बिरला-हाउसमें ३० जनवरीको समाप्त हो गयी। जन्मके पहले प्रसव-वेदना होती है और मृत्युके समय तथा बादमें शोक और व्यथाका काल आता है। गांधीजी कहा करते थे कि मृत्यु नये जीवनका निमन्त्रण है। किसी नये जन्मका पूर्व-प्रसव-काल ही उसे कहना चाहिए। जिस गांधीने हमारे राष्ट्र-जीवनका एक भावी मनोरम स्वप्न देखा, उसके लिए जीवनभर साधना की, घोर तप किया, क्या वह "हे राम" कहकर ही अन्तमें उसे भूल गया? नहीं, प्रकृतिके कण-कणमें, भगवान्की इस सृष्टिके अणु-रेणुमें, उसकी पुकार समा गयी है और जिस प्रकार प्रसव-पीड़ाके अन्तमें हम एक मंगल दृश्य देखनेकी सुकोमल आशा रखते हैं, उसी प्रकार इस घोर अन्धकारमें भी हमें गांधीके इस महान्, अनूठे बलिदानसे भी किसी नये "मंगल-प्रभात" की स्वर्णिम झाँकी देखनेके लिए आशान्वित रहना चाहिए।

गांधीजीका अन्तिम वेदना-काल उनके शरीरके साथ ही भस्मीभूत नहीं हो गया, स्वतन्त्रताके बीससे अधिक वर्ष बाद वह आज भी चल रहा है। वह वेदना आज भारतके प्रत्येक नर-नारीके निराश, व्याकुल, शिकायतभरे स्वरमें अपने-आप मुखरित हो उठती है। हमें आस्था रखनी चाहिए कि इस वेदनासे भारतके मांगल्य-का अवश्य उदय होगा—'गांधीके सपनेका भारत' हमारी आँखोंके सामने आयेगा। इस रूपमें गांधीका पुनर्जन्म अवश्य होगा।

'आज नहीं तो कभी पूर्ण होगी यह आशा?"

'उत्तर-रामचरित' के रचयिता भवभूतिकी शैलीकी जब बहुत आलोचना होने लगी तब उन्होंने बड़े आत्मविश्वाससे कहा था

उत्पत्स्यते कोऽपि समानधर्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

—"कोई परवा नहीं, अभी नहीं तो कभी-न-कभी कोई कद्रदां पैदा होगा ही, क्योंकि कालकी कोई सीमा नहीं और धरती माताका कोई ओर-छोर नहीं है।

'हे राम!'

●

परिशिष्ट

१. बादशाह खान

हरिपुरा-कांग्रेसके बाद ही गांधीजी खान अब्दुल गफ्फारखांके अनुरोधपर सीमान्त प्रान्तकी यात्रापर गये थे। गांधीजीने अपनी इस यात्राका वर्णन करते हुए लिखा है: "खुदाई खिदमतगार चाहे जैसे हो या अतमें वे चाहे जैसे साबित हो, उनके नेताके बारेमें तो, जिसे वे 'बादशाह खान' कहकर खुश होते है, कोई सन्देह नही हो सकता। वह तो असन्दिग्धरूपसे ईश्वर-भीरु पुरुष है। उसकी प्रति-क्षणकी अखण्ड उपस्थितिमें उनकी परम श्रद्धा है और वे बखूबी जानते है कि उनका आंदोलन तभी प्रगति करेगा, जब ईश्वरकी वैसी इच्छा होगी। ईश्वरके इस कार्यमें अपनी सारी आत्माको उँडेलकर परिणामकी वे बहुत ज्यादा फिक्र नही करते। उनके लिए तो यह महसूस करना काफी है कि अहिंसाको पूरे रूपमें स्वीकार किये बगैर पठानोंकी मुक्ति नही। "

यात्राके समय गांधीजीकी सुविधाका बादशाह खानको पर्याप्त खयाल था। गांधीजी लिखते है -

"मुझे एक शब्द खान साहबकी मेजबानीके बारेमें भी जरूर कह देना चाहिए। इस सारे दौरेमें उन्हें इस बातकी बडी ही फिक्र रही कि मुझें जितनी भी सुविधा पहुँचायी जा सकती हो, पहुँचायी जाय। मुझे किसी किस्मकी दिक्कत या कमी न होने देनेके लिए उन्होंने कोई बात उठा नही रखी। मेरी सभी जरूरतोंका वे पहलेसे ही अदाज लगा लिया करते थे और जो भी कुछ उन्होंने किया, दिलसे किया। फरेब या बनावट तो उनमें है ही नही। दिखावेसे तो वे बिलकुल दूर है। तक्षशिलामें जब हम एक-दूसरेसे जुदा हुए, तो हमारी आँखें भर आयी।"

सीमाप्रान्तके पठानोंकी कौम लडाकू कौम है। बदूक तो मानो उनकी जीवन-सगिनी होती है। मरना-मारना उनके लिए खेल है। ऐसे लोगोंको वशमें कर लेना खान साहबका ही काम है और इसका कारण उनकी नि.स्वार्थ सेवा-परायणता, साधुता और अहिंसामें गहरी निष्ठा।

प्रार्थना-प्रवचनमे एक बार गाधीजीने बादशाह खानके बारेमे आखिरी दिनोमें कहा था

"बादशाह खान मेरे दोस्त है, मौलाना आजाद तथा जवाहरलालके महल छोडकर वे मेरी झोपडीमे आकर टिकते हैं। यहाँ वे गोश्त नही माँगते। मेरे साथ ही रोटी, फल लेते है। वे पूरे फकीर है, उनके भाई डा० खान साहब बिना उनकी मददके काम नही चला सकते। हम उन्हें 'सीमान्त गाधी' कहते है, पर वहाँ गाधीको ही कोई नही जानता तो सीमान्त गाधीको कौन जाने? वहाँ तो ये 'बादशाह' कहलाते हैं और जिस झोपडीमे जाइये, वहाँ पठान अपने इस बादशाह-पर आफरीन् हो जाते है।"

२. सत्याग्रह

गाधीजीने दक्षिण अफ्रीकामे सत्याग्रह चलाकर जीवनमे सत्यके प्रयोगको सामूहिक रूपसे समाजमे चलानेका अनुभव और साधना प्राप्त की थी। हिन्दुस्तानमे आनेके बाद उन्होने चम्पारन (विहार) मे निलहा लोगोके कष्ट-निवारणके लिए सत्याग्रह चलाया और उनमे सफलता प्राप्त की। खेडा-सत्याग्रह गुजरातके किसानो-के अकाल-राहत और कर-मुक्तिके लिए था। दोनो सत्याग्रह गाधीजीकी सीधी देखरेखमे चलाये गये थे।

बोरसद-सत्याग्रह

यह सत्याग्रह गाधीजीके जेल चले जानेके कारण उनकी अनुपस्थितिमे सरदार पटेल द्वारा चलाया गया था। सरकार या प्रतिपक्षीके आक्रमण अथवा हिंसाका जवाब नि शस्त्र रहकर हिम्मत और दृढताके साथ स्वय कष्ट सहकर सत्य (सही बात) पर डटे रहनेका ही तो नाम 'सत्याग्रह' है। गाधीजीने अपने साथियोमे सत्याग्रह और सामूहिक रूपसे नि शस्त्र प्रतीकारके भाव जगा दिये थे। वे बीज इस प्रकार बो दिये गये थे कि देशमे सर्वत्र उनके अकुर फूट पडे थे। बोरसदमे जब डाकुओका जोर-जुल्म बढ गया तो सरकारने वहाके लोगोपर सामूहिक कर लगा दिया। यह कर बेरहमीके साथ वसूल किया जाने लगा और लोग इससे घबरा रहे थे। इसी समय सरदार पटेल बोरसद गये। उन्होने सरकारको चुनौती दी और लोगोको दृढ रहने तथा कर न देनेके लिए सगठित रहनेको कहा। सरकारी पुलिस डाकुओसे मिल गयी थी और कई जगह डाकेजनीमे घायल ग्रामीणोपर जो गोलियाँ चलायी गयी थी, वे सरकारी रायफलोकी निकली। इससे सिद्ध हो गया कि डाकुओसे

सरकारी रायफलोंका उपयोग किया है। सरदारने २०० स्वयंसेवक गाँवोंमें रात-दिन चौकी-पहरा देने के लिए तैनात कर दिये। पुलिसवालोंकी डाकुओंसे जो मिली-भगत थीं, उसके चित्र गाँववालोंने ले लिये थे। अर्थात् जब डाकू आते और शोरगुल करते, तो पुलिसवाले बजाय बचाव करनेके खाटोंके नीचे घुस जाया करते। इस तरहके चित्र प्रस्तुत किये जानेपर सचाई सामने आ गयी। परन्तु सरकारी पुलिस ताजीरी-कर वसूल करती ही रही। कर न देनेपर वह सामान कुर्क करती रहती। इसी समय बम्बईके नये गवर्नर आये थे। उन्होंने होम मेम्बरको बोरसदकी सारी स्थितिकी जाँचके लिए भेजा। उसने जाँच की और स्थितिको समझकर उसी समय पुलिस हटा ली। वल्लभभाईके पहुँचनेपर डाकुओंकी सरगर्मी भी समाप्त हो चुकी थी।

गुरुका बाग सत्याग्रह

गुरुका बाग, एक दूसरा सत्याग्रह था, जो गांधीजीकी अनुपस्थितिमें हुआ। पंजाबमें गुरुका बागवाली एक महत्त्वपूर्ण घटना है। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी सिखोंका सुधारक दल था। ये लोग अपने आपको 'अकाली' कहते थे। जो सतनामी सिख थे, वे 'उदासी' कहलाते थे, और गुरुद्वारोंके महन्त इन्हींका पक्ष करते थे। सुधारक सिख गुरुद्वारोंपर दखल करना चाहते थे। और इसके लिए उन्होंने सत्याग्रहका आश्रय लिया था। सिखों जैसी शस्त्र धारण करनेवाली बहादुर कौमके द्वारा निःशस्त्र प्रतीकारका साधन अपना लेना गांधीजीकी ही देन थी। झगडा दोनों दलोंमें 'गुरुका बाग' गुरुद्वारा जमीनके बारेमें था। महन्तकी सहायतापर पुलिस सत्याग्रही अकालियोंपर लाठियाँ बरसाती रही, परन्तु इन लोगोंने सहनशीलताका इतना परिचय दिया कि उनकी प्रशंसा सरकारी अफसरोंतकने की गयी। अन्तमें सर गंगाराम बीचमें पडे और सत्याग्रह समाप्त हो गया।

झण्डा-सत्याग्रह

नागपुरकी पुलिसने १ मई १९२३ को १४४ धाराके अनुसार सिविल लाइन्समें राष्ट्रीय झण्डे समेत जुलूस ले जानेपर रोक लगा दी। स्वयंसेवकोंने कहा: "हमें अधिकार है, जहाँ चाहें झण्डा ले जायेंगे।" बस, गिरफ्तारियाँ और सजाएँ आरम्भ हो गयीं। बातकी बातमें इस घटनाने आन्दोलनका रूप धारण कर लिया और इसे कार्य-समितिने आशीर्वाद दे दिया। फिर महासमितिने ८, ९ और १० जुलाईकी नागपुरवाली बैठकमें कमेटीके आन्दोलनको सफल बनानेके लिए उसकी सहायता करनेका निश्चय किया और साथ ही देशको आवाहन किया कि आगामी १८ तारीखको जो गांधी-दिवस (गांधीजीको सजा सुनानेका दिन) आनेवाला है, उसे 'झण्डा-दिवस' कहकर मनाया जाय। प्रान्तीय-कांग्रेस कमेटियोंसे जन्ता

हुई कि उस दिन जुलूस निकालकर जनता झंडा फहराये। इस समयतक इस सत्याग्रहके सिलसिलेमे सेठ जमनालाल बजाज भी गिरफ्तार हो चुके थे। कमेटीने सेठजीको उनकी सजापर बधाई दी। रु० ३,०००) का जुर्माना न देनेके कारण सेठजीकी मोटर कुर्क कर ली गयी। पर नागपुरमे कोई उसके लिए बोली लगानेवाला न निकला और अन्तमे उसे काठियावाड ले जाया गया।

नागपुरके इस आन्दोलनमे भाग लेनेके लिए कार्य-समिति और महासमितिने देशका जो आह्वान किया था, उसके उत्तरमे देशके कोने-कोनेसे सत्याग्रही आकर गिरफ्तार होने लगे और उन्हें कष्ट भी काफी दिये गये। नागपुरका झण्डा-सत्याग्रह शीघ्र ही एक अखिल भारतीय आन्दोलन हो गया और श्री वल्लभभाई पटेलसे १० जुलाईसे उसकी जिम्मेदारी लेनेका अनुरोध किया गया। तदनुसार श्री वल्लभभाई सत्याग्रहके सचालनके लिए नागपुर पहुँच गये और इसमे उनके बडे भाई श्री विट्ठलभाईने भी सहयोग दिया। इधर देशके कोने-कोनेसे स्वयसेवक भेजे जा रहे थे। सरकारका कहना था कि जुलूसवालोंको इजाजत माँगनी चाहिए। काग्रेस कहती थी कि सडक सबके लिए है। हमे अधिकार है, जहाँ चाहेंगे, बगैर किसी रुकावटके जायेंगे। एक जोरदार आदोलनका निश्चय किया गया। वल्लभभाई पटेलने जनताकी सारी गलतफहमी दूर कर दी और १८ तारीखके लिए जुलूसका मार्ग निश्चित कर दिया। दफा १४४ अभी बदस्तूर लगी हुई थी। यही नही, उसे हाल ही मे दुबारा लगाया गया था। पर इतनेपर भी १८ तारीखको जुलूसको जाने दिया गया। बादमे इस विषयको लेकर खूब हो-हल्ला मचा। अखबारे असबार कहते थे 'सरकारकी जीत हुई, क्योंकि काग्रेसने इजाजतकी दरख्वास्त की, तो काग्रेसका कहना था कि ऐसा कभी नही किया गया और ठीक भी यही था। दिल्ली-काग्रेसने नागपुरके झण्डा-सत्याग्रहके आयोजको और स्वयसेवकोको अपने वीरतापूर्ण बलिदान और कष्ट-सहिष्णुताद्वारा युद्धको अन्तक निबाहने और इस प्रकार अपने देशके गौरवकी रक्षा करनेके लिए हार्दिक बधाई दी।

३. गांधीजी और स्त्री-शक्ति

मीरा प्रेमा सुशीला दो, अमृता मनुडी तथा।
अम्तुस्सलाम ये सातो बापूको धर्म-स्वसा॥

वैदिक कालमे अरुधती नारी-गौरवका प्रतीक थी। उनकी [illegible] कहना! उनको पाकर स्वय वसिष्ठ अपनेको पवित्र मानते थे—'[illegible]।' जनकने उनकी वदना देवी उषाके समान [illegible] है—'[illegible]'

भगवतीम् ।" मैत्रेयीकी योग्यताकी साक्षी बृहदारण्यक देता है। योगवासिष्ठने वर्णित नारी-चरित्र कितना उच्च, कितना उदात्त कैसा पावन और कितना उद्धारक है!

पौराणिक साहित्यने सीता, सावित्री, दमयन्ती, शकुन्तला, द्रौपदीके पावित्र्य, चातुर्य, तेजस्विता और ज्ञानका गुणगान किया है और इतिहासने मीरा, पद्मिनी, मुक्ता, अहिल्या (अहल्या) के नामोंको प्रातः स्मरणीय बना दिया है। आज भी नारी अपने गौरवको भूली नहीं है। इसकी गवाही हमारा अपना पारिवारिक जीवन सारे देशमें दे रहा है। परन्तु नारी-जातिकी वर्तमान दुरवस्था, पिछड़ापन और अज्ञान देखकर गांधीजी बड़ी व्यथाके साथ कहते थे :

"पुरुष-जाति बहुत-सी भूलों और बुराइयोंके लिए जिम्मेदार है। परन्तु उसकी सबसे बड़ी भयकर, दुःखदायी तथा पाशविक भूल नारीके साथ किया गया अन्याय है। इस अन्यायने नारीको बहुत गिराया है। किसने पहले-पहल नारीको 'अबला' कहा? कौन जाने! वह तो त्याग, नम्रता, श्रद्धा, विवेक और स्वेच्छा-पूर्वक कष्ट-सहनकी प्रत्यक्ष मूर्ति है। हाँ, इसका वह ढिंढोरा नहीं पीटती।

"यदि पशुबलका ही नाम बल है, तो निश्चय ही नारीमें पुरुषकी अपेक्षा कम पशुत्व है। लेकिन अगर बलका अर्थ नैतिक बल है तो इस बलमें वह पुरुषकी अपेक्षा इतनी अधिक महान् है कि जिसका कोई नाप नहीं हो सकता। अगर अहिंसा मानव-जातिका धर्म है, तो अब मानव-जातिके भविष्यकी निर्मात्री नारी बननेवाली है। मानवके हृदयपर नारीसे बढ़कर प्रभाव और किसका है? यह तो पुरुषने नारीकी आत्माको कुचल रखा है। यदि उसने भी पुरुषकी भोग-लालसाके सामने अपने-आपको समर्पित न कर दिया होता, तो सोयी हुई शक्तिके इस अथाह भण्डार-के दर्शनका अवसर संसारको मिल जाता। अब भी उसके चमत्कारपूर्ण वैभवका दर्शन हो सकेगा, जब नारीको संसारमें पुरुषके ही समान अवसर मिलने लगेगा और पुरुष तथा नारी, दोनों मिलकर परस्पर सहयोग करते हुए आगे बढ़ेंगे।"

"स्त्री-जातिकी शक्ति और महत्ताके बारेमें गांधीजीके ये केवल विचार नहीं थे, उन्होंने इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी उपस्थित किये थे। जबतक उन्होंने इस देशके सार्वजनिक जीवनमें प्रवेश नहीं किया था, स्त्री-शक्ति मानो सोयी पड़ी थी। निस्संदेह वह गृहलक्ष्मी और माताके रूपमें हमारे पारिवारिक जीवनको प्रकाशित, सुशोभित और मंगलमय कर ही रही थी, परन्तु उसकी अन्य लोकोपकारिणी शक्ति-योंको प्रकट होनेका अवसर अभी नहीं मिल पाया था। यह गांधीजीके कार्यकालमें बना। स्वाधीनताके युद्धको उन्होंने ऐसा अपूर्व मोड़ दिया कि असंख्य बहनें पर्दे और अंतःपुरसे बाहर निकल पड़ीं और स्वातंत्र्य-यज्ञमें अपना-अपना हविर्भाग अर्पण करनेमें न केवल आपसमें होड़ करने लगीं, वरन् कहीं-कहीं पुरुषोंसे भी आगे बढ़ गयीं। शराब और विदेशी कपड़ेकी दूकानोंके सामने धरना देनेमें उनकी बराबरी

कौन कर सकता था ? धारासणा और वडालाके नमक-सत्याग्रहमे उन्होने जिस वीरताका परिचय दिया, वह दृश्य दैव-दुर्लभ था।

ससारके अन्य देशोमे पुरुषोके समान मताधिकार प्राप्त करनेके लिए स्त्रियोको जाने कितने वर्ष राह देखनी पडी और जाने कितनी लडाइयाँ लडनी पडी। परन्तु भारतमे स्वतत्रताकी घोषणाके साथ ही एकदम सहज और स्वाभाविक रूपमे स्त्रियोको समान मताधिकार प्राप्त हो गये और आज ससारके किसी देशमे ससद या धारासभाओमे शायद वहने इतनी सख्यामे नही है, जितनी भारतीय ससद या धारा-सभाओमे है। एक वहुत वडे देशकी प्रधानमत्री वननेका गौरव तो सवसे पहले भारतीय नारीको ही प्राप्त हुआ है। आज भारतके सार्वजनिक जीवनमे जितनी वहने भाग ले रही हैं, इन सवके मूलमे गाधीजीका ही प्रभाव है। गाधी-युगने नारी-जगत्मे एक नयी चेतना उत्पन्न कर दी। स्व० श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, सरोजिनीदेवी, विजयालक्ष्मी पण्डित, राजकुमारी अमृतकौर, सुचेता कृपालानी, सुशीला नायर और मणिवहन पटेलके नाम तो केवल भारतमे ही नही, वाहरके लोग भी जानने लगे है। इनके अलावा स्वाधीनता-युद्धके दिनोमे कहाँ-कहाँ कितनी वहने जेल गयी तथा देशके विभिन्न भागोमे अपनी-अपनी रुचिके सेवाकार्योंमे लग गयी, इनकी गिनती किसने की है ?

कुछ वहनोंने तो आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रत लेकर गाधीजीके कार्यो मे अपने आपको समर्पित कर दिया और गाधीजीकी वेटी वनकर आज भी अपन-अपने सेवाकार्योंमे भिडी हुई है। इनके नाम इस अध्यायके प्रारम्भमे सप्त-कन्यकाओके रूपमे दिये गये हैं। वे स्वय इतनी प्रसिद्ध सेविकाएँ हैं कि उनका थोडा ही स्मरण यहाँ काफी होगा।

मीरा	मिस मैडेलाइन स्लेड। इग्लैडके नौ-सेनापतिकी सुपुत्री।
प्रेमा	कुमारी प्रेमाबहन कटक। महाराष्ट्रीय, पूनाके पास सासवडमे इनका आश्रम है, जहाँ विविध सेवाकार्य कर रही है।
सुशीला (१)	कुमारी सुशीला पै। महाराष्ट्रीय। कस्तूरवा ट्रस्टकी भूतपूर्व सचिव।
सुशीला (२)	सुशीला नायर। गाधीजीके सचिव प्यारेलालजीकी वहन। केन्द्रमे स्वास्थ्य-मत्री रह चुकी है।
अमृता	राजकुमारी अमृतकौर। कपूरथलाके महाराजाकी सुपुत्री। भारतकी पहली स्वास्थ्य-मत्री।
मनुडी	मनु गाधी। गाधीजीके भतीजे जयसुखलालजीकी सुपुत्री। गाधीजीके अतिम वर्षो मे उनकी सेवामे रही।
अम्तुस्सलाम	पजावके एक प्रतिष्ठित मुस्लिम परिवारकी सुपुत्री।

इन सातो वहनोने बापूको अपना 'धर्म-पिता' मानकर अपना जीवन उनके

कार्योंमे अर्पित कर दिया। सुश्री मनूने तो उन्हें पिता नही 'माता' माना है। गांधीजीने एक-एक दो-दो नही, सैंकडो पत्र लिखकर इन सब बहनोका मार्ग-दर्शन किया है। यह पत्र-साहित्य पढने लायक है।

४. गांधी-सेवा-संघ क्या था ?

गाधी-सेवा-संघकी स्थापना सन् १९२३ मे श्री जमनालालजी बजाजके द्वारा की गयी। उनकी मशा यह थी कि गाधीजीके बताये रास्तेमे चलनेवालोकी एक अच्छी बिरादरी हो, जो आगे चलकर गाधीजीके आदर्श, राजनीति और कार्यक्रमकी उत्तराधिकारिणी बन सके। इसके सदस्य देशकी विविध प्रवृत्तियोमे लगे हुए थे। इनमें श्री राजगोपालाचार्य, सरदार, राजेन्द्रबाबूसे लेकर छोटे-से-छोटे ग्रामसेवकतक थे। सन् १९३४ के बादसे प्रतिवर्ष इसका अपना एक वार्षिक सम्मेलन होता रहा। इसमे सदस्य लगभग एक सप्ताहतक साथ-साथ रहते। विविध विषयोपर उपयोगी, उद्बोधक और प्रेरक चर्चाएँ होती। सेवकोको मार्ग-दर्शन मिलता। इस अवधिमे सब मिलकर रोज सुबह तीन घटे शरीरश्रम-द्वारा उस गाँवकी कोई स्थायी सेवा भी करते। कही तालाब बनता, कही सडक और कही सफाई। इस प्रकार सावली (म० प्र०), वर्धा, हुदली, डेलाग, वृन्दावन और मालिकन्दामे वार्षिक सम्मेलन होते रहे। हर बातमे गाधीजी कितने जागरूक रहते थे, इसका एक किस्सा इस प्रकार है :

१९३७ की बात है। उस वर्ष सम्मेलन कर्नाटकके एक गाँव हुदलीमे हो रहा था। देशके भिन्न-भिन्न भागोसे सदस्य इसमे भाग लेनेके लिए आ रहे थे। गाँवके लोगोको कुतूहल हुआ कि यह क्या चीज है। तो किसी कार्यकर्ताने उसे यह कहकर सीधी-सादी भाषामे समझानेका यत्न किया कि "फैजपुरमे पिछले वर्ष जिस प्रकार जवाहरलालजीकी काग्रेस हुई थी, वैसे ही यह गाधीजीकी काग्रेस है।" किसी प्रकार ये शब्द गाधीजीतक पहुँच गये। ये शब्द उन्हें बहुत खटके। यहाँतक कि इस विषयपर कुछ कहे बिना उनसे नही रहा गया।

उन्होंने कहा "मेरे और जवाहरलालके बीच इस प्रकार भेद करना बिलकुल अनुचित है। गाधी-सेवा-सघ काग्रेसकी प्रतिस्पर्धी सस्था नही, बल्कि उसीका एक अग उसे समझना चाहिए। काग्रेसके रचनात्मक कार्यको इसने अपना काम बना लिया है। काग्रेस बडी सस्था है और उसका हर सदस्य तीस करोड लोगोका प्रतिनिधि है। इस सघका सदस्य सिवा अपने खुदके और किसीका प्रतिनिधित्व नही करता। हाँ, वह सत्य और अहिंसाका प्रतिनिधि भले ही कहा जा सकता है। परन्तु वह भी केवल उसी हदतक जितना उसके आचरणमे हो।'

"परन्तु मुझे लगता है", उन्होंने कहा कि "इस सघका नाम क्यो न बदल दिया

जाय ? आपने उसे मेरा नाम इसलिए दे रखा है कि आपने अपने-आपको सत्य और अहिंसाका व्रती माना है। मैंने भी इनका व्रत लिया है, और इनमें मेरी श्रद्धा दिन-ब-दिन बढती जा रही है। परन्तु मान लीजिये कि कल मेरा विश्वास ढीला हो गया। तब आप क्या करेंगे ? काग्रेसका सन् १९२०-'२१ का कार्यक्रम सत्य और अहिंसापर आधृत था। आपने उसी कार्यक्रमको ग्रहण किया है। तो आपने केवल मेरे कारण इस कार्यक्रमको ग्रहण किया है या आप स्वतत्र रूपसे उसमे विश्वास करते है ? अगर आपका विश्वास उसमे स्वतत्र रूपसे है तो उसके साथ मेरा नाम जोडना गलत है। और यदि मेरे कारण ही आपने इसे लिया है तो आपकी निष्ठा सिद्धान्तपर नही, व्यक्तिपर है। अत मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि ऐसी व्यक्ति-पूजा मनुष्यको ऊँचा नही उठाती, गिराती है। इसलिए सघका नाम बदलनेके मेरे इस सुझावपर आप विचार कीजिये।

"हाँ, इसके विचार-विनिमयमे भाग लेनेके लिए आप मुझे भी बुलाते है, यह उचित ही है। आप जितने चाहें प्रश्न मुझसे पूछे। प्रति-प्रश्न भी करें। देखे कि मेरी श्रद्धा उतनी ही ज्वलत है या नही कि जितनी सन् १९२० मे थी। पर मैं आपको बता दूं कि मेरी श्रद्धा तो दिन-ब-दिन बढती ही जाती है और इन सिद्धान्तोका प्रयोग अधिकाधिक व्यापक होता जा रहा है। अत आपको यह भी देखना चाहिए कि यह विकास सही दिशामे हो रहा या नही। यह आपसे तभी बनेगा जब आपकी श्रद्धा स्वतत्र होगी। परन्तु यदि केवल मेरे नामसे चिपटे रहेंगे तो ससारमे आपकी हँसी होगी।

"यही नही, इससे भी एक और बडा खतरा है। मुझे भय है कि कही यह एक 'पथ अथवा सम्प्रदाय' न बन जाय। यदि ऐसा हुआ तो जब कभी आपको किसी बातके बारेमे शका होगी, तो आप 'यग-इण्डिया' और 'हरिजन' उठाकर देखने बैठ जायेंगे कि इस विषय मे मैंने क्या लिखा है। यह ठीक नही। मैं तो कहता हूँ कि मेरे इन लेखोको मेरे शरीरके साथ ही आग लगा दीजिये। मेरा शब्द नही, मेरा आचरण, कार्य, जिन्दा रहनेवाला है। मैंने तो इन दिनो अनेक बार कहा है कि यदि सारे वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति नष्ट हो जायँ और ईशावास्य उपनिषद्का केवल पहला मत्र रह जाय तो उसमे हिन्दू-धर्मका सार-सर्वस्व आ जाता है। परन्तु वह मत्र भी किस कामका, अगर उसका आचरण करनेवाला कोई न हो ?

"इसी प्रकार मेरे लेखो और वचनोका मूल्य उसी हदतक है, जिस हदतक आप उनमे प्रतिपादित सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तोको हजम करके उनके अनुसार अपना आचरण बनाये। अन्यथा उनका कोई मूल्य नही। यह एक सत्याग्रहीकी वाणी है। इसके एक-एक शब्दको समझ लें।"

और अपने इन वचनोको गाधीजीने खुद अपने जीवनमे सत्य करके दिखा दिया।

जैसे ही उन्हें यह खतरा हुआ कि यह संघ एक सम्प्रदायका रूप धारण करनेके मार्गपर जा रहा है, उन्होंने खुद ही उसका विस्तृत रूप संकुचित कर दिया।

संघके पहले अध्यक्ष श्री जमनालालजीका परिचय अन्यत्र आ गया है। श्री किशोरलाल मशरूवालाके बारेमें स्वयं गांधीजीने यों लिखा है :

"किशोरलाल मशरूवाला हमारे विरले कार्यकर्ताओंमेंसे एक हैं। काम करते हुए वे कभी थकते नहीं। वे अत्यन्त जागरूक रहते हैं। उनकी जागृत दृष्टिसे ब्यौरेकी कोई भी बात नहीं छूट पाती। वे एक तत्त्ववेत्ता हैं, और गुजरातीके एक लोकप्रिय लेखक। गुजरातीके वे जैसे विद्वान् हैं, वैसे ही मराठीके भी हैं। वे जातीय, साम्प्रदायिक या प्रान्तीय अहंकार या दुराग्रहसे बिलकुल मुक्त हैं। वे एक स्वतंत्र चिन्तक हैं। वे राजनीतिज्ञ नहीं, पैदायशी समाज-सुधारक हैं। समस्त धर्मोंके विद्यार्थी हैं, उनमें धार्मिक कट्टरताका कोई चिह्न नहीं। वे जिम्मेदारी ओढ़ने और विज्ञापनबाजीसे भागते हैं। इतनेपर भी कोई ऐसा आदमी नहीं मिलेगा जो जिम्मेदारी ले लेनेपर उसे उनकी अपेक्षा अधिक पूर्णताके साथ पूरा कर सके। मैं बड़ी मुश्किलसे उन्हें गांधी-सेवा-संघका अध्यक्ष बननेको राजी कर सका था।"

गांधी-सेवा-संघके सदस्य सेवक और सहयोगी इस प्रकार दो श्रेणियोंमें बटे हुए थे। परन्तु इनकी एक संचालन-समिति भी थी। प्रारम्भमें इस संगठनके अध्यक्ष श्री जमनालाल बजाज थे। बादमें वयोवृद्ध श्री किशोरलाल मशरूवाला इसके अध्यक्ष रहे और जब इसका विस्तृत रूप संकुचित कर दिया गया, तब श्री श्रीकृष्णदासजी जाजू इसके अध्यक्ष हुए।

श्रीकृष्णदास जाजू मारवाड़ी समाजके अच्छे और सुधारवादी वकील थे। राष्ट्रीय आन्दोलनमें उन्होंने वकालत छोड़ दी थी। वे पाप-भीरु और साधु-स्वभावके चरित्रवान् सज्जन थे। जमनालालजीके बुजुर्गोंमेंसे थे। अपने सम्पर्कमें आनेपर गांधीजी ऐसे उपयोगी पुरुषको कैसे छोड़ते? उन्होंने अपनी प्रमुख संस्थाओं—चरखा-संघ, ग्रामोद्योग-संघ और गांधी-सेवा-संघ—के ट्रस्टी, अध्यक्ष, तथा मंत्रीके जिम्मेदार पदोंपर उन्हें रखकर राष्ट्रके ऊँचे काम उनसे लिये। गांधी-सेवा-संघकी अध्यक्षतासे जब किशोरलालभाई अस्वस्थताके कारण मुक्त हुए, तो जाजूजीपर अध्यक्षताका भार डालते हुए उन्होंने कहा : "नये अध्यक्षके रूपमें संघको पूर्व अध्यक्षकी भाँति ही एक सुपरीक्षित और धर्म-बुद्धिवाला अध्यक्ष मिल गया है। जाजूजी दर्शनशास्त्री नहीं हैं, वे लेखक भी नहीं हैं, किन्तु वे अधिक व्यवहार-दक्ष हैं।" उनके परिश्रमसे ही महाराष्ट्र चरखा-संघको सफलता प्राप्त हुई थी "

श्री रघुनाथ श्रीधर धोत्रे (अथवा 'भाऊ') जबसे गांधी-सेवा-संघके मंत्री हुए, तबसे वे अपनी मृत्यु तक संघके मंत्री रहे।

बडौदासे अपनी पढाई छोडकर जब विनोवा गाधीजीके पास आये, तब उनके साथ उनके मित्र और सहपाठी श्री गोपालराव काले, बावा मोघे और भाई धोत्रे भी आये। चारोने अपना जीवन वापूके कामोमे खपा दिया।

५. गोलमेज-परिषद् : प्रधानमंत्रीकी घोषणा

नमक-सत्याग्रहके फलस्वरूप हजारो कार्यकर्ताओ सहित नेतागण जेलमे वन्द थे। सारे ससारमे इसके समाचार पहुँच रहे थे। इससे ससारकी नजरोमे अग्रेज-सरकारकी प्रतिष्ठाको वडा धक्का पहुँचा। इस स्थितिको सुधारनेकी दृष्टिसे और यह वतानेके लिए कि वह लोकमतकी कद्र करती है, ब्रिटिश सरकारने इग्लैंडमे एक परिषद्का आयोजन किया, जिसमे नरेशो तथा विविध तवकोसे अपने समर्थक खास-खास लोगोको उसने निमत्रित किया। इसे उसने 'गोलमेज-परिषद्' नाम दिया। इसमे जो लोग गये, प्राय सभीने औपनिवेशिक स्वराज्यकी चर्चा की।

प्रधानमत्रीने शासन-विधानकी सफलताके लिए जरूरी दो मुख्य शर्ते रखी

१ शासन-विधानपर अमल किया जाय।

२ उसका विकास होता रहे।

इसके वाद भिन्न-भिन्न उप-समितियाँ वनायी गयी, जिन्होने रक्षाके अधिकार, सीमा, अल्पसख्यक, सरकारी नौकरियाँ और प्रान्तीय तथा सघ-शासनके ढांचोके वावत वाकायदा रिपोर्ट दी।

१९ जनवरीको खुला अधिवेशन हुआ। उसमे निश्चय हुआ कि इन रिपोर्टो और विवरणोमे भारतवर्षका विधान वनानेके लिए अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री है, अत इसके आधारपर आगे कार्य जारी रखा जाय।

प्रधानमत्रीने यह साफ कर दिया कि सघ-शासनके आधारपर एक धारासभा वनेगी। उसमें रियासतो और प्रान्तोके प्रतिनिधि होगे और सरकार इस सिद्धान्तको स्वीकार करती है कि कार्यकारिणी व्यवस्थापक-सभाके प्रति जवावदेह होगी। केवल वाह्य रक्षा और वैदेशिक मामलोके विषय सुरक्षित रहेंगे। राज्यकी शान्ति और आर्थिक स्थितिकी मजवूतीके लिए गवर्नर जनरलकी खास जिम्मेदारियाँ होगी। उन्हें पूरा करनेके लिए गवर्नर जनरलको विशेष अधिकार दिये जायेंगे।

अन्य विषयोके वारेमे भी विगतें वतायी गयी।

प्रधानमंत्रीने भारतवर्षके भावी शासन-विधानके वारेमे ब्रिटिश सरकारकी नीति और उसके इरादोके वारेमे यह घोषणा की—

"ब्रिटिश सरकारका विचार यह है कि शासनकी जिम्मेदारी प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभाओपर रखी जाय। सक्रमणकालमे खास-खास जिम्मे-

दारियोका ध्यान रखनेकी गारण्टी देनेके लिए और दूसरी खास-खास स्थितियोका मुकावला करनेके लिए उसमे आवश्यक गुजाइश रखी जाय। अपनी राजनीतिक स्वाधीनताकी और अधिकारोकी रक्षाके लिए अल्पसख्यकोको जितनी गारण्टी आवश्यक है, वह भी उसमे हो।

"सक्रमण-कालकी आवश्यकतायें पूरी करनेके लिए जो कानूनी सरक्षण रखे जायँगे, उनमे यह ध्यान रखना ब्रिटिश सरकारका प्रथम कर्तव्य होगा कि सरक्षित अधिकार इस प्रकारके हो और उन्हें इस प्रकार काममे लाया जाय कि उनसे नये शासन-विधानद्वारा भारतवर्षको अपने निजी शासनकी पूरी जिम्मेदारीतक बढनेमे कोई वाधा न आये।

"यदि इस बीच वाइसरायकी अपीलका जवाव उन लोगोकी ओरसे भी मिलेगा जो इस समय सविनय-अवज्ञा-आन्दोलनमे लगे हुए है तो उनकी सेवाएँ स्वीकार करनेकी कार्रवाई भी की जायगी।"

इस गोलमेज-परिषद्से काग्रेसका कोई सबध नही था। जैसे ही इस परिषद्मे दिये गये प्रधान मत्रीके वक्तव्यके समाचार भारत पहुँचे, ता० २ को इलाहावाद-मे तत्कालीन काग्रेस कार्य-समितिकी बैठक हुई। उसने अपने प्रस्तावमे कहा कि ब्रिटिश सरकार द्वारा जिन लोगोको इस परिषद्मे बुलाया गया, वे किसीके प्रतिनिधि नही है। काग्रेसने सरकारके इस प्रयत्नको निन्दनीय वताया और देशसे अपील की कि वह सरकारके इन प्रयत्नोके भुलावेमे न आये, बल्कि अपनी लडाईको पूरे जोशसे जारी रखे। प्रस्ताव मजूर हो गया, परन्तु उसके प्रकाशित होनेसे पहले ही लन्दनमे श्री श्रीनिवास शास्त्री और सर तेजवहादुर सप्रूका तार पहुँचा कि उनके पहुँचनेसे पहले कार्य-समिति कोई निर्णय न करे। तदनुसार प्रस्ताव प्रकाशित तो नही किया गया, किन्तु इसकी सूचना कुछ देर वाद ही सरकारके पास पहुँच गयी।

६. अंग्रेजोंके नाम

गाधीजी अगरेजोंके नही, उनके साम्राज्यके विरोधी हो गये थे। अंग्रेज कौमके साथ तो वे मित्रता ही चाहते थे, परन्तु वे चाहते थे कि यह मित्रता न्याय और सम्मानके साथ हो। भारतमे रहनेवाले अंग्रेज भी इस वातको समझ लें, इस हेतुसे उनकी भलमनसाहतको जागृत करनेके लिए उन्होंने एक मित्रके नाते, एक खुलापत्र लिखा था -

"मै चाहता हूँ कि भारतमे रहनेवाला प्रत्येक अंग्रेज इस पत्रको पढे और इस-पर विचार करे।"

"सबसे पहले तो मैं आपको अपना परिचय दे दूँ। मेरी नाकिस रायके अनुसार ब्रिटिश सरकारके साथ अबतक जितना सहयोग मैंने किया है, उतना और किसी हिन्दुस्तानीने नही किया होगा। विद्रोह या बगावत करनेकी प्रेरणा देनेवाली कठिन परिस्थितियोंमे रहकर भी लगातार २९ सालतक मैंने आपके साम्राज्यकी सेवा की है। विश्वास रखिये कि यह सेवा मैंने कानूनोद्वारा नियोजित सजाओके डरसे या और किसी भी स्वार्थके हेतुसे नही की है। यह सहयोग स्वतत्र और अपनी मर्जीसे था और इसी विश्वाससे प्रेरित होकर किया गया था कि ब्रिटिश सरकार जो कुछ कर रही है, वह कुल मिलाकर भारतके हितमे ही है। इसी विश्वासके कारण मैंने साम्राज्यकी खातिर अपने आपको चार बार जोखिममे डाला।

"ये सारी सेवाएँ मैंने इसी विश्वासके बलपर की थी कि मेरी इन सेवाओसे साम्राज्यमे मेरे देशको सम्मानका पद मिलेगा। परन्तु श्री लायड जार्जद्वारा किये गये विश्वासघात और आपने जिस ढँगसे उनके व्यवहारकी सराहना की तथा पजावमे किये गये अत्याचारोपर परदा डालनेकी कोशिश की, उसके कारण सरकार और उस राष्ट्रकी नेकनीयतीपरसे, जो ऐसी सरकारका समर्थन करता है, मेरा सारा ऐतबार उठ गया है।

"साम्राज्यका भारतके लिए क्या अर्थ है, सो देखिये

१ ब्रिटेनके लाभके लिए भारतकी सम्पत्तिका शोषण, रोज-रोज बढता हुआ सैनिक खर्च और ससारके किसी भी देशकी अपेक्षा अधिक महँगे प्रशासनिक अधिकारी।

२ भारतकी दरिद्रताका रत्तीभर खयाल न कर अनाप-शनाप खर्चसे सचालित सारे सरकारी विभाग।

३ हम लोगोंके बीच रहनेवाले मुट्ठीभर अग्रेजोकी जान कही जोखिम मे नही पड जाये, इस डरसे सभी लोगोंके हथियार छीन लेना और उसके परिणामस्वरूप लोगोमे उत्पन्न कायरता।

४ ऐसी अत्यन्त खराब सरकारको चलानेके लिए शराब, अफीम आदि मादक पदार्थोका व्यापार।

५ जनताके उद्वेगको प्रकट करनेके लिए रोज-ब-रोज बढते हुए आन्दोलनको दबा देनेकी खातिर आये दिन दमन और सख्त कानून।

६ आपके उपनिवेशोमे रहनेवाले भारतीयोके प्रति किया जानेवाला शर्मनाक बर्ताव, और

७ हमारी भावनाओकी उपेक्षा करके पजावके शासनको दिया गया प्रशसाका प्रमाण-पत्र और मुसलमानोकी भावनाओका तिरस्कार।

"आज लोग जो मेरी सलाह मान रहे है, सो मेरे नामके कारण नही। इस मामलेपर विचार करते समय आप मेरे या अली भाइयोंके नामको अलग रखें।

मैं यदि आज लोगोंसे मुसलमानोंका विरोध करनेकी सलाह देनेकी मूर्खता भी करूँ या उसी प्रकार अलीभाई मुसलमानोंको हिन्दुओंके विरुद्ध भड़कानेमें अपने जादुई वशसे काम लें, तो भी मुझे और उन्हें दोनोंको जनता तुरन्त ठुकरा देगी। आज लोग बड़ी संख्यामें हमें सुननेको इसलिए चले आते हैं कि हम आपके जुल्मसे कराहते हुए लोगोंकी आन्तरिक भावनाओंको वाणी देते हैं। अलीभाई भी कलतक आपके मित्र थे, जैसा कि मैं था और अब भी हूँ। मेरा धर्म आपके प्रति मेरे अन्तरमें किसी भी प्रकारकी कटुता रखनेकी मनाही करता है। मेरी कलाईमें जोर हो, तो भी मैं अपना हाथ आपके खिलाफ नहीं उठाऊँगा। मैं अपने कष्ट-सहनसे ही आपको जीतनेकी आकांक्षा रखता हूँ।

"आप लोक-भावनाके इस चढ़ते हुए ज्वारको दबा देनेके उपायकी तलाशमें हैं। मैं आपको बता दूँ कि उसका एक ही उपाय है, और वह यह कि रोगके कारणोंको ही ढूंढकर दूर कर दिया जाये। अब भी बाजी आपके हाथमें है। भारतके साथ किये गये घोर अन्यायोंके लिए आप प्रायश्चित्त कर सकते हैं। वह इस तरह

१. आप श्री लायड जार्जसे उनके वचनका पालन करा सकते हैं। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि उन्होंने जो कुछ किया है, उसमें निकलनेकी कितनी ही खिड़कियां उन्होंने स्वयं ही रख ली हैं।
२. आप वाइसराय महोदयको अपने पदसे निवृत्त हो जानेपर मजबूर कर सकते हैं और वह पद योग्य व्यक्ति को दिया जा सकता है।
३. आप सर माइकेल ओडायर और जनरल डायर दोनोंके सम्बन्धमें अपने विचार भी बदल सकते हैं।
४. लोगोंके माने हुए और उनके द्वारा चुने हुए सब मतके नेताओंकी एक परिषद् बुलवाकर भारतवासियोंके इच्छानुसार स्वराज्य प्रदान करनेका रास्ता निकालनेके लिए सरकारको विवश कर सकते हैं।

"परन्तु जबतक आप यह न समझ लें कि प्रत्येक भारतीय सचमुच आपकी बराबरीका और आपका भाई है, तबतक आपसे यह नहीं होगा। मैं आपसे मेहरबानीकी याचना नहीं करता, मैं तो केवल मित्रके नाते एक कठिन प्रश्नका सम्मानपूर्ण हल आपको सुझा रहा हूँ। दमन और कठोरताका दूसरा रास्ता तो आपके लिए खुला ही है। पर मैं आपको चेतावनी देता हूँ कि यह उपाय बेकार साबित होगा।

"हमारा आन्दोलन तो दमन और सख्तीको अवश्यम्भावी मानकर ही शुरू हुआ है। आपसे मेरा अनुरोध है कि आप भारतका नमक खा रहे हैं, अतः उसीका पक्ष लें। दमनका सहारा लेकर इस देशके साथ बेवफा न हों।'

आगे चलकर पुलिस-थानेदारोंको लक्ष्यकर उन्होंने जो कहा था, उससे इस

बातका पता चल जाता है कि गाधीजीका मानस क्षोभसे कितना भरा रहता था।

गाधीजीने कहा "अग्रेजी राज्यने भारतका नैतिक, भौतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरहका नाश कर दिया है। मै इस राज्यको अभिशाप समझता हूँ और इसे नष्ट करनेका प्रण कर चुका हूँ।"

"मैंने खुद 'गॉड सेव दि किंग' के गीत गाये हैं, दूसरोसे भी गवाये हैं। मुझे 'भिक्षा देहि' की राजनीतिमे विश्वास था। पर वह व्यर्थ हुआ। मै जान गया कि इस सरकारको सीधा करनेका यह उपाय नही है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लडाई अहिंसाकी लडाई है। हम किसी-को मारना नही चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासनको खत्म कर देना हमारा परम कर्तव्य है।"

७. ईसाई और गांधीजी

सेवाग्राममे गाधीजीके दर्शन और उनके विचार तथा कार्योंको समझनेके लिए लोग आते ही रहते थे। इसी प्रकार एक दिन इलाहाबादके यूइग क्रिश्चियन कॉलेजके कुछ युवक शिक्षक सेवाग्राम आये और गाधीजीसे पूछने लगे—"आप बहुत अनुभवी बुजुर्ग नेता हैं। क्या आप कृपापूर्वक बतायेंगे कि हम किस प्रकार मानवजातिकी सेवामे अपनी जान झोक सकते हैं?"

गाधीजी—"आपने सवाल ठीक तरहसे नही पूछा। जब आप 'सत्याग्रह'-को अपनाते है तो उसे 'जीवनको झोक देना' कहना गलत होगा। इसमे तो आप बिना बदलेकी भावनाके बडेसे बडे खतरे और उकसाहट (प्रवोकेशन) का मुकाबला करनेके लिए अपने आपको तैयार करते है और जब समय आता है, तब आप अपना जीवन उत्सर्ग कर देते है। इसके लिए पूर्व-शिक्षणकी जरूरत होती है। अगर आप पुरानी पद्धतिमे विश्वास करते है तो जिस प्रकार आप एक सैनिककी तालीम लेते हैं। उसी प्रकार अहिंसामे भी तालीमकी जरूरत होती है। परन्तु यह तालीम एकदम दूसरे प्रकारकी होगी। इसमे आपको अपना जीवन-क्रम पूरी तरहसे बदल देना होगा और युद्धके दिनोमे उसके लिए जो-जो करते है, वही शान्तिके दिनोमे भी करना होगा। निस्सन्देह यह आसान नही। आपको उसमे अपनी सम्पूर्ण आत्मा ऊँडेल देनी होगी। यदि आपके जीवनमे सचाई होगी तो उसका असर आसपासके लोगोपर भी पडेगा। दूसरे देशोकी भाँति आज अमेरिका भी कमजोर देशोका शोषण कर रहा है। इसी कारण आज वह ससारमे सबसे अधिक धनवान् है, परन्तु उसके साधनोको देखते है तो यह कोई गर्व करनेकी चीज नही है। अब इस सपत्तिकी रक्षाके लिए हिंसाका सहारा लेना

होगा। आपको इस सपत्तिको छोडनेका निश्चय करना होगा। इसलिए यदि आप यह हिंसा नही करना चाहते तो आपको कहना होगा कि हमें लूटका यह धन नहीं चाहिए। इससे यदि अमेरिका धनी नही रह जाता तो हमे इसकी चिंता नही। तब आपका त्याग शुद्ध त्याग कहा जायगा। यह है वह शिक्षण या तालीम, जिसका जिक्र मैंने शुरूमे किया था। यदि एक राष्ट्रकी हैसियतसे आप शातिमय जीवनके लिए तैयार हो जायें तो ऐसे परा कोटिके आत्मोत्सर्गकी जरूरत न भी पडे। अहिंसाके लिए मरनेकी अपेक्षा उसके लिए जीना कही अधिक कठिन है।"

प्रश्न—"और ईसाई मिशनोका आजके भारतमे क्या स्थान है और वे इस महान् कार्यमे भारतको क्या योग दे सकते हैं ?"

गांधीजी—"सबसे पहली बात यह है कि भारतमे जो कार्य हो रहा है, उसका मूल्य और महत्त्व वे समझें। दूसरे, अभीतक ये धर्मोपदेशक और शिक्षक बनकर यहाँ आते रहे हैं। उनके दिमागमे भारत और उसके महान् धर्मोंके बारेमें अजीब-अजीब कल्पनाएँ रही हैं। बाहरी देशोको इस देशका परिचय प्राय यह कहकर दिया जाता है कि 'यह तो अधविश्वासी, जगली लोगोका राष्ट्र है। न ये लोग कुछ जानते हैं और न ईश्वरको मानते हैं। निरे शैतानकी सतान हैं।' स्वय बिशप हैबरने अपनी "ग्रीन लैंड्स आइ सी माउण्टेन्स" मे यही कहा है कि 'भारतमें और सब तो अच्छा है। केवल मनुष्य बुरे हैं।' मैं इसमे ईसाकी आत्माका निषेध देखता हूँ। इसलिए मेरा अपना विचार तो यह है—

"यदि आप मानते हैं कि भारत ससारको कोई सन्देश दे सकता है, और उसके धर्म भी सच्चे हैं (फिर अन्य सब धर्मोंके समान ये अधूरे भले ही हो क्योंकि अपूर्ण मनुष्यके माध्यमसे ही ये अवतरित हुए हैं) और आप भी हमारे ही समान शोधक और सेवक हैं, तो आपके लिए भी यहाँ स्थान है। परन्तु यदि आप यह धारणा लेकर आते हैं कि यहाँ तो अधकार ही अधकार है और आप असली धर्मके उपदेशक हैं तो जहाँतक मेरी राय है, आपके लिए यहाँ कोई स्थान नही है। भले ही आप अपने आपको हमपर लादते रहें।"

सहायक ग्रन्थ-सूची

१ सम्पूर्ण गाधी-वाड्मय प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
२ महात्मा गाधी (अग्रेजी) ८ भाग लेखक—डी० जी० तेडुलकर
३ महात्मा गाधी दी लास्ट फेज (अग्रेजी) दो भाग ले०-प्यारेलाल
४ काग्रेसका इतिहास (तीन भाग) डॉ० वी० पट्टाभि सीतारामय्या
५ महादेवभाईकी डायरी (तीन भाग) नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
६ महादेवभाईकी डायरी (पाँच भाग) सर्व सेवा सघ प्रकाशन
७ महादेवभाईकी डायरी (गुजराती) भाग ६ से ९
प्रकाशक साबरमती आश्रम सुरक्षा अने स्मारक ट्रस्ट
८ स्टोरी ऑफ माई लाइफ (अग्रेजी) एम० आर० जयकर
९ आउट ऑफ डस्ट (अग्रेजी) डी० एफ० कड़ाका
१० गाधी एण्ड नेहरू एम० चेलापति राव
११ दी वीमैन इन गाधीजीज लाइफ (अग्रेजी) एलीनर मार्टन
१२ फेसेट्स ऑफ गाधी (अग्रेजी) वी० के० पहलूवानिया
१३ दि स्प्रिट्स पिल्प्रिमेज (अग्रेजी) मीरा बहन
१४ महात्मा गाधी (अग्रेजी) पोलक, ब्रेल्स, फोर्ड और पेथिक लॉरेन्स
१५ लीड काइडली लाइट (अग्रेजी) विन्सेट शीन
१६ गाधी फाइटर विदाउट ए स्वोर्ड (अग्रेजी) जिनेट इटन
१७ ए वर्ड टू गाधी (अग्रेजी) ब्रिगेडियर जनरल एफ० पी० क्रोजियर
१८ गाधीजी इन इडियन विलेजेज (अग्रेजी) महादेव देसाई
१९ दि एपिक ऑफ ट्रावनकोर (अग्रेजी) महादेव देसाई
२० दि एपिक फास्ट (अग्रेजी) . प्यारेलाल
२१ ए पिल्प्रिमेज ऑव पीस (अग्रेजी) : प्यारेलाल

२२ हाफ वे टू फ्रीडम (अंग्रेजी) मार्गरेट बर्क ह्वाइट
२३ इंडिया विन्स फ्रीडम (अंग्रेजी) मौलाना अबुल कलाम आजाद
२४. दि लास्ट डेज ऑफ ब्रिटिश राज (अंग्रेजी) ल्योनार्ड मोसले
२५ महात्मा गांधी (अंग्रेजी) प्रफुल्लचन्द्र घोष
२६ महात्मा गांधी हंड्रेड ईयर्स (अंग्रेजी) सम्पादक एस० राधाकृष्णन्
२७ गांधी (अंग्रेजी) ज्योफ्रे ऐश
२८ माई डेज विद गांधी (अंग्रेजी) निर्मल कुमार बोस
२९ गांधी एज वी नो हिम (अंग्रेजी) सम्पादक चन्द्रशंकर शुक्ल
३० दि मेसेज आफ महात्मा गांधी (अंग्रेजी) संकलन. यू० एम० मोहन राव
३१ दि माइंड ऑफ महात्मा गांधी (अंग्रेजी)
संकलन सम्पादन आर० के० प्रभु और यू० आर० राव
३२ महात्मा गांधी कॉरेस्पांडेंस विद दी गवर्नमेंट (अंग्रेजी) (१९४४ से १९४७)
नवजीवन प्रकाशन
३३. प्रार्थना-प्रवचन (दो भाग) गांधीजी, सस्ता साहित्य मंडल
३४. दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास गांधीजी, सस्ता साहित्य मंडल
३५ सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा . गांधीजी, सस्ता साहित्य मंडल
३६ मेरे समकालीन (संकलन) सस्ता साहित्य मंडल
३७ पन्द्रह अगस्त के बाद सस्ता साहित्य मंडल
३८. गांधी-विचार रत्न (संकलन) सस्ता साहित्य मंडल
३९ हमारी मांग (गोलमेज परिषद् में भाषण) . सस्ता साहित्य मंडल
४०. ग्राम-सेवा . सस्ता साहित्य मंडल
४१ गो-सेवा : नवजीवन ट्रस्ट
४२. बापू के पत्र मीरा के नाम . नवजीवन ट्रस्ट
४३ बापू के पत्र कुसुम बहन देसाई के नाम नवजीवन ट्रस्ट
४४ बापू के पत्र - सरदार पटेल के नाम नवजीवन ट्रस्ट
४५ बापू के पत्र - मणि बहन पटेल के नाम . नवजीवन ट्रस्ट
४६ बापू के पत्र बीबी अमतुस्सलाम के नाम . नवजीवन ट्रस्ट
४७ बापू के पत्र . प्रेमा बहन कंटक के नाम नवजीवन ट्रस्ट
४८ बापू के पत्र छगनलाल जोशी के नाम नवजीवन ट्रस्ट
४९ बापू के पत्र - नारणदास गांधी के नाम : नवजीवन ट्रस्ट
५० बापू के पत्र आश्रमवासी बहनों को (गुजराती) : नवजीवन ट्रस्ट
५१. बापू के पत्र ग० स० गंगाधरराव के नाम नवजीवन ट्रस्ट
५२. [illegible] . [illegible], सस्ता साहित्य मंडल
५३ [illegible], सस्ता साहित्य मंडल

५४ मेरे सस्मरण ग० वा० मावलकर
५५ पाँचवें पुत्रको वापूके आशीर्वाद सपादक–काका कालेलकर
५६. गाधीजीकी कहानी लुई फिशर
५७ भारत विभाजनकी कहानी ए० के० जान्सन
५८ वापूकी कारावास-कहानी डॉ० सुशीला नैयर
५९ विहारकी कौमी आगमे मनुवेन गाधी
६० महात्मा गाधी रामचन्द्र वर्मा
६१ आत्मकथा डा० राजेन्द्रप्रसाद
६२ महात्मा गाधी एक जीवनी वी० आर० नन्दा
६३ मेरे हृदयदेव हरिभाऊ उपाध्याय
६४ वापूके आश्रममे हरिभाऊ उपाध्याय
६५ श्रेयार्थी जमनालालजी हरिभाऊ उपाध्याय
६६ गाधी-वाणी श्रीरामनाथ सुमन
६७ सरदार वल्लभभाई पटेल (दो भाग) नरहरि परीख
६८ भारतीय स्वाधीनता सग्रामका इतिहास : इन्द्र विद्यावाचस्पति
६९ पचायत राज गाधीजी नवजीवन ट्रस्ट
७० गाधीजीकी साधना रावजीभाई पटेल
७१ गाधी अभिनन्दन ग्रथ स० राधाकृष्णन्
७२ गाधीजीके जीवन-प्रसग सपादक चन्द्रशकर शुक्ल
७३ विजयी वारडोली वैजनाथ महोदय
७४ वा और वापू मुकुलभाई कलार्थी
७५ सावरमतीका सत . यशपाल जैन
७६ ऐसे थे वापू आर० के० प्रभु
७७ हम सव एक पिताके वालक नवजीवन ट्रस्ट
७८ सक्षिप्त आत्मकथा सस्ता साहित्य मण्डल
७९ वापूके पत्र सपादक–काका कालेलकर
८० हिन्दी 'नवजीवन' तथा 'हरिजन-सेवक' की फाइले

●

महादेवभाई की डायरी

(DAY-TO-DAY WITH GANDHI)

सन् १९१७ से १९४२ तकके लगातार २५ वर्षोंकी गांधीजी-के व्यस्त और स्वाधीनता संग्राम-कालकी रोचक, ज्ञानवर्धक और क्रमवद्ध जीवन-चर्याका ऐतिहासिक आलेख।

यह ग्रंथावली लगभग २० खण्डोंमे हिन्दी और अग्रेजीमे प्रकाशित हो रही है। अवतक प्रकाशित—

हिन्दीके ८ खण्ड
अग्रेजीके ५ खण्ड

मूल्य—

हिन्दीके प्रत्येक खण्डका	८—००
अग्रेजीके प्रत्येक खण्डका	१५—००
(पुस्तकालय सस्करण)	२०—००

अग्रिम ग्राहक वनकर घरवैठे प्राप्त करनेकी सुविधा

सर्वोदय (साप्ताहिक)

भूदान-ग्रामदान-आन्दोलन तथा सर्वोदय-विचारका, भूदान-मूलक ग्रामोद्योग-प्रधान, अहिंसक क्रान्तिका सन्देशवाहक प्रमुख साप्ताहिक। अवतक पत्र भूदान-यज्ञ नामसे प्रकाशित होता रहा है।

वार्षिक शुल्क १०—००

पीपुल्स एक्शन (पाक्षिक)

सर्वोदय - विचार, विश्व-शांति और ग्रामदान - आन्दोलनका प्रतिनिधि पाक्षिक। आजकल नयी दिल्लीसे प्रकाशित होता है।

वार्षिक शुल्क १०—००

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-१